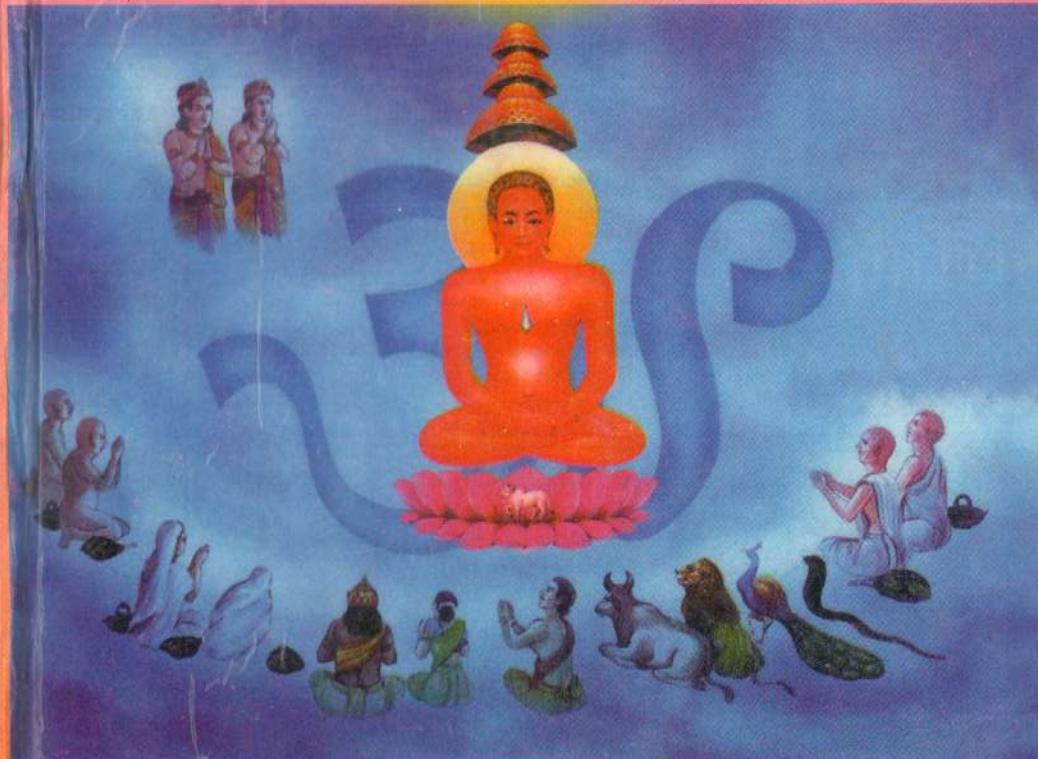
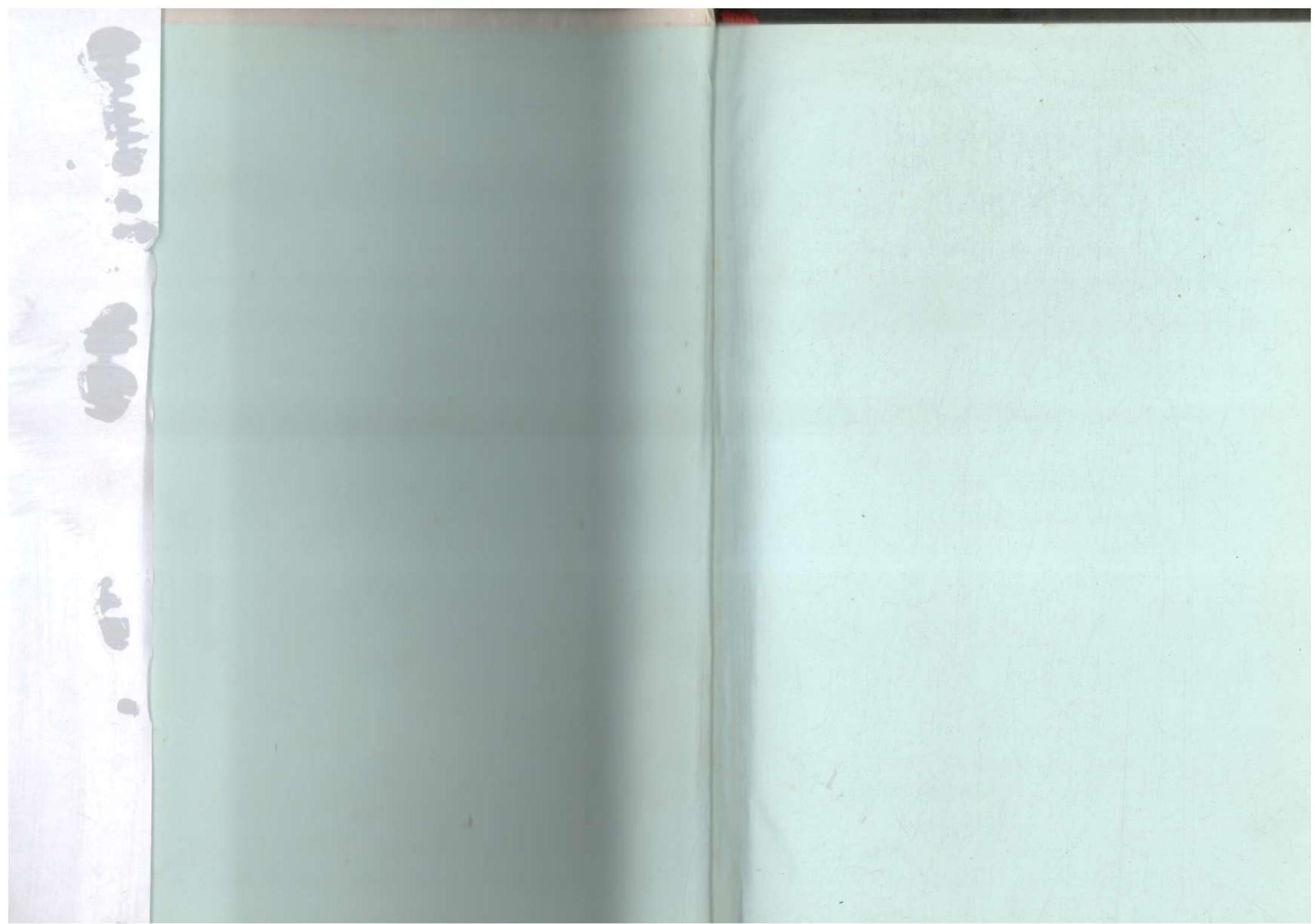


युग निर्माता भ. ऋषभदेव

Sculptor of the age - Rishabhadev



आचार्य रत्न श्री कनकनंदीजी महाराज



युग निर्माता : ऋषभदेव

युग निर्माता ऋषभदेव

(Sculptor of the age : Rishabha Dev)

लेखक

आचार्यरत्न श्री कनकनन्दी

Acharya-Ratn Shree Kanaknandi

प्रकाशक

धर्म—दर्शन—विज्ञान—शोध संस्थान

Dharam-Darshan-Vigyan-Shodh Sansthan

पुस्तक	:- युग निर्माता ऋषभदेव
लेखक	:- आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव
आशीर्वाद	:- गणधराचार्य कुन्युसागरजी गुरुदेव
सहयोगी	:- मुनि श्री कुमार विद्यानंदजी, मुनि श्री आज्ञासागरजी
परम शिरोमणि संरक्षक :-	रमेशचन्द्र कोटडिया, बॉम्बे, (अमेरिका)
अध्यक्ष	:- श्री गुणपाल जैन (मुजफ्फरनगर)
कार्याध्यक्ष	:- श्री भंवरलाल पटवारी (बिजौलिया)
वैज्ञानिक संगोष्ठी	:- श्री सुशीलचन्द्र जैन—बड़ौत (मेरठ)
उपाध्यक्ष	:- (सम्पादक—प्रकाशन) 1. श्री प्रभातकुमार जैन (मु.न.) 2. श्री राजमल पाटोदी (कोटा) 3. श्री रघुवीर सिंह (मु.न.)
मानद निर्देशक	:- डॉ. राजमल जैन (उदयपुर)
मंत्री	:- श्री नेमीचंद्र काला (उदयपुर)
संयुक्त मंत्री	:- श्री पंकजकुमार जैन (बड़ौत)
संस्करण	:- द्वितीय - 1999
मूल्य	:- ज्ञान प्रचारार्थ संहयोग राशि : 41.00/-मात्र
प्रतियाँ	:- 1000
ज्ञान-दान सौजन्य	:- श्री सुशीलचन्द्र जैन तथा सौ. प्रेमलता जैन (बड़ौत)

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान :-

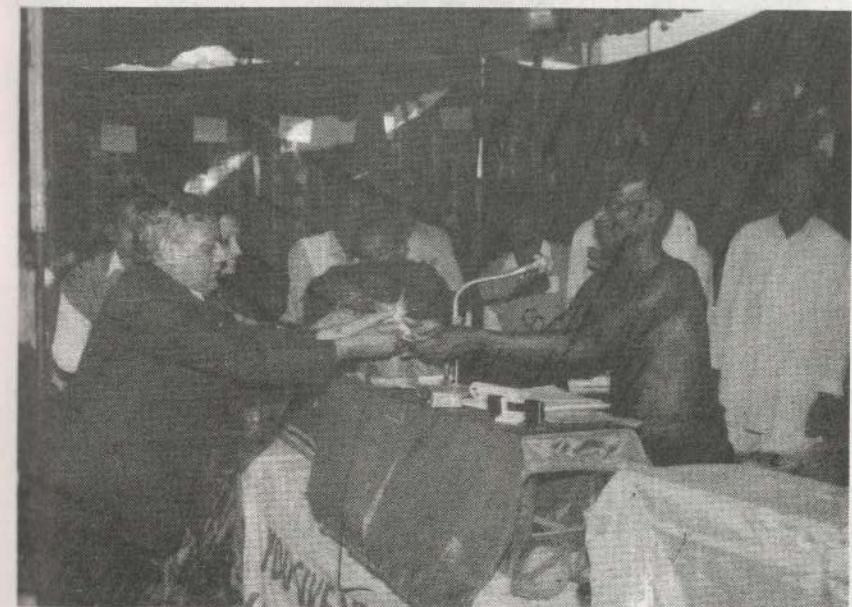
- (1) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान निकट दि. जैन धर्मशाला, बड़ौत (मेरठ)
- (2) नव अल्पना प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, मोटीखाना, जयपुर-3 (राज.)
- (3) श्रीमती रलमाला जैन डॉ. राजमल जैन (वैज्ञानिक)
4-5 आदर्श कॉलोनी, पुलां, उदयपुर, फोन (0294) 440793
- (4) श्री गुणपाल जैन, बेहड़ा भवन, 87/1 कुन्दनपुरा,
मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) फोन- (0131) 433259

लेसर टाइप सेटर्स :-

श्री कुन्युसागर ग्राफिक्स सेन्टर
25, शिरोमणि बंगलोज, बड़ौदा एक्सप्रेस हाईवे के सामने,
सी. टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद-380026
फोन - 5891771

ज्ञान-दान सौजन्य

श्री सुशीलचन्द्र जैन तथा सौ. प्रेमलता जैन (बड़ौत)
वैज्ञानिक संगोष्ठी में आ. श्री कनकनंदीजी को
पिछी प्रदान करते हुए।



युग निर्माता : ऋषभदेव

देवपुरा (उदयपुर) में धर्म-दर्शन प्रशिक्षण शिविर के समय मंगल गान करती हुई बालिकाएँ मंत्र पर विग्रहमान आचार्य श्री गवं मंधस्थ मनिगण



आ. श्री कनकनंदोजी के ग्रन्थ का विमोचन करते हुए^४
आ. श्री अभिनन्दन मार्गजी एवं श्री वीरेन्द्र हेगडे (धर्मस्थल)



युग निर्माता : ऋषभदेव

आशीर्वाद

वर्तमान काल बड़ा निकृष्ट है, प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान शून्य होता जा रहा है। ज्ञान बिना व्यक्ति एक प्रकार का अंधा होता है। उसको चर्म चक्षु तो रहती है किन्तु ज्ञान चक्षु नहीं रहती। जीव स्वार्थवश कुछ करना नहीं चाहता, दूसरों को सिखाना तो चाहता है लेकिन स्वयं नहीं सीखना चाहता, इसलिये ज्ञान की वृद्धि नहीं होती। पुस्तकीय ज्ञान तो बहुत बढ़ रहा है लेकिन सभ्यता नहीं आ रही है, विनय नहीं आ रहा है, जिधर देखो उधर अशांति का वातावरण है। ऐसे अशांति के वातावरण में विज्ञान के साथ में धर्म की परम आवश्यकता है और वैसी ही पुस्तकें भी चाहिये। पुस्तकें तो बहुत हैं लेकिन धार्मिक एवं विज्ञान परक पुस्तकें नहीं हैं। इसलिए हमारे उपाध्याय कनकनंदी जी सत् साहित्य का प्रचार हो ऐसी भावना से पुस्तकें लिख रहे हैं। लोगों के ज्ञान की वृद्धि हो, विनय आवे ऐसा पुरुषार्थ कर रहे हैं। यह एक सद्गुरुषार्थ है, जीवों का उपकारी है, ज्ञानवृद्धि का कारण है। आपके सामने अच्छा-अच्छा साहित्य आ रहे हैं। आपके साहित्य की सब जगह प्रशंसा हो रही है बहुत अच्छी बात है।

उपाध्याय श्री के साहित्य को सब लोगों को खूब पढ़ना चाहिए वास्तव में यह आबालवृद्धों के पढ़ने लायक है। विज्ञान युग में इस प्रकार के साहित्य की परम आवश्यकता है। वस्तु स्वरूप क्या है? लोगों को मालूम ही नहीं है। उपाध्याय जी ने युगानुरूप ही साहित्य लिखा है और युवकों के लिए तो ऐसे साहित्य की बहुत आवश्यकता है। अब आपके सामने एक और पुस्तक आ रही है। पुस्तक का नाम “युग निर्माता ऋषभ-देव”। पुस्तक बहुत अच्छी है—इस पुस्तक में अच्छी व्याख्या है। लेखक को मेरा आशीर्वाद है। आप इसी तरह अपने द्रव्य का सदुपयोग सत् साहित्य प्रचार में लगाते रहें ऐसा मेरा आशीर्वाद है। लेखन कार्य में सहयोग करने वाले साधु, साध्वी, बालिकाएँ, लेक्चरार, प्रोफेसरों को मेरा मंगलमय आशीर्वाद। वे सर्व सत्यधर्म का प्रचार-प्रसार करते हुए पूर्ण सत्य स्वरूप बनें। यह मेरी वीर प्रभु से प्रार्थना है। (प्रथम संस्करण)

—गणधराचार्य कुन्त्युसागर

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान का उदात्त उद्देश्य

अखिल विश्व के सर्व श्रेष्ठ महान् त्रिकाल अबाधित परम सत्य को धार्मिक आस्था से दार्शनिक-तार्किक पन्द्रिति द्वारा वैज्ञानिक परीक्षण-निरीक्षण प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में परिशीलन, परिज्ञान, परिपालन, साक्षात्कार, संदर्शन उपलब्ध करके स्वयं को समग्रता से परिपूर्ण परमसत्य स्वरूप परिनिर्माण करना है। अतः इसका सर्वोपरि उद्देश्य:-

“संचवं भगवं” सत्य ही परमेश्वर है।

“सत्यं शिवम् सुन्दरम्”

“सच्चिदानन्दम्”

“उत्पाद व्यव धौव्य युक्तं सत्।”

“Truth is God तथा God is Truth”

व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व में उदारता पूर्ण सत्य वैज्ञानिक धर्म के माध्यम से प्रचारशीलता, प्रखरता, समरसता सुख- शांति का प्रचार-प्रसार करना है।

सत्य जिज्ञासु
आचार्य कनकनन्दी

ज्ञान-दान संदर्भ

आचार्य श्री कनक नन्दी को पिच्छी प्रदान के उपलक्ष्य में सौ. श्रीमती प्रेमलता जैन धर्मपत्नी श्री सुशीलचन्द्र जैन वडौत तथा धर्म दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविर के उपलक्ष्य में सकल दिग्म्बर जैन समाज देवपुरा के सौजन्य से प्रकाशित यह ग्रन्थ

लेखक की कलम से

विश्व में ऐसे महाती महापुरुष हो गये हैं, जिनका योगदान जैन या भारतीय सभ्यता के लिए ही नहीं परन्तु समस्त विश्व सभ्यता एवं संस्कृति के लिए रहा है, वे हैं युगादि पुरुष आदि ब्रह्मा आदिनाथ (ऋषभदेव)। उनके व्यक्तित्व, आचार-विचार आकाश के समान इतने व्यापक थे जिससे वे केवल धर्म ही नहीं परन्तु धर्म के साथ- साथ राजनीति व्यवस्था, शिल्प, कृषि, वाणिज्य, कला, शिक्षा-दीक्षा, पारिवारिक-व्यवस्था, ज्ञान-विज्ञान आदि सम्पूर्ण क्षेत्र में व्याप्त थे। भोग प्रधान भोगभूमि के उपरान्त जब कर्मभूमि का आगमन हो रहा था उस सन्धि काल में ये महापुरुष अवतरित हुए थे। भोगी, सरल-स्वभावी, धर्म-कर्म से विरहित, अनभिज्ञ मानव समाज को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी पुरुषार्थ की शिक्षा दी थी। इतना ही नहीं उन्होंने कर्म प्रधान जीवन यापन के लिए असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, एवं सेवा का प्रशिक्षण भी अनभिज्ञ प्रजा को देकर एक युगान्तकारी क्रान्ति का सूत्रपात दिया था। उन्होंने उस युग को इतना प्रभावित किया था जिससे उस युग की सम्पूर्ण गतिविधि मानो वृषभदेव की गतिविधि थी। इसलिये उपत्कृत प्रजा उन्हीं को आदर से आदि ब्रह्मा, आदि सृष्टिकर्ता, विधाता, युग निर्माता, युगादि पुरुष ऋषभ (श्रेष्ठ, धर्म, उदार) आदि नामों से पुकारने लगी थी। सामाजिक व्यवस्था करने के कारण एवं राजनीति के सूत्रधार होने के कारण, देश को अनुशासित करने के लिए विभाजित करने से तथा अक्षय सुख शान्ति के दाता धर्म का प्रणयन करने के कारण उनको पुरु (उदार, व्यापक, पूर्ण करने वाला) नाम से सम्बोधन करते थे। वे स्वयं सम्पूर्ण पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था के बाद विश्व के सामने धर्म के यथार्थ स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिए सर्व सन्यास ब्रत ग्रहण करके कठोर आत्म साधना के माध्यम से आत्मा के शत्रु भूत काम, क्रोध, मोह आदि को विनाश करके अक्षय, अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य को प्राप्त करके स्वयं धर्म की जीवन्त मूर्ति स्वरूप बन गये। उन्होंने जिस धर्म का प्रतिपादन किया था वह धर्म था वस्तु स्वरूप- अनेकान्तात्मक अहिंसा प्रधान अहंत् धर्म। उनका धर्म जितना व्यवहारिक था उतना सैद्धान्तिक था। वह धर्म जितना विचार परक था उतना आचार परक था। उस धर्म के अवलम्बन से जीव शारीरिक, मानसिक, एवं आध्यात्मिक सन्ताप से दूर होकर अनन्त सुख को प्राप्त कर सकता है। अर्थात् इस धर्म के माध्यम से सर्वतोमुखी उत्थान होता है इसलिए धर्म का नाम सर्वोदय तीर्थ भी है। उन्होंने प्रत्येक द्रव्य को, विषय को, सिद्धान्त को विभिन्न दृष्टिकोणों से

प्रस्तुत किया था इसलिए इसको अनेकान्त धर्म या स्याद्‌वाद सिद्धान्त कहते हैं। कुछ सम्यक्दृष्टि तत्त्वज्ञ जीवों ने उनके द्वारा प्रतिपादित सत्य तथ्य पूर्ण धर्म को पूर्ण रूप से जानकर मानकर स्वीकार किया। किन्तु कुछ मिथ्यादृष्टि अल्पज्ञ जीव उसके एक-एक अंश को ग्रಹण करके उस एक अंश को ही पूर्ण मानने लगे इसलिए उन अल्पज्ञों के द्वारा माना हुआ या आचरण किया धर्म पूर्ण सत्य धर्म न होकर एकाश ग्राही, एकान्त मत बन गया। इसलिए ऋषभदेव आदिनाथ का वर्णन प्रत्येक धर्म के धार्मिक साहित्य में ‘धर्म के आदि प्रणेता’ नाम से किया गया है। इसका सविस्तार वर्णन इसी पुस्तक में आदिनाथ के विभिन्न रूप प्रकरण में किया गया है। इस उपरोक्त सम्पूर्ण दृष्टिकोण को रखकर मैंने इस कृति का नाम “युग निर्माता ऋषभदेव” रखा है। यहाँ निर्माता शब्द से तैयार करना, बनाना नहीं है परन्तु उस युग की शिक्षा, दीक्षा, जीवन प्रणाली को नई दिशा देने वाला है।

मैंने विभिन्न जैन वाङ्मय, वैदिक वाङ्मयादि के अवलम्बन से इस कृति की संरचना की है। जैसे स्वर्णकार रल संयोजना करके रल की माला बनाता है परन्तु रलाकर तो समुद्र ही है इसी प्रकार मैंने भी पूर्वकृतिकारों के साहित्य रूपी रलाकर से लेकर संयोजना की है। इसीलिए इस कृति के कर्ता वे पूर्व साहित्यकार ही हैं। मैंने तो केवल संयोजनके लिए एक बालकवत् प्रयास किया है। इस कृति में जो कुछ अच्छाईयाँ हैं वह पूर्वकृतिकार की हैं और जो कुछ त्रुटियाँ हैं वे मेरी हैं। विज्ञ पाठक मुझे एक अबोध उत्साहील बालक मानकर इस किताब की त्रुटियों को संशोधन करने का कष्ट करें एवं मुझ को अवगत करायें।

लेखन कार्य में सहायता करने वाले हमारे संघ के साधु, साधिव्याँ, मेरी धार्मिक शिष्यायें एवं कुछ प्रध्यापक हैं। उपरोक्त व्यक्तियों की सहायता के बिना मेरे द्वारा ऐसा व्यापक कार्य असम्भव नहीं तो कष्ट साध्य हो जाता। इसलिए इन लोगों की सहायता की जितनी प्रसंशा की जाए उतनी कम है। मेरी वीर प्रभु से प्रार्थना है कि वे लोग उत्तरोत्तर ऐसे रचनात्मक कार्य में अधिक भाग लें एवं अपने जीवन को धर्ममय बनायें।

इस कृति का संकलन करने में जो अथक प्रयास हुआ है वह प्रयास तब सार्थक होगा जब एक भी व्यक्ति ऋषभदेव के अनुसार अपना जीवन पूर्ण नहीं तो कम से कम अर्थशक्ति बनाये। अखिल जीव जगत मंगलमय, दया के अवतार, पुण्य श्लोक ऋषभदेव के पवित्र प्रेरणाप्रद चारित्र का अध्यन, मनन, चिन्तन एवं अनुकरण करके ऋषभदेव के समान युग निर्माता नहीं तो कम से कम स्व निर्माता बने। इन मंगलमय शुभ कमनाओं के साथ। ऋषभदेव के अकिञ्चन सेवक

कनकनन्दी

गुरु बिन कौन दिखाये राह

“सन्त न होते जगत् में तो जल जाता संसार” यह सूक्ति मुझे बिल्कुल सत्य प्रतीत होती है क्योंकि मैं देखती हूँ कि आज का प्रत्येक मानव भौतिकता की मदिरा का पान किये मदमस्त हुआ पापमय अन्धकृप में पड़ता चला जा रहा है। ऐसे समय भी यदि इन गिरते हुओं को गुरुओं का अवलम्बन नहीं मिला तो अवश्य ही मनुष्य धर्म से बिल्कुल ही विमुख हो जायेगे, चारों ओर भ्रष्टाचार का ही समाज्य फैल जायेगा और शान्ति, प्रीति रूपी मातायें उससे घबराकर अपना आंचल समेट लेंगी। फिर यह प्राणी उसी प्रकार हो जायेगा जैसे कोई माता अपने भ्रष्ट हुए बेटे को प्यार नहीं देती तो उसे कहीं भी शांति नहीं मिलती। वह अपनी माता के आंचल से वंचित हो जाता है, इसलिए यदि प्रीति और शांति रूपी मां के आंचल में अपने को सुरक्षित रखना चाहते हैं, तो अवश्य ही ऐसे गुरुओं का अवलम्बन लेना ही पड़ेगा, जो निःपरिग्रही, निस्वार्थी, निष्पक्ष(रागद्वेष से रहित) निर्भय, निष्कलंक हों। तो आओ हम भी एक ऐसे ही महानात्मा, महान् सन्त के दर्शन करें और यदि दर्शन न कर पायें तो उनका साहित्य ही पढ़ लें, क्योंकि मैंने भी आचार्य श्री कुंथु सागर जी महाराज जब सर्संघ मुजफ्फरनगर पधारे थे तब उनके दर्शन किये। सारे संघ के साधु खूब पढ़ते लिखते हैं, अधिकांश साधु बाल ब्रह्मचारी, कम उम्र के हैं, उन सब में ही विद्यमान वह महान् आत्मा जिनका नाम प्रायः सभी जानते भी है। ‘उपाध्याय एलाचार्य अभीक्ष्य ज्ञानोपयोगी कनकनन्दी महाराज’? मेरे मन में प्रश्न उठा कि महाराज तो एक ही है, फिर इतनी उपाधियाँ क्यों? वैसे तो आजकल यह कोइ बड़ी बात नहीं, कई जगह इनसे भी ज्यादा लगाते हैं। तब माताजी ने बतलाया कि उपाध्यायश्री की लगन, परिश्रम से आचार्यश्री बहुत खुश होते हैं और वे कहते हैं यह तो मेरा हीरा है, और उन्होंने उन्हें इतनी उपाधियाँ दी हैं। उपाध्यायश्री तो उपाधियों से दूर ही रहना चाहते हैं। मैंने देखा कि पढ़ते तो सब साधु हैं परन्तु उन सब में सबसे ज्यादा पढ़ने लिखने वाले थे तो कनकनन्दी महाराज। जिनके दर्शन भी हमें जालियों से करने पड़ते थे क्योंकि उन्हें एकांत व शांति चाहिये इसलिये अपने कमरे के (जाली वाले) दरवाजे बन्द करके ही बैठे

रहते थे। मैंने एक दिन उपाध्यायश्री से प्रश्न किया, “महाराज जी आप इतना अधिक क्यों पढ़ते लिखते हैं, क्या आपको पुस्तके छपवाने का शौक है? आप अपना नाम चाहते हैं?” तब उन्होंने बतलाया, “नहीं, न मुझे पुस्तके छपाने का शौक है और न ही मैं ख्याति चाहता हूँ, मैं अपना नाम भी देना पसन्द नहीं करता, किन्तु आचार्यश्री मुझ पर नाराज होते हैं, कहते हैं बिना नाम के किसको पता चलेगा किसने लिखी, और चाहे जो व्यक्ति उस पर नाम लिखवाने का प्रयास करेगा। मैंने जब से दीक्षा ली, तभी से एक ही काम किया—पढ़ना और पढ़कर धर्म, विज्ञान, राजनीति, इतिहास, आदि को जोड़कर धर्म की महत्ता के बारे में खोज करना, इसी बात की मुझे लगन है, और मैं सारे विश्व को धर्म एवं विज्ञानादि के रहस्यों को आधुनिक ढंग से समझना तथा समझाना चाहता हूँ।”

“यदि आप कहती हैं कि नाम की इच्छा है तो नाम या प्रसिद्धि होने की आजकल कोई बड़ी बात नहीं क्योंकि १०-५० सेठों के पल्ले पकड़ लो, दो-चार मंत्र दे दो, फिर देखो कितनी जल्दी नाम होता है। इसलिये मैं स्वयं ही इन चीजों से नफरत करता हूँ। मैं तो मात्र रागद्वेष की निवृत्ति के लिये स्वपर कल्याण के लिये बस एक ही काम करता हूँ, और वह है स्वाध्याय। संघ के साधुओं को भी यही प्रेरणा देता हूँ। क्योंकि स्वाध्याय भी तप है। वर्तमान में उत्तम संहनन के अभाव में कर्म-निर्जरा का एक ही बड़ा साधन है।” मेरी बचपन से ही पढ़ने की रुचि रही। अपने मन में उठी शंकाओं का समाधान पाकर तथा गुरुवर के विचार—धारा को सुनकर मेरा मन गद्-गद् हो गया कि वास्तव में गुरु हो तो ऐसे महाराज जी। महाराजश्री ने एक बात और कही वे कहते हैं कि आज का प्रत्येक मानव बुद्धिजीवी है, वैज्ञानिक युग का है, परीक्षण-निरीक्षण करने वाला, वह धर्म हो या कोई भी चीज रुढ़ि या परम्परा से अन्धविश्वास से कदापि स्वीकार नहीं करेगा उसे तो सिद्ध करके, परीक्षण-निरीक्षण, आचरण में उतार कर प्रायोगिक माध्यम से समझना होगा।

इन्हीं सब विचारों से प्रभावित होकर मेरी भी गुरुवर का साहित्य छपवाने की तीव्र इच्छा हुई। जिसे मैंने राजश्री माताजी के समक्ष प्रगट की। फिर माताजी ने मुझे बताया कि शास्त्र आदि छपवाने से ही ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम होता है, और ज्ञान में वृद्धि होती है। आजकल हम दान तो देना चाहते हैं परन्तु कहां और कब देना है किस पात्र को देना है उसमें उतनी पात्रता है या नहीं यह

सब कुछ नहीं देखते, इसलिये तो आज कई लोग धर्म का नकली मुखोटा लगायें समाज को लूट रहे हैं और कुछ अन्धविश्वासी अभी भी विद्यमान हैं जो अपने थोड़े बहुत दुःखों को दूर करने के लिये धन देकर धर्म कमाना चाहते हैं। मैं चाहती हूँ अपने धन का आप भी और मैं भी सदुपयोग करे। जिससे धर्म की सद्व्यापनी प्रभावना हो ऐसा प्रयास करे, तब ही सचमुच हम दान का सही पुण्य प्राप्त कर सकते हैं। वरना ऐसा हाल होगा कि जैसे किसी व्यक्ति को तीव्र प्यास लगी है तो उसे पानी नहीं दिया दूध दे दिया तो उसकी प्यास शांत होगी? कदापि नहीं, उसी प्रकार पात्र की योग्यता देखकर ही उसे दान देना विवेकियों का काम है।

गुरुदेव का अथक परिश्रम अवश्य ही इस पतित समाज को उत्थान की उस चोटी पर ले जायेगा जिसकी वे आस लगाये हैं, क्योंकि हर माता-पिता जिस प्रकार अपने बच्चों का उत्थान चाहते हैं उसी प्रकार जो सच्चे गुरु हैं वे विश्व के समस्त प्राणियों का उत्थान चाहते हैं। मैं अपने आपको सौभाग्य-शाली समझती हूँ कि जो हमें ऐसे गुरु का समागम प्राप्त हुआ व उनके साहित्य का, शास्त्रों का अध्ययन आदि करने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं प्रभु से यही प्रार्थना करती हूँ मुझे सदैव ऐसे ही अवसर मिलते रहे, नहीं तो इस भौतिकता के जंगलों में भटके राहियों को ऐसे पथ-प्रदर्शक यदि न मिले तो हमें कि ‘सन्त न होते जगत् में तो जल जाता संसार,’ इसकी जगह यह कहना पड़ता हि ‘सन्त बिना जल गया संसार।’

हे प्रभु आप भी धन्य हैं जो आज भी आपके साक्षात् दर्शन देने वाले ऐसे गुरुओं का अस्तित्व हमारे बीच में है। जबकि हम उनकी पूरी चर्चा निभाने में असमर्थ हैं, उनकी पूर्ण सेवा भी नहीं कर पाते, ज्ञान का भी अभाव है फिर भी हमारे गुरु जो संहनन के अभाव में भी इन भौतिक वादियों के तूफान तथा वासनामयी संसार सागर से अपनी नाव खींचते हुये अपने आपको सुरक्षित किये चारित्र पालन में अनुरक्त हैं। कवि भूधर दास जी ने कहा भी है “ते गुरु मेरे उर बसो”- मेरी भी एक यही भावना है ऐसे ही गुरुओं के चरण मेरे हृदय में विराजमान हो जिनमें हे प्रभु मैं आपकी छवि का दर्शन कर सकूँ।

श्रीमती सुधा जैन
मुजफ्फरनगर(उ.प्र.)

आमुख

सभ्यता एवं संस्कृति का उद्गम, प्रचार, प्रसार, उन्वन एवं दृढ़ीकरण महापुरुषों से होता है। मनुष्य समाज एवं पशु समाज दोनों समकालीन प्राचीन समाज होते हुए भी मनुष्य समाज उत्तरोत्तर सभ्यता एवं संस्कृति को उन्नत करते हुए विराम गति से आगे बढ़ता जा रहा है, परन्तु पशु समाज प्रारंभिक प्राचीन काल में जिस रिथ्ति में था, आज भी सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से उसी रिथ्ति में है अथवा और पीछे भी हटा है; क्योंकि मनुष्यों का एक विंतनशील, प्रज्ञावान, विवेकवान, प्रगतिशील समाज है। इस मानव समाज में कुछ ऐसे अलौकिक शक्ति प्रतिभा के धारी, क्रांतिकारी महान पुरुष हुए हैं, जिनसे मानव समाज को आगे बढ़ने के लिए दिशा, उत्साह, प्रेरणा मिली है। यदि मानव समाज में प्रगतिशील, क्रांतिकारी महापुरुष नहीं होते तो शायद आज भी मानव समाज पशु समाज के समकक्ष होता। पशु समाज में ऐसे कोई उन्नतिशील व्यक्ति नहीं होते, जिससे पशु समाज की उन्नति हो।

जिस प्रकार “न धर्मो धार्मिके विना” अर्थात् धर्मात्मा को छोड़कर धर्म का अस्तित्व ही नहीं है। उन्नतिशील जीवन्त सभ्यता एवं संस्कृति के विग्रह स्वरूप महामानव जो आहार-विहार, आचार-विचार करते हैं, वही सभ्यता एवं संस्कृति है। मानव समाज विशेषतः अनुकरण प्रिय होने से वे महापुरुषों का अनुकरण करके उनके पद चिन्हों पर यथाशक्ति कदम-कदम रखकर आगे बढ़ने का पुरुषार्थ करते हैं। प्राचीन भारतीय विचारक नीतिकारों ने कहा है—

यद्यदाचरित श्रेष्ठस्त्रदेवेत्तरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

जो जो आचरण श्रेष्ठ महापुरुष करते हैं, वे-वे आचरण अन्य जन अनुकरण करते हैं। महापुरुष जिसको प्रमाणित करते हैं, समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत करते हैं, लोक मानस उसका अनुकरण करते हैं। व्यासदेव ने विश्व के महाकाव्य महाभारत में कहा भी है—

“महाजनो येन गताः सः पंथाः”

महा-मानव जिस मार्ग पर अपने दृढ़ उन्नतिशील पद को धारण करके आगे बढ़ते हैं, वही मार्ग दूसरों के लिए आदरणीय, अनुकरणीय, आदर्श पथ/मार्ग बन जाता है अर्थात् महापुरुष दीप-स्तम्भ के समान स्वयं को प्रकाशित करने के साथ-साथ दूसरों को भी प्रकाश प्रदान करते हैं।

प्रत्येक देश-विदेश के इतिहास पुराणों के पन्ने महापुरुषों की जीवन गाथा से ही सजीवता को प्राप्त हुए हैं। महापुरुषों की जीवन गाथा यदि इतिहास पुराणों से निकाल दी जावे तो इतिहासों के पन्ने निर्जीव कोरे कागज रह जावेंगे। महापुरुषों के जीवन चलते फिरते जीवन्त इतिहास के सदृश्य है। महापुरुषों की जीवन गाथा महान है। महापुरुषों से इतिहास बनता है किन्तु इतिहास से महापुरुष नहीं बनते हैं। महापुरुषों का जीवन निम्न प्रकार होता है—

चलते चलते राह है, बढ़ते बढ़ते ज्ञान।

तपते तपते सूर्य है, महापुरुष महान्॥

महापुरुषों के महा व्यक्तित्व से ही सभ्यता, संस्कृति एवं द्वा त्रृं संजीवनी शक्ति मिलती हैं। प्रत्येक देश के महापुरुषों के पवित्र चारित्र आदि पीढ़ी को मार्ग दर्शन रूप में प्रस्तुत करने के लिये बड़े-बड़े ज्ञानी इतिहासवेत्ता महापुरुषों ने लिपि बद्ध करके रखवे जिसको इतिहास, पुराण, चरित्र, जीवन गाथा आदि नामों से पुकारा जाता है। जैन धर्म में एक महान ज्ञानी ऋषि, पुराण, इतिहास के वेत्ता आचार्य जिनसेन स्वामी ने एक महान ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की है, जिसका नाम ‘आदि पुराण’ या ‘महापुराण’ है। आदि पुराण भारतीय इतिहास ही नहीं बल्कि विश्व इतिहास का महान कोश है। महा प्राज्ञ आचार्यश्री ने वृषभादि धर्म तीर्थ के नायक, 24 तीर्थकर, राष्ट्र के अधिनायक भरतादि 12 चक्रवती, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 बलभद्र, आदि ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन चारित्र चित्रण के माध्यम से ऐतिहासिक, सभ्यता, संस्कृति, धर्म, राजनीति, समाज नीति आदि-आदि के सुन्दर स्पष्ट विशद् वर्ण किये हैं। स्वयं आचार्यश्री ने पुराण, इतिहास एवं आदि पुराण के बारे में वर्णन करते हुए निम्न प्रकार कहा है—

पुरातनं पुराणं स्यात् तन्मन्महदाश्रयात्।

महद्विरुपदिष्टत्वात् महाश्रेयोऽनुशासनात्॥ २१॥

आदि पुराणं प्रथम पर्व

यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रचीन काल से प्रचलित है इसलिए पुराण कहलाता है। इसमें महापुरुषों का वर्णन किया गया है अथवा तीर्थकर आदि महापुरुषों ने इसका उपदेश दिया है अथवा इसके पढ़ने से महान कल्याण की प्राप्ति होती है, इसलिए इसे महापुराण कहते हैं।

कविं पुराणमाश्रित्य प्रसूतत्वात् पुराणता ।

महत्वं स्वमहिमैव तस्येत्यन्यैर्निरुच्यते ॥ २२ ॥

प्राचीन कवियों के आश्रय से इसका प्रसार हुआ है, इसलिए इसकी पुराणता, प्राचीनता सिद्ध ही है तथा इसकी महत्ता इसके माहात्म्य से ही प्रसिद्ध है, इसलिए इसे महापुराण कहते हैं ऐसा भी कितने ही विद्वान महापुराण की निरुक्ति- अर्थ करते हैं:-

महा पुरुष सम्बन्धि महाभ्युदय शासनम् ।

महा पुराण मानात् मत एतन्महर्षिभि ॥ २३ ॥

यह पुराण महापुरुषों से सम्बन्ध रखने वाला है तथा महान अभ्युदय स्वर्ग मोक्षादि कल्याणों का कारण है, इसलिए महर्षि लोग इसे महापुराण मानते हैं।

ऋषिप्रणीतमार्ष स्यात् सूक्तं सुनृतशाशनात् ।

धर्मानुशासनाच्चेदं धर्मशास्त्रमिति स्मृतम् ॥ २४ ॥

इतिहास इतीष्टं तद् इति हासीदिति श्रुतेः ।

इतिवृत्तमथैतिह्यमान्नायं चामनन्ति तत् ॥ २५ ॥

यह ग्रन्थ ऋषि प्रणीत होने के कारण आर्ष सत्यार्थ का निरूपक होने से सूक्त तथा धर्म का प्रसूपक होने के कारण धर्मशास्त्र माना जाता है। ‘इति इह आसीत्’ यहाँ ऐसा अनेक कथाओं का इसमें निरूपण होने से ऋषिगण इसे ‘इतिहास’, ‘इतिवृत्त’ और ‘ऐतिह्य’ भी मानते हैं।

पुराणमिति हो साख्यं यत्प्रोवाच गणाधिपः ।

तत्क्लाहमधीर्वक्ष्ये केवलं भक्तिचोदितः ॥ २६ ॥

जिस इतिहास नामक महापुराण का कथन स्वयं गणधर देव ने किया है, उसे मैं मात्र भक्ति से प्रेरित होकर कहूँगा क्योंकि मैं अल्पज्ञानी हूँ-

महापुराण सम्बन्धि महानायक गोचरम् ।

त्रिवर्गं फलं संदर्भं महाकाव्यं तदिष्वते ॥ २७ ॥

जो प्राचीन काल से इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला हो, जिसमें तीर्थकर चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के चरित्र का चित्रण किया गया हो तथा जो धर्म, अर्थ काम के फल को दिखाने वाला हो, उसे महाकाव्य कहते हैं।

केवल कुछ स्वार्थ परक सत्तालोल्पी नृशंस व्यक्तियों के द्वारा मानवीय सभ्यता-संस्कृति, धर्म, धन, जन-जीवन को विध्वंस करने वाले युद्ध-विग्रह-कलह, आक्रमण, अत्याचार, अनाचार, का वर्णन यथार्थ से इतिहास नहीं है, यह तो इतिहास के लिये कलंक स्वरूप है परन्तु महामानव की पवित्र उदात्त प्रेरणाप्रद पवित्र गाथा ही इतिहास है जिसके माध्यम से मानव को पवित्र शिक्षा एवं दिशा बोध होता है।

जिस प्रकार ग्रीक की प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के अध्यन के लिए वहाँ के महान दार्शनिक नीतिवान् आदर्श ‘सुकरात्’, ‘लेटो’, ‘अरस्तु’ आदि का जीवन चरित्र अध्ययन करना चाहिए, उसी प्रकार भारतीय सभ्यता-संस्कृति, नीति-नियम को जानने के लिए प्रातः स्मरणीय पुण्य श्लोक ऋषभदेवादि तीर्थङ्कर, भरतादि चक्रवर्तियों का जीवन चरित्र अध्ययन करना अति आवश्यक है। जैसे भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के समय में ‘महात्मा गांधी’ कहने से ‘भारत’ तथा ‘भारत’ कहने से ‘महात्मा गांधी’ का ग्रहण देश-विदेश के लोग करते थे, उसी प्रकार प्रत्येक युग की सभ्यता- संस्कृति परिस्थिति का अध्ययन उस कालीन महापुरुषों के जीवन चरित्र के अध्ययन से प्राप्त होता है।

हम इस प्रकरण में सर्वप्रथम उस महापुरुष का वर्णन करेंगे जिनसे केवल भारतीय नहीं परन्तु पृथ्वी की समस्त आदि सभ्यता, संस्कृति, धर्म, कला, कौशल, ज्ञान-विज्ञान, विद्या, वाणिज्य, जीविकोपार्जनोपाय, राजनीति, समाजनीति आदि का उद्गम, प्रचार-प्रसार एवं स्थापना हुई थीं। इस युग की उपरोक्त सम्पूर्ण सभ्यता आदि के सूत्रधार होने के कारण उनका नाम ही आदिनाथ, आदिब्रह्म, आदि पुरुष, युगादि पुरुष, आदि तीर्थकर, कुलकर, आदि धर्म प्रवर्तक आदि से अभिहित हुआ। वे थे ‘भगवान् धर्मक्रान्तिकारी युग पुरुष ऋषभदेव’।

इस प्रकरण के द्वितीय चरित्र नायक वह महापुरुष हैं जो कि आदि पुरुष के ज्येष्ठ श्रेष्ठ पुत्र थे एवं जिनके पुण्य प्रताप, पुरुषार्थ, शौर्य, वीर्य, राजनीति, प्रजा पालन आदि गुणों के कारण इस देश का ही नाम ‘अजनाभि’ से ‘भारतवर्ष’
XV

रूप से प्रसिद्ध हुआ। वे हैं 'स्वनाम धन्य कृष्णभद्रेव के पुत्र पुण्य भूमि भारतवर्ष के प्रथम प्रधान एकछत्राधिपति सम्राट भरत चक्रवर्ती'।

उपरोक्त दोनों पुरुष प्रागेतिहासिक एवं प्राग्वैदिक काल में हुए थे। क्योंकि कृष्णभद्रेव का वर्णन वेद में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है और भरत चक्रवर्ती आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण प्रायः उनके समकालीन हैं। उपरोक्त सिद्धान्त से स्वतः सिद्ध हो जाता है कि कृष्णभ देव द्वारा इस युग के आदि में प्रतिपादित, प्रचारित जैन धर्म वेद से भी प्राचीन है अथवा कम से कम वेद कालीन तो है ही। इससे और एक सिद्धान्त स्वतः सिद्ध हो जाता है कि इस भूखण्ड का नाम शकुन्तला एवं दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम पर नहीं हुआ है क्योंकि अनेक हिन्दू पुराणों एवं जैन पुराणों में कृष्णभ के पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारत हुआ—यह प्रतिपादन स्पष्ट है जो कि आगे स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। कृष्णभद्रेव के पुत्र भरत इस युग के प्रथम चरण में होने के कारण एवं शकुन्तला के पुत्र भरत पश्चात् काल में होने के कारण शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम से इस देश नाम भारत नहीं हो सकता है।

युगादि पुरुष धर्म तीर्थ प्रवर्तक भगवान् कृष्णभद्रेव और उनके ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत के अनन्तर अनेक महापुरुष हुए हैं जिनके कार्य— कलाप प्रायः उपरोक्त दोनों महापुरुषों से बहुत कुछ साम्य रखते हैं इसलिए विस्तार के भय से उनका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है। विशेष जिज्ञासु इतिहास सम्बन्धी प्रामाणिक प्राचीन ग्रन्थ महापुराण (आदि पुराण), हरिवंश पुराण, पद्म पुराण, पाण्डव पुराण आदि का अवलोकन करें। दोनों महापुरुषों के अनन्तर अनेक करोड़ अरब वर्ष के बाद एक प्रसिद्ध धर्म क्रान्तिकारी महापुरुष हुए जिनका पवित्र नाम अरिष्ट नेमि(नेमिनाथ तीर्थकर) है। वे प्रसिद्ध महापुरुष नारायण श्रीकृष्ण के चरेरे भाई थे। कौरव पाण्डवों के बीच जो महाभारत रूप महायुद्ध हुआ था वह एक ऐतिहासिक घटना है जिसे वर्तमान ऐतिहासिक विद्वान भी मान्यता देते हैं। महाभारत तथा श्रीकृष्ण ऐतिहासिक प्रसिद्ध होने से उनसे समकालीन चरेरे भाई अरिष्ट नेमि भी ऐतिहासिक पुरुष स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। अरिष्ट नेमिनाथ का वर्णन केवल जैन साहित्य में ही नहीं परन्तु हिन्दुओं के प्रसिद्ध वेदादि में भी पाया जाता है। कृष्णभद्रेव के बाद २० तीर्थकर होने के उपरान्त अरिष्ट नेमि तीर्थङ्कर हुए हैं। वे प्रसिद्ध २२ वे तीर्थङ्कर थे। उनके

8. ६५० वर्षों के अनन्तर २३ वे तीर्थङ्कर पाश्वनाथ हुए जो कि अत्यन्त कठिन यातना रूपी परीक्षा से उत्तीर्ण होकर केवलज्ञान को प्राप्त कर बिहार के प्रसिद्ध सिद्धक्षेत्र सम्मेद शिखर से मोक्ष पथारे। उनके नाम से तीर्थराज पर्वत का नाम 'पाश्वनाथ पर्वत' प्रसिद्ध हुआ है।

पाश्वनाथ तीर्थङ्कर के बाद २५० वर्ष के अनन्तर सुप्रसिद्ध अन्तिम तीर्थङ्कर वर्धमान महावीर हुए हैं। वर्धमान महावीर प्रसिद्ध महापुरुष, करुणा के अवतार महात्मा बुद्ध के समकालीन थे। दोनों महापुरुषों ने तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक विषमता, अन्याय, अत्याचार को दूर करने के लिए भगीरथ प्रयास किया था। दोनों ने वैभव सम्पन्न राजकुमार होते हुए भी स्व-पर कल्याण के लिए भरी यौवन अवस्था में अतुल वैभव को तृणवत् त्याग कर कठोर आत्मसाधना के माध्यम से स्वयं आध्यात्मिक ज्योति को प्राप्त करके तत्कालीन समस्त अंधकार को दूर किया था। दोनों ने धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा को पाप, अनैतिक, अधर्म, अनाचरणीय बताकर हिंसा के विरुद्ध अहिंसात्मक शांतिपूर्ण महान् क्रांति उत्पन्न थी। जिससे यज्ञ में होने वाली पशु हिंसा यहाँ तक कि नर बलि भी निषिद्ध हो गयी। हिन्दू धर्म में याज्ञिक क्रिया-कलाप में होने वाली महान् हिंसा इन दोनों महापुरुषों के कारण ही अधिकांश रूप में समाप्त हुई।

हिन्दू धर्म में यज्ञ में होने वाले हिंसात्मक थोथे कर्मकांड से ऊब कर एवं असारता को हृदयंगम करके तथा अहिंसा समर्थ प्रचारक-प्रसारक क्षत्रिय तीर्थङ्करों तथा महापुरुषों के प्रभाव में आकर हिन्दू धर्म में भी कुछ आध्यात्मिक क्रांतिकारी महापुरुष हुए। उन्होंने आध्यात्मिक साधना, ध्यान, मनन, चिंतन, मन इन्द्रिय संयमन, आकिञ्चन आदि उपायों से ही स्व-पर, इहलोक, परलोक एवं आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है— पूर्ण रूप से समर्थन करके, आचरण करके, भोले भ्रष्ट मानव समाज को सुपथ में लाने के अकथनीय भागीरथ प्रयास किये। यह सब उपरोक्त विषयों का विवरण उपनिषद्, भागवत्, पुराण आदि से स्पष्ट प्रतिभासित होता है। उन क्रांतिकारी महापुरुषों में महर्षि याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी, श्वेतकेतु, राजऋषि जनक, शुकदेव आदि का नाम अवस्मिरणीय है।

उपनिषद् के लेखक, प्रचारक-प्रसारक एवं अनुकरण करने वाले महापुरुषों ने भी बाह्य आडम्बर क्रिया-काण्ड, ख्याति, लाभ, पूजा, लोकेषणा, आकांक्षा, परिग्रह, आदि को त्यागकर विनय, निरहंकार, निस्पृहता, शांति, दान्ति, संयम,

ब्रत नियम, यम आदि आध्यात्मिक वैभव से सम्पन्न होकर आत्म-साधन एवं सत्य साक्षात्कार के लिए आध्यात्मिक अहिंसात्मक यज्ञ(क्रिया) का अवलम्बन लेकर दुनियाँ को आध्यात्मिक ज्योति'प्रदान की। उनमें अवधूत, हंस, परमहंस, अलेख आदि अनेक भेद हैं। उच्च साधक बाह्य समस्त परिग्रह के साथ वस्त्र-लंगोटमात्र का भी परित्याग कर बालकवत् पूर्ण दिगम्बर रहते थे। सुप्रसिद्ध व्यासदेव के पुत्र आध्यात्मिक प्रेमी महर्षि शुकदेव आजन्म नग्न थे।

विश्वसंस्कृति में भारतीय संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि भारतीय संस्कृति पूर्ण आध्यात्मिक है। आध्यात्म ही भारतीय संस्कृति का प्राण है। यदि भारतीय संस्कृति में से आध्यात्मिकता को निकाल दिया जाये तो भारतीय संस्कृति निर्जीव हो जायेगी; और आध्यात्मिकता के मूर्तिमान स्वरूप भारतीय तत्त्ववेत्ता,ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न ऋषि, मुनि, साधु, संत होते हैं, अतः साधु संत ही भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। भारतीय संस्कृति माने साधु संस्कृति हैं। जब तक हम साधुओं को आदर-सन्मान की दृष्टि से नहीं देखेंगे, उनकी रक्षा, सेवा, उनकी समृद्धि नहीं करेंगे तब तक हम भारतीय संस्कृति की सुरक्षा नहीं कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक साधु-संत संस्कृति होने के कारण भारतीय संस्कृति के आध्ययन के लिये, परिज्ञान के लिये साधुओं की पवित्र जीवन गाथा का अध्ययन नितान्त आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर भारतीय सभ्यता संस्कृति के उन्नायक समर्थ प्रचारक कुछ महापुरुषों के पवित्र जीवन चरित्र प्राचीन प्रामाणिक आचार्यकृत ग्रंथों से कर रहे हैं। इन महापुरुषों के जीवन चरित्र से उनके पवित्र आचरण के साथ-साथ सभ्यता- संस्कृति-धर्म, नीति-नियम, सदाचार, ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा-दीक्षा, कला-कौशल आदि का परिज्ञान होता है। उनके पवित्र आदर्श चरित्र का अध्ययन अंतरंग भावना पूर्वक करने से उनके सदृश बनने की अन्तः प्रेरणा जाग्रत होती है। उस प्रेरणा से प्रेरित होकर प्रगतिशील मानव उत्तरोत्तर प्रगति करते हुए उनके सदृश ही बन जाता है। यह ही पवित्र पुरुषों की जीवन गाथा अध्ययन करने का मुख्य उद्देश्य है। एक मराठी कवि ने कहा है—

महापुरुष होऊन गेले त्यांचे चारित्र पहा जरा।

आपण त्यांचे समान ह्वावे यांचे सापडे बोध खरा॥

अनेक महा मानव इस धरती पर हो गए हैं, उनके चारित्र के अवलोकन-

अध्ययन से हम भी उन जैसे बने, इसमें ही यथार्थ सारभूत ज्ञान है अर्थात् उनका चरित्र अध्ययन करके उनके सदृश होना चाहिए।

केवल मनोरंजन के लिये महापुरुषों के चारित्र के अध्ययन से विशेष लाभ नहीं होता है। महापुरुष के चारित्र अध्ययन से यदि हम कुछ नैतिक आध्यात्मिक उन्नति नहीं करते हैं तो हमारा अध्ययन एक मनोरंजनकारी व्यसन रूपी है। प्राचीन काल में पवित्र पुरुषों का जीवन-चारित्र विद्यापीठ-गुरुकुल, घर-घर में अध्ययन होता था, जिससे भारत में सदाचार, विनय, वात्सल्य-प्रेम, सत्य-अहिंसा, सौहार्दपूर्ण व्यवहार आदि को पोषण शक्ति मिलती थी। परन्तु वर्तमान भारत के किशोर नवयुवक-नवयुतियाँ, प्रौढ़, आबालवनिता, काल्पनिक, अतिरज्जित विषय वासना, अन्याय, अत्याचार को पोषण करने वाले नोवेल, तिलस्मी आदि को पढ़कर तथा T.V., सिनेमा देखकर कुपथगामी हो रहे हैं। यथार्थ में साहित्य उसे कहते हैं, जिससे नैतिकाचार, सदाचार, विनय, अहिंसा-सत्यनिष्ठ, पौष्टिक तत्त्व मिलें। परन्तु जिस साहित्य के माध्यम से कुशीलता, भ्रष्टाचार, उत्थृंखलता आदि को प्रेरणा मिलती है वह सब कुशास्त्र एवं मानव समाज के लिए अहितकर कलंक स्वरूप, विष मिथ्रित भोजन के सदृश है। यदि प्यास लगी है तो प्यास शांत करने वाले एवं पौष्टिक तत्त्व को देने वाले पानी का सेवन करना चाहिए। यदि उपर्युक्त पानी नहीं मिलता है तो प्यास के कारण विषपान या मद्यपान नहीं करना चाहिए, क्योंकि उससे प्यास शांत नहीं होगी वरन् जीवन, स्वस्थ, नीति और धर्म का नाश हो जावेगा। उसी प्रकार अध्ययन की प्यास हैं तो सुसाहित्य का आस्वादन लेना चाहिए परन्तु विष या मद्यस्थानीय कुसाहित्य का सेवन नहीं करना चाहिए। उपरोक्त दृष्टिकोण को रखकर इस प्रकरण में कुछ महापुरुषों के प्रेरणाप्रद जीवन चारित्र प्रस्तुत कर रहे हैं। इस प्रस्तुत 'युग निर्माता ऋषभदेव' कृति में मैंने युगादि पुरुष आदिब्रह्मा, धर्म क्रान्ति के अग्रदूत, भगवत् ऋषभदेव के बारे में कुछ संग्रह करने का क्षुद्र प्रयास किया है। यह कृति धर्म प्रेमी गुण-ग्राहीयों के लिए प्रेरणाप्रद बने, इस शुभकामना के साथ.....(प्रथम संस्करण से)

—उपाध्याय कनकनन्दी

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
अध्याय :- 1. युग निर्माता ऋषभदेव का स्वर्गावतरण	1
(1) वृषभदेव भगवान का नाम करण	2 6
(2) देवकृत सेवा एवं भोग	2 7
(3) बाल्यावस्था	2 7
(4) किशोरवस्था	2 8
(5) आदिनाथ की विद्या एवं बाल्य क्रीड़ा	2 9
अध्याय :- 2. यौवनावस्था एवं शरीर संगठन	3 5
(1) ऋषभदेव के शरीर के शुभलक्षण	3 7
(2) ऋषभदेव का विवाह प्रस्ताव	4 0
(3) विवाह का उद्देश्य	4 1
अध्याय :- 3. आदिनाथ द्वारा कला एवं विद्याओं का उपदेश	4 4
(1) विद्या का महत्त्व	4 4
(2) सर्वप्रथम अक्षराङ्क विद्यारम्भ एवं स्त्रीशिक्षा	4 5
(3) लिपि निर्माण का इतिहास	4 6
(4) लिपि के बारे में आधुनिक मत	4 8
(5) लिपि निर्माता	4 9
(6) सर्वप्रथम वाङ्मयारम्भ एवं उसका स्वरूप	5 0
(7) सर्वप्रथम अर्थशास्त्र, राजनीति आदि की शिक्षा	5 1
(8) आदिनाथ के कुमारावस्था का काल	5 3
(9) प्रारम्भिक कर्मभूमि की दुखित प्रजाओं की आदिनाथ से विनिमय	5 4
(10) प्रजाओं के दुःख दूर करने के लिये ऋषभदेव का उपाय	5 5
(11) विभिन्न देशों की स्थापना	5 6
(12) सुरक्षोपाय एवं किले निर्माण	5 8
(13) राजधानी निर्माण	5 8
(14) सामाजिक व्यवस्था	6 1

अध्याय :- 4. ऋषभदेव का राज्याभिषेक	6 2
(1) ऋषभदेव का राज्यानुशासन	6 4
(2) कर्म भूमि का कारण	6 6
(3) दण्ड नीति	6 7
(4) दण्ड नीति के उचितता	6 7
(5) कर व्यवस्था	6 8
(6) इक्षुरस आविष्कारक	7 2
(7) युग निर्माता आदि द्वाद्वा	7 2
अध्याय :- 5. राजा वृषभदेव का वैराग्य उत्पादक कार्यक्रम	7 5
(1) परिनिष्क्रमण	7 9
(2) सन्यास व्रत धारण	7 9
(3) भरत द्वारा ऋषि ऋषभदेव की पूजा	8 1
(4) ऋषि ऋषभ की तपश्चर्या	8 2
(5) विभिन्न पाखण्डी मतों का प्रारम्भ	8 5
(6) तपश्चरण का प्रकृति पर प्रभाव	8 7
(7) आहार, शरीर एवं धर्म समन्वय	8 8
(8) ऋषभदेव की आहारचर्या	9 0
(9) दान-तीर्थ प्रवृतक राजा त्रेयांस	9 4
(10) बोधि के लिए तपश्चर्या	9 6
अध्याय :- 6. ऋषि-ऋषभदेव बने भगवान	1 0 1
(1) तीर्थकरत्व का माहात्म्य	1 0 2
(2) बोधि लाभ खबर का विश्व व्यापी प्रचार	1 0 3
(3) विश्व धर्म सभा	1 0 4
(4) मंगलमय का मंगल विहार	1 0 6
(5) महादेव ऋषभदेव का कैलाश गमन	1 0 8
(6) आदिनाथ का विशाल धर्म संघ	1 0 9
(7) ऋषभदेव का विहार काल एवं मोक्ष	1 1 0
(8) ऋषभदेव के पूर्व के 10 अवतार	1 1 3

अध्याय :- 7. हिन्दू धर्म(श्रीमद् भागवत) के अनुसार ऋषभदेव 114

(1) विभिन्न शास्त्रों में वर्णित ऋषभदेव	127
(2) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	130
(3) पुरातत्व(भूखनन) से सिन्धु ऋषभदेव	132
(4) बाह्यत और आहंत	134

अध्याय :- 8. आदिनाथ के विभिन्न रूप

(1) जगत के कर्ता हर्ता	139
(2) विश्व के स्वामी, त्रिपुरारि, त्रिनेत्र, अर्धनारीश्वर, वृषभ, ईश्वर, धाता, विश्वकर्मा, विश्वमूर्ति, युगादिपुरुष, शिव, शाक्य, तथागत, सिद्धार्थ, क्षणिकैकसुलक्षण, बोधिसत्त्व, निर्विकल्पदर्शन, वैशेषिक, पट्टपदार्थदृक्, नैयायिक, सांख्य, कपिल, वृषभदेव बनाम वृषध्वज (महादेव)	

अध्याय :- 9. ऋषभदेव के 10 अवतार 152

परिशिष्ट-	179
1. वर्तमान चौबीसी के प्रसिद्ध पुरुष	179
2. श्री चौबीस तीर्थकरों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य	181
3. संस्था के लिये आपके सहयोग	192

इस कृति के संदर्भ में

जीविका निर्वाह के लिए जिन्होंने जनता को आत्मरक्षा, कृषि, अंकाक्षर-विद्या, उद्योग (वाणिज्य), शिल्प-कला, सेवा की शिक्षा दी, राष्ट्र की व्यवस्था लिए राजनीति का पाठ पढ़ाया तथा अन्तिम सर्वश्रेष्ठ लक्ष्य अनन्त-अक्षय सुख-शान्ति के लिए आध्यात्म का मार्ग बताया ऐसे युगादि पुरुष आदि ब्रह्मा, हिरण्यगर्भ का वर्णन जैन तथा हिन्दूशास्त्रों के आधार पर आधुनिक संदर्भ में इस “युग निर्माता ऋषभदेव” कृति में अध्ययन करें। इसका अध्ययन मानों विश्व संस्कृति/सभ्यता के इतिहास का विहंगावलोकन है।

अध्याय 1

युग निर्माता ऋषभदेव का स्वर्गावतरण

विश्व अनादि अनन्त होते हुए भी परिवर्तनशील है। सूक्ष्म रूप में विश्व के प्रत्येक भाग में रिथ्यत प्रत्येक द्रव्य में परिणमन होते हुये भी विशेष रूप से युग परिवर्तन रूप स्थूल परिणमन भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में होता है। ऐरावत एवं भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में ये काल के विभाग हैं। यहाँ पृथक-पृथक् अवसर्पिणी और उत्सर्पिणीरूप दोनों ही काल की पर्यायें होती हैं।

अवसर्पिणी काल में मनुष्य एवं आयु, शरीर की ऊँचाई और विभूति इत्यादिक सब ही घटते तथा उत्सर्पिणी काल में बढ़ते रहते हैं।

इन दोनों को मिलाने पर बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण एक कल्प काल होता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में से प्रत्येक के छह भेद हैं— (१) सुषमासुषमा (२) सुषमा (३) सुषमादुषमा (४) दुषमासुषमा (५) दुषम (६) दुषमादुषमा। इन छहों में से प्रथम सुषमासुषमा चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण सुषमा तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण, तृतीय दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण, चतुर्थ दुषमासुषमा नामक काल ब्यालिस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण, पंचम दुषमा काल इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण और अतिदुषमा काल भी इतने ही इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण जानना चाहिए।

जिस प्रकार आधुनिक ऐतिहासिक विज्ञ मानते हैं कि आदिम काल में मनुष्य प्रकृति की गोद में स्वतंत्र रूप से विचरण करते थे। उस समय में सामाजिक जीवन के अभाव से परिवार, ग्राम, नगरादि का संगठन नहीं हुआ था। व्यक्तिगत धन, सम्पत्ति, वैभव, पशु, वनस्पति आदि नहीं थे। जिस प्रकार वर्तमान सूर्य किरण, प्राणवायु, जलादि प्राकृतिक संपत्ति सर्वसाधारण के लिए व्यवहार्य वस्तु है उसी प्रकार प्राचीन प्रागऐतिहासिक भोगभूमि काल में उपर्युक्त व्यवस्था थी। मन वांछित सम्पूर्ण जीवन—यापन सामग्री को देने वाले दस प्रकार के कल्पवृक्ष थे, उनके बिना परिश्रम केवल इच्छा मात्र से इच्छित सामग्री उपलब्ध हो जाती थी। इसलिए उस समय में कृषि, वाणिज्य, सेवा, शिल्पादि

जीवन यापन कार्य थे कर्म नहीं था । इस अपेक्षा से आधुनिक इतिहास एवं जैन प्राचीन इतिहास में समानता है परन्तु सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से देखने पर आकाश और पाताल जैसा अन्तर है क्योंकि ऐतिहासिक मानते हैं कि प्राचीन आदिम काल में मनुष्य असभ्य बर्बर(कूर), कद्मा मांस भक्षी, नग्न, सभ्य भाषा आदि से रहित होते थे । परन्तु सत्य तथ्य यह है कि सामाजिक, पारिवारिक जीवन यापन से रहित होते हुए भी वे लोग सभ्य, अत्यन्त सुन्दर मनुष्य शरीर को धारण करने वाले, कल्पवृक्ष से प्राप्त उत्तम-उत्तम परिधान धारण करनेवाले, सुवर्ण, रत्न निर्मित अलंकार, किरीट, कुण्डल आदि से अलंकृत शरीर वाले, अमृतोपम, कल्पवृक्ष से प्राप्त भोजन करने वाले तथा अनेक भोगोपभोग से जीवन यापन करने वाले भोग-भूमिज मनुष्य होते थे ।

जिस क्षेत्र में एवं जिस काल में भोग की प्रधानता रहती है उसको भोग भूमि कहते हैं । पूर्व संचित पुण्य के कारण भोग भूमिज मानव बिना परिश्रम किये कल्पवृक्षों से भोग-उपभोग की विविध प्रकार की उत्कृष्ट-उत्कृष्ट सामग्री प्राप्त करके पूर्ण जीवन सुखमय बिताते हैं । उस समय में रोगादि से अकाल मरण आदि से रहित होकर दोनों स्त्री-पुरुष अति-उत्तम भोग करते हुए जीवन यापन करते हैं । कल्पवृक्षों से सहज प्राप्त विभिन्न पोषाक एवं अलंकार से विभूषित होकर दोनों स्वामी-स्त्री प्रेम-प्रीति से सहवास करते हैं ।

आधुनिक ऐतिहासिक लोग बताते हैं कि प्राग् ऐतिहासिक काल में मनुष्य वस्त्र अलंकार से रहित होकर नग्न रहते थे । उदर पोषण के लिए पर्याप्त शुद्ध पक्व शाकाहार नहीं मिलता था, जिसके कारण वे लोग माँसाहार करते थे । परन्तु यह बात सत्य-तथ्य नहीं है । यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो प्राचीन कालीन मनुष्य सुख समृद्धि में जीवन यापन करते थे यह सिद्ध हो जायेगा ।

भोग-भूमि में उत्क्रान्ति

विश्व परिवर्तनशील है । समयानुकूल परिवर्तन होना विश्व का सहज जात स्वभाव है । उत्थान के बाद पतन एवं पतन के बाद उत्थान यह विश्व का एक अकाट्य प्राकृतिक नियम है । इस नियम का अपवाद कर्म संबंधी भोगभूमि में भी नहीं होता है । दीर्घ प्रायः 1 कोटाकोटि (1000000000000) सागर प्रमाण भोगपूर्ण सुखमय जीवन यापन के बाद कर्मभूमि में एक प्रकार नवीन क्रांति जन्म लेती है । विपरीत परिस्थिति से जीव अपनी सुरक्षा के लिये

विपरीत प्रकृति के विरोधी जीव से युद्ध करता है । यह आत्मा सुरक्षा रूपी संघर्ष ही जीव के उत्थान का कारण बन जाता है । जब तक जीवन में संकटमय परिस्थिति नहीं आती है तब तक जीव संघर्ष नहीं करता है और बिना संघर्ष उसकी जीवन शक्ति गतिशील नहीं होती है । इसीलिए कहा गया है दुःख मानव की सम्पत्ति है और दुःख मानव को उन्नत करता है । जिस प्रकार रात्रि के घने अंधकार के बाद एवं दिवस के जाज्ज्वल्यमान प्रकाश के मध्य में ब्राह्ममुहूर्त आता है उसी प्रकार भोगपूर्ण तमस काल के बाद तथा आध्यात्मिक उत्क्रान्ति पूर्ण कर्मभूमि के मध्य में प्रायः पत्य के आठवें भाग प्रमाण उत्थान सूचक कर्मभूमि का ब्राह्ममुहूर्त का मंगलमय उदय हुआ । यह काल मनुष्य समाज का संगठन, संघर्ष, उन्नयन, शोध-बोध का था । इस समय की अवधि में मनुष्य समाज के मार्गदृष्टा, निर्वाणकर्ता, विपत्ति से उद्धार करने वाले, मनुष्य समाज के महान शिल्पी चौदह मनु (कुलकर) हुए । वे लोग मनुष्य कुल के लिए विशिष्ट महत्वपूर्ण कार्य करने के कारण उनको मनु या कुलकर कहते हैं । उन्होंने मनुष्य समाज के लिए महान अवदान किए थे ।

भोग भूमि की परिस्थिति काल-चक्र के अनुसार परिवर्तित होती गई । पहले कल्पवृक्ष में जो शक्ति थी वह शक्ति भी क्षीणतम होती गई । पहले तेजांग कल्पवृक्ष के कारण भोगभूमि इतनी प्रकाशित होती थी जिसके कारण आकाश में शाश्वतिक रूप से अनादि से सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि ज्योतिष विमान होते हुए भी भोगभूमियों को नहीं दिखते थे । कल्पवृक्ष की ज्योति क्षीण होने के कारण सूर्य-चन्द्र दिखने लगे । अपरिचित तेजी वान चन्द्र-सूर्य को आकाश में देखकर उस समय की जनता भयभीत हुई । यह भय का कारण उनकी अज्ञानता थी । उस समय में जनता को यथार्थ उपदेश देकर भय को दूर करने वाले एक महान पुरुष हुए जिनका नाम प्रतिश्रुति था । मनुष्य कुल की अज्ञानता, भय, दुःख मिटाने के कारण उनको कुलकर या मनु कहकर पुकारा गया । इसी प्रकार उत्तरोत्तर कल्पवृक्ष की ज्योति नष्ट प्रायः होने से आकाश में तारे दिखाई दिए जिसे देखकर उस समय जनता भयभीत हुई और उनका भय यथार्थ उपदेश से दूर करने वाले द्वितीय सन्मति नामक मनु हुए । भोगभूमि के उत्तम वातावरण में जो व्याघ्र आदि पशु मनुष्य के साथ प्रेम, मैत्री से क्रीड़ा करते थे वे ही काल परिवर्तन से क्रूर हो गये जिससे उस समय के मनुष्य सन्त्रस्त हुए ।

क्षेमंकर नामक तीसरे कुलकर ने उन हिंसक प्राणियों से दूर रहने का उपाय बतलाया। काल क्रम से वे ही पशु जो पहले शुद्ध शाकाहारी थे, मनुष्यों को मारकर भक्षण करने लगे; उनसे अपनी आत्म रक्षा करने के लिए दण्डादिक रखने के लिए चतुर्थ मनु क्षेमंकर ने बताया पहले कल्पवृक्ष यथेष्ट जीवनयापन सामग्री इच्छामात्र से देने के कारण पहले की प्रजा निर्लोभ रूप से परस्पर प्रेम-प्रीति रूप से स्वतन्त्र रहती थी परन्तु कल्पवृक्ष कम होने से आवश्यकता पूर्ण नहीं हुई जिससे लोभ बढ़ा और लोभ के कारण संघर्ष शुरू किया। भोग प्रधान काल में किसी प्रकार की सामाजिक अनीति नहीं करने के कारण उस समय में अनीति प्रतिकार दण्ड व्यवस्था नहीं थी। जिस प्रकार निरोगी व्यक्ति की किसी भी प्रकार की चिकित्सा नहीं होती है, जिस प्रकार चिकित्सा का मूल कारण रोग है उसी प्रकार दण्ड का मूल कारण अन्याय अत्याचार है। काल परिवर्तन के साथ मनुष्य भी अन्याय करने लगे जिससे उस अन्याय का शोधन करने के लिए प्रतिश्रुति से लेकर सीमंकर पर्यन्त पाँचों मनुओं ने केवल हा (खेद है) दण्ड का प्रयोग किया। केवल उस समय हा शब्द से लोगों को इतना पश्चाताप, अपमान, दुःख, एवं ताङ्ग मिलता था, जिससे वे अनैतिक कार्य करने से भयभीत होकर पराङ्मुख (विमुख) होते थे।

आगे कल्पवृक्ष नष्ट होते गये और जो कुछ बचे वे भी कम फल देने लगे जिससे लोगों की आवश्यकता पूर्ण नहीं हुई। उस आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए छीना-झपटी हुई जिससे कलह हुई। छठे मनु सीमंकर ने वृक्षों को चिह्न रूप से निर्धारण कर सीमा निश्चित कर दी। गमनागमन करने के लिये विमलवाहन नामक सातवें मनु ने हाथी आदि का प्रयोग बताया।

पहले बच्चे उत्पन्न होने के बाद ही माता-पिता मरण को प्राप्त हो जाते थे। जिससे माता-पिता बच्चों को देख ही नहीं पाते थे परन्तु अब सन्तान के जन्म होने के समय तक माता-पिता जीवित रहने लगे, जिससे बच्चों को देखकर माता-पिता अजीब-सी घटना मानकर भयभीत होने लगे। अष्टम मनु को चक्षुष्मान ने उनको सम्बोधन किया और कहा कि आप लोग भयभीत न होवें, ये आपकी सन्तान हैं। काल क्रम से सन्तान उत्पत्ति के पश्चात् भी कुछ अधिक समय तक जीवित रहने लगी। तब नवमें यशस्वी मनु ने सन्तान का नामकरण एवं उत्साह मनाने के लिए प्रेरणा दी। दसवें मनु अभिचन्द्र ने बालकों

के रूदन को रोकने का उपदेश दिया। उन्होंने बच्चों को चन्दा मामा दिखाने का, बच्चों को खेलने की और बोलने की प्रेरणा दी। पांचवे मनु के पश्चात् अनीति अन्याय अधिक होने लगा जिसके कारण छठवें मनु से लेकर दसवें मनु तक हा दण्ड के साथ मा (मत करो) दण्ड को जोड़ दिया अर्थात् कोई अनैतिक कार्य करने पर हा मा (खेद है इस प्रकार मत करो) शब्द रूप दण्ड का प्रयोग किया जाता था। दशवें मनु के बाद उत्पन्न शीत तुषार वायु चलने लगी जिससे लोगों को शीत जनित बाधा के साथ-साथ चन्द्रादिक दिखाई नहीं दिये। इस कष्ट को दूर करने के लिए चन्द्राभ नामक ग्यारहवें कुलकर ने उपाय बताये। उन्होंने बताया कि भोगभूमि के हास तथा कर्मभूमि के निकट होने के कारण यह सब प्राकृतिक उल्कांति (परिवर्तन) है। सूर्य उदय होने के बाद सूर्य किरण से तुषार विलीन हो जायेगा। शीत कष्ट दूर करने के लिए एक महाहिमयुग था वह हिमयुग सम्भवतया हो भी सकता था।

पहले वर्षा होने के लिए अयोग्य परिस्थिति होने के कारण वर्षा नहीं होती थी। शीत युग (हिम युग) के पश्चात् बारहवें मनु मरुदेव के समय में बिजली की चमक से भयंकर शब्द करते हुए वर्षा होने लगी। वर्षा के कारण वर्षा का पानी उच्च स्थान से बहकर नदियों में जाकर बहने लगा। उपरोक्त कारण से मनुष्यों को जो कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा उस परिस्थिति से बचने के लिए छाता आदि का प्रयोग बताया। इससे सिन्धु होता है कि अति प्राचीन काल से जलयान, छाता आदि का प्रयोग चल रहा है।

पहले जरायु (सन्तान उत्पत्ति के समय जो चर्म की थैली रहती है) उससे रहित सन्तान उत्पत्ति होती है। जलवायु परिस्थिति काल परिवर्तन के साथ-साथ सन्तान जरायुज से वेष्ठित होकर जन्म लेने लगी। जरायुज से वेष्ठित सन्तान को देखकर माता-पिता भयभीत हुए। तेरहवें कुलकर प्रसेनेजित ने जरायु को दूर करने का उपदेश दिया। इस समय माता-पिता शिशुओं की रक्षा कुछ समय तक करने के पश्चात् मरण को प्राप्त हो जाते थे।

काल क्रम से सन्तानों की नाभिनाल अधिक लम्बी होने के कारण चौदहवें मनु नाभिराज ने नाभि नाल को काटने का उपदेश दिया।

नाभिराज के समय में कल्पवृक्ष नष्ट हो गये और परिस्थिति, परिवर्तन एवं वर्षा के कारण भूपृष्ठ में अनेक मधुर रस युक्त, औषध गुण से युक्त

वनस्पतियों उत्पन्न होने लगीं। भोगभूमि लोग कल्पवृक्ष से ही जीवन-यापन करने की प्रणाली जानते थे, अन्य प्रणाली के बारे में पूर्ण अनभिज्ञ थे। इसलिए कल्पवृक्ष के अभाव से भी उन लोगों ने क्षुधा के कारण भयभीत होकर जीवन-यापन की प्रणाली नाभिराय से पैछी। नाभिराय ने जीवन-यापन के अनेक उपायों के साथ-साथ वनस्पति से सहज प्राप्त धान्य, रस तथा गायादि से दृढ़ आदि प्राप्त करके सुख से रहने का उपदेश देकर उनका भय निवारण किया। इस प्रकार उपरोक्त १४ मनुओं ने विभिन्न समयों में जो मनुष्यों के ऊपर प्राकृतिक, अप्राकृतिक, विपत्ति, आपत्ति, संकट आये थे उनका यत्न पूर्ववर्णन करके मनुष्य समाज पर बहुत ही उपकार किये थे। मनुष्य समाज आश्चर्य उपदेशक मार्ग प्रदर्शक, हिताकांक्षी उपरोक्त मनु ही थे। इसलिये मनुष्य का योगदान मनुष्य समाज के लिए प्रधान एवं प्रथम था।

उपरोक्त मनु पूर्व भव में संस्कारित राजकुमार थे। उस पूर्व संस्कार प्रेरित होकर और उनमें जो विशेष अवधि एवं जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ तब उस ज्ञान के माध्यम से मनुष्य कुल को मार्ग प्रदर्शन करके मनु कहलाने लगे बने थे।

आध्यात्मिक क्रांति युगः— जीव मात्र का परम लक्ष्य शाश्वतिक नन्त सुख एवं शान्ति है। अनन्त सुख एवं शान्ति भोग से नहीं मिल सकती है। अरन्तु योग से मिलती है। भोग जनित सुख इन्द्रिय-मन-तात्कालिक नश्वर अंतर्गत्वा दुःख को देने वाला एवं स्वयं दुःखमय है। इसलिए चिरकाल से भोगभूमि प्राणी जो भोग को भोगते हुए चिरशान्ति प्राप्त नहीं कर पाए थे अथवा इन्द्रिय जनित सुख में लीन होकर शाश्वतिक सुख का अन्वेषण नहीं करते थे। भोगभूमि के उपरान्त जब कर्मभूमि का आगमन हुआ तब सहज प्राप्त भासामग्री नहीं मिलने के कारण जो दुःख तथा संताप उत्पन्न हुआ उससे विक्षुब्ध होकर शाश्वतिक सुख-शान्ति के अन्वेषण के लिए कटिबन्ध हुए। इस आध्यात्मिक क्रांति में प्रधान नायकत्व, धर्म तीर्थ प्रवर्तक तीर्थकर, सुदर्शन-चक्र के प्रवर्तक चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र आदि क्रांतिकारी आध्यात्मिक महापुरुष आदि ने ग्रहण किया।

जिस प्रकार सूर्य उदय के पहले से ही ब्रह्ममुहूर्त में सूर्य उदय की विभिन्न सूचनायें प्रगट होती हैं उसी प्रकार महान पुण्यशाली, दया के अवतार युग

युग निर्माता : ऋषभदेव

निर्माता ऋषभदेव के जन्म के पहले ही जन्म की शुभ सूचनायें प्रगट होने लगी ही। जैसे— गर्भ से अवतरित होने के ४ महिने पहले से ही रत्नवृष्टि, ५६ कुमारियों द्वारा माता मरुदेवी की सेवा, गर्भशोधन आदि।

रत्नवृष्टि :— इन्द्र के द्वारा नियुक्त हुए कुबेर ने जो रत्नों की वर्षा की थी वह ऐसी सुशोभित होती थी मानों वृषभदेव की सम्पत्ति उत्सुकता के कारण उनके आने के पहले ही आ गयी हो। वह रत्नवृष्टि हरितमणि, इन्द्रनीलमणि और पद्मराग आदि मणियों की किरणों के समूह से ऐसी देवीष्यमान हो रही थी मानों सरलता को प्राप्त होकर (एक रेखा में सीधी होकर) इन्द्र धनुष की शोभा ही आ रही हो। ऐरावत हाथी की सूँड के समान स्थूल और लम्बी आकृति को धारण करने वाली वह रत्नों की धारा ऐसी शोभायमान होती थी मानों पुण्यरूपी वृक्ष के बड़े मोटे अंकुरों की सन्तति ही हो। अथवा उस रत्न-वर्षा को देखकर क्षणभर के लिए यही उत्प्रेक्षा होती थी कि स्वर्ग से मानों परस्पर मिले हुए विजली और इन्द्र धनुष ही देवों ने गिरा दिए हों। आकाशरूपी आंगन में वह असंख्य रत्नों की धारा ऐसी जान पड़ती थी मानों समय पाकर फैली हुई नक्षत्रों की चंचल और चमकीली पंक्ति ही हो। इस प्रकार स्वामी वृषभदेव के स्वर्गाद्वतरण से छह महिने पहले से लेकर अतिशय पवित्र नाभिराज के घर पर रत्न और सुवर्ण की वर्षा हुई थी। और इस प्रकार अतिशय गर्भावतरण से पीछे भी नौ महिने तक रत्न और सुवर्ण की वर्षा होती रही सो ठीक ही है क्योंकि होने वाले तीर्थकर का आश्र्यकारक बड़ा भारी ही प्रभाव होता है। भगवान के गर्भावतरण उत्सव के समय यह समस्त पृथ्वी रत्नों से व्याप्त हो गयी थी, देव हर्षित हो गये थे और समस्त लोक क्षोभ को प्राप्त हो गया था।

क्रृति की छठा :— भगवान के गर्भावतरण के समय यह पृथ्वी गंगा के जल कणों से सींची गयी थी तथा अनेक प्रकार के रत्नों से अलंकृत की गयी थी इसलिए वह भी किसी गर्भिणी स्त्री के समान भारी हो गयी थी। उस समय रत्न और फूलों से व्याप्त तथा सुगांधित जल से सींची गयी यह पृथ्वीरूपी स्त्री स्नान कर चन्दन का विलेपन लगाये और आभूषण से सुसज्जित-सी जान पड़ती थी। अथवा उस समय वह पृथ्वी भगवान वृषभदेव की माता मरुदेवी की सदृशता को प्राप्त हो रही थी क्योंकि मरुदेवी जिस प्रकार नाभिराज को प्रिय थी उसी प्रकार वह पृथ्वी उन्हें प्रिय थी और मरुदेवी जिस प्रकार रजस्वला न होकर

युग निर्माता : ऋषभदेव

पुष्पवती थी उसी प्रकार वह पृथ्वी भी रजस्वला (धूलि से युक्त) न होकर भी पुष्पवती (जिस प्रकार फूल बिखरे हुए थे) थी।

तीर्थकर के जन्म सूचक 16 स्वप्न

माता मरुदेवी के 16 स्वप्न देखना :— अनन्तर किसी दिन मरुदेवी राजमहल में गंगा की लहरों के समान सफेद और रेशमी चादर से उज्ज्वल कमल शश्य पर सो रही थीं। सोते समय उसने रात्रि के पिछले प्रहर में जिनेन्द्र देव के जन्म को सूचित करने वाले तथा शुभ फल देने वाले नीचे लिखे सोलह स्वप्न देखे।

16 स्वप्न

गजेन्द्रमैन्द्रमामन्द्रवृहितं त्रिमदस्त्रुतम् ।

ध्वनत्तमिव सासारं सा ददर्श शरद घनम् ॥१०४॥

सबसे पहले उसने इन्द्र का ऐरावत हाथी देखा। वह गंभीर गर्जना कर रहा था। उसके दोनों कपोल और सूँड इन तीनों स्थानों से मद झर रहा था, इसलिए वह ऐसा जान पड़ता था मानों गरजता और बरसता हुआ शरद ऋतु का बादल ही हो।

गवेन्द्रं दुन्दुभिस्कन्थं कुमुदापाणदुरद्युतिम् ।

पीयूषराशिनीकाशं सापश्यत्मन्द्रनिःस्वनम् ॥ 105 ॥

दूसरे स्वप्न में उसने एक बैल देखा। उस बैल के कन्धे नगाड़े के समान विस्तृत थे, वह सफेद कमल के समान कुछ-कुछ शुक्ल वर्ण था। अमृत की राशि के समान सुशोभित था और मंद गम्भीर शब्द कर रहा था।

मृगेन्द्रमिन्दुसच्छायवपुषं रक्तकन्धरम् ।

ज्योत्नयां संध्यया चैव घटिताङ्गमिवैक्षत ॥१०६॥

तीसरे स्वप्न में उसने एक सिंह देखा। उस सिंह का शरीर चन्द्रमा के समान शुक्लवर्ण था, और कन्धे लाल लाल रंग के थे, इसलिए वह ऐसा मालूम होता था मानों चान्दनी और संध्या के द्वारा ही उसका शरीर बना हो।

पद्मां पद्मपयोत्तुङ्गविष्टरे सुखारणैः ।

स्नाप्यां हिरण्मयैः कुम्भै अदर्शत् स्वामिव श्रियम् ॥१०७॥

युग निर्माता : ऋषभदेव

चौथे स्वप्न में उसने अपनी शोभा के समान लक्ष्मी को देखा। वह लक्ष्मी कमलों के बने ऊँचे आसन पर बैठी थी और देवों के हाथी सुवर्णमय कलशों से उसका अभिषेक कर रहे थे।

दामनी कुसुमामोद-समालग्नमदालिनी ।

तज्जड़कृतैरिवारब्धगाने सानन्दमैक्षत ॥१०८॥

पाँचवे स्वप्न में उसने बड़े ही आनन्द के साथ दो पुष्प मालाएँ देखी। उन मालाओं पर फूलों की सुगंधि के कारण बड़े-बड़े भौंरे आ लगे थे और वे मनोहर झंकार शब्द कर रहे थे। जिससे ऐसा जान पड़ता था, मानों उन मालाओं ने गाना ही प्रारम्भ किया हो।

समग्रविभ्युज्योत्स्नं ताराधीशं सतारकम् ।

स्मेरं स्वमिव वक्त्राब्जं समौक्तिकमलोकयत् ॥१०९॥

छठे स्वप्न में उसने पूर्ण चन्द्र मण्डल देखा। यह चन्द्र मण्डल ताराओं से सहित था और उत्कृष्ट चाँदनी से युक्त था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानों मौतियों से सहित हँसता हुआ अपना (मरुदेवी का) मुख कमल ही हो।

विधूतध्वान्तमुद्यन्तं भास्वन्तमुदयाचलात् ।

शातकुम्भमयं कुम्भमिवाद्राक्षीत् स्वमङ्गले ॥११०॥

सातवें स्वप्न में उसने उदयाचल से उदित होते हुए तथा अन्धकार को नष्ट करते हुए सूर्य को देखा। वह सूर्य ऐसा मालूम होता था मानों मरुदेवी के माङ्गलिक कार्य में रखा हुआ सुवर्णमय कलश ही हो।

कुम्भौ हिरण्मयौ पद्मपिहितास्यौ व्यलोकत ।

स्तनकुम्भाविवात्मीयौ समासक्तकराम्बुजौ ॥१११॥

आठवें स्वप्न में उसने सुवर्ण के दो कलश देखे। उन कलशों के मुख कमलों से ढके हुए थे। जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों हस्तकमल से आच्छादित हुए अपने दोनों स्तनकलश ही हों।

झाषौ सरसि संफुल्लकु मुदोत्पलपङ्क्जे ।

सापश्यन्यनायामं दर्शयन्ताविवात्मनः ॥११२॥

नौवें स्वप्न में फूले हुए कुमुद और कमलों से शोभायमान तालाब में क्रीड़ा करती हुई दो मछलियाँ देखीं। वे मछलियाँ ऐसी मालूम होती थी मानों अपने

9

(मरुदेवी के) नेत्रों की लम्बाई ही दिखला रही हों।

तरत्स्रोजकि ज्जल्कपिज्जरोदकमैक्षत् ।

सुवर्णद्रवसम्पूर्णमिव दिव्यं सरोवरम् ॥११३॥

दसवें स्वन में उसने एक सुन्दर तालाब देखा। उस तालाब का पानी तैरते हुए कमलों की केशर से पीला-पीला हो रहा था जिससे ऐसा मालूम होता था मानो पिघले हुए सुवर्ण से ही भरा हो।

क्षुभ्यन्तमव्यधमुद्गेलं चलत्कल्लोलकाहलम् ।

सादर्शच्छीकरैमोक्तु मदुहासमिवोद्यतम् ॥११४॥

ग्यारहवें स्वन में उसने क्षुभित हो बेला (टट) को उल्लंघन करता हुआ समुद्र देखा। उस समय उस समुद्र में उठती हुई लहरों से कुछ-कुछ गम्भीर शब्द हो रहा था और जल के छोटे-छोटे कण उड़कर उसके चारों ओर पड़ रहे थे जिससे ऐसा मालूम होता था मानो वह अद्भुत ही कर रहा हो।

सैंहमासनमुत्तङ्गं स्फुरन्मणिहिरण्मयम् ।

सापश्यन्मेरु शृंङ्गस्य वैदग्धी दधूर्जिताम् ॥११५॥

बारहवें स्वन में उसने एक ऊँचा सिंहासन देखा। वह सिंहासन सुवर्ण का बना हुआ था और उसमें अनेक प्रकार के चमकिले मणि लगे हुए थे जिससे ऐसा मालूम होता था मानो वह मेरु पर्वत के शिखर की उल्कृष्ट शोभा ही धारण कर रहे हों।

नाकालयं व्यलोकिष्ठि पराधर्यमणिभासुरम् ।

स्वसूनोः प्रसवागारमिव देवैरुपाहतम् ॥११६॥

तेरहवें स्वन में उसने स्वर्ण का एक विमान देखा। वह विमान बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नों से दैवीयमान था और ऐसा मालूम होता था मानो देवों के द्वारा उपहार में दिया हुआ, अपने पुत्र का प्रसूतिगृह (उत्पत्तिरथान) ही हो।

फणीन्द्रभवनं भूमिमुद्धिद्योदगतमैक्षत ।

प्रागदृष्टस्वर्विमानेन स्पद्धा कर्तुमिवोद्यतम् ॥११७॥

चौदहवें स्वन में उसने पृथ्वी को भेदनकर ऊपर आया हुआ नागेन्द्र का भवन देखा। वह भवन ऐसा मालूम पड़ता था मानो पहले दिखे हुए स्वर्ण के विमान के साथ स्पर्धा करने के लिए ही उद्यत हुआ हो।

रत्नानां राशिमुत्सर्पदंशुपल्लविताम्बरम् ।

सा निदध्यौ धरादेव्या निधानमिव दर्शितम् ॥ 118 ॥

पन्द्रहवें स्वन में उसने अपनी उठती हुई किरणों से आकाश को पल्लवित करने वाली रत्नों की राशि देखी। उस रत्नों की राशि को मरुदेवी ने ऐसा नाम दिया था मानों पृथिवी देवी ने उसे अपना खजाना ही दिखाया हो।

ज्वलद्भासुरनिर्धूमवपुषं विषमार्चिषम् ।

प्रतापमिव पुत्रस्य मूर्तिरूपं न्यचायत ॥ 119 ॥

और सोलहवें स्वन में उसने जलती हुई प्रकाशमान तथा धूलरहित अग्नि देखी। वह अग्नि ऐसी मालूम होती थी जैसे होने वाले पुत्र का मूर्तिधारी प्रताप ही हो।

न्यशामयच्च तुङ्गाङ्गं पुङ्गवं रुक्मसच्छविम् ।

प्रविशन्तं स्ववक्राङ्गं स्वजाने पीनकन्धरम् ॥ 120 ॥

इस प्रकार सोलह स्वन देखने के बाद उसने देखा कि सुवर्ण के समान पीली कान्ति का धारक और ऊँचे कन्धों वाला एक ऊँचा बैल हमारे मुख कमल में प्रवेश कर रहा है।

तदनन्तर वह बजते हुए बाजों की ध्वनि से सज गई और बन्धी जनों के ऊँचे लिखे हुए मंगलकारक मंगलगीत सुनने लगी। उस समय मरुदेवी को मुख-पूर्वक जगाने के लिए, जिनकी वाणी अत्यन्त स्पष्ट है ऐसे पुण्य पाठ करने वाले बन्धीजन उच्च स्वर से ऊँचे लिखे अनुसार मंगल पाठ पढ़ रहे थे— हे देवि! यह तेरा जागने का समय है जो कि ऐसा मालूम होता है मानों कुछ-कुछ फूले हुए कमलों के द्वारा तुम्हें हाथ ही जोड़ रहा हो। तुम्हारे मुख की कान्ति से पराजित होने के कारण ही मानों जिसकी समस्त चाँदनी नष्ट हो गई है ऐसे चन्द्रमण्डल को धारण करती हुई यह रात्रि कैसी विचित्र शोभायमान हो रही है। हे देवि ! अब कान्तिरहित चन्द्रमा में जगत् का आदर कम हो गया है इसलिए प्रफुल्लित हुआ यह तेरा मुख कमल ही समस्त जगत् को आनन्दित करे। यह चन्द्रमा छिपी हुई किरणों (पक्ष में हाथों) से अपनी दिशा रूपी स्त्रियों के मुख का स्पर्श कर रहा है जिससे ऐसा मालूम होता है मानों परदेश जाने के लिए अपनी प्यारी स्त्रियों से आज्ञा ही लेना चाहिए। ताराओं का समूह भी अब आकाश में

कहीं-कहीं दिखाई देता है और ऐसा दिखाई पड़ता है मानों जाने की जल्दी से रात्रि के हार की शोभा ही टूट-टूटकर बिखर गई हो । हे देव! इधर तालाबों पर ये सारस पक्षी मनोहर और गम्भीर शब्द कर रहे हैं और ऐसे मालूम होते हैं मानों मंगलपाठ करते हुए हम लोगों के साथ-साथ तुम्हारी स्तुति ही करना चाहते हों । इधर घर की बावड़ी में भी कमलिनी के कमल रूपी मुख प्रफुल्लित हो गए हैं और उन पर भौंरे शब्द कर रहे हैं जिससे ऐसा मालूम होता है मानों कमलिनी उच्च स्वर से आपका यश गा रही हो । इधर रात्रि में परस्पर के विरह से अतिशय सन्तत हुआ यह चकवा का युगल अब तालाब की तरंगों के स्पर्श से कुछ-कुछ आश्वासन प्राप्त कर रहा है । अतिशय दाह करने वाली चन्द्रमा की किरणों से हृदय में अत्यन्त दुःखी हुए चकवा-चकवी अब मित्र (सूर्य) के समागम की प्रार्थना कर रहे हैं । भावार्थ-जैसे जब कोई किसी के द्वारा सताया जाता है तब वह अपने मित्र के साथ समागम की इच्छा रखता है वैसे ही चकवा-चकवी चन्द्रमा के द्वारा सताये जाने पर मित्र अर्थात् सूर्य के समागम की इच्छा कर रहे हैं । इधर बहुत जल्दी होने वाले श्वियों के वियोग से उत्पन्न हुए दुःख की सूचना करने वाली मुरों की तेज आवाज कामी पुरुषों के मन को सन्ताप पहुँचा रही है । शान्त स्वभाव चन्द्रमा की कोमल किरणों से रात्रि का जो अन्धकार नष्ट नहीं हो सका था वह अब तेज किरण वाले सूर्य के उदय के सम्मुख होते ही नष्ट हो गया है । अपनी किरणों के द्वारा रात्रि सम्बन्धी अन्धकार को नष्ट करने वाला सूर्य आगे चलकर उदित होगा परन्तु उससे अनुराग (प्रेम और लाली) करने वाली सन्ध्या पहले से ही प्रगट हो गई है और ऐसा जान पड़ता है मानों सूर्य रूपी सेनापति की आगे चलने वाली सेना ही हो । यह उदित होता हुआ सूर्यमण्डल एक साथ दो काम करता है-एक तो कमलिनियों के समूह में विकास को विस्तृत करता है और दूसरा कुमुदिनियों के समूह में म्लानता का विस्तार करता है अथवा कमलिनी के कमलरूपी मुख को प्रफुल्लित हुआ देखकर यह कुमुदिनी मानों ईर्ष्या से म्लानता को प्राप्त हो रही है । यह सूर्य अपने ऊँचे कर अर्थात् किरणों को (पक्ष में हाथों को) सामने फैलाता हुआ उदित हो रहा है जिससे ऐसा मालूम होता है मानों पूर्व दिशा रूपी श्वी के गर्भ से कोई तेजस्वी बालक ही पैदा हो रहा हो । निषध पर्वत के समीप आरक्त (लाल) मण्डल का धारक यह सूर्य ऐसा जान पड़ता है मानों इन्द्रों के द्वारा इकट्ठा किया हुआ सर्व सन्ध्याओं का राग (लालिमा) ही हो । सूर्य के उदय होते ही समस्त अन्धकार नष्ट हो गया, चकवा-चकवियों का क्लेश नष्ट हो गया, कमलिनी विकसित हो गई

और सारा जगत प्रकाशमान हो गया । अब प्रभात के समय कमलनियों के बन से कमलों की सुगन्ध ग्रहण करता हुआ यह शीतल पवन सब ओर बह रहा है । इसलिए हे देव! स्पष्ट ही यह तेरे जागने का समय आ गया है । अतएव जिस प्रकार हँसनी बालू के टीले को छोड़ देती है उसी प्रकार अब तू भी अपनी निर्मल शश्या को छोड़ । तेरा प्रभाव सदा मंगलमय हो, तू सैकड़ों कल्याणों को प्राप्त हो और जैसे पूर्व दिशा सूर्य को उत्पन्न करती है उसी प्रकार तू भी तीन लोक को प्रकाशित करने वाले पुत्र को उत्पन्न कर । यद्यपि वह मरुदेवी स्वप्न देखने के कारण बन्दीजनों के मंगलगान से बहुत पहले ही जाग चुकी थी, तथापि उन्होंने उसे फिर से जगाया । इस प्रकार जागृत होकर उसने समस्त संसार को आनन्दमय देखा । शुभ स्वप्न देखने से जिसे अत्यन्त आनन्द हो रहा है । ऐसी जागी हुई मरुदेवी फूली हुई कमलिनी के समान कंटकित अर्थात् रोमांचित (पक्ष में कांटों से व्याप) शरीर धारण कर रही थी ।

माता मरुदेवी का नाभिराज से स्वप्न के बारे में निवेदन

तदनन्तर वह मरुदेवी स्वप्न देखने से उत्पन्न हुए आनन्द को मानों अपने शरीर में धारण करने के लिए समर्थ नहीं हुई थी इसलिए वह मंगलमय स्नान कर और वस्त्र आभूषण धारण कर अपने पति के समीप पहुँची । उसने वहाँ जाकर उचित विनय से महाराज नाभिराज के दर्शन किये और फिर सुखपूर्वक बैठकर, राज्यसिंहासन पर बैठे हुए महाराज से इस प्रकार निवेदन किया-“हे देव, आज मैं सुख से सो रही थी, सोते ही सोते मैंने रात्रि के पिछले भाग में आश्वर्यजनक फल देने वाले ये 16 स्वप्न देखे हैं । स्वच्छ और सफेद शरीर धारण करने वाला ऐरावत हाथी, दुन्दुभि के समान शब्द करता बैल, पहाड़ की घोटी को उल्लंघन करने वाला सिंह, देवों के हाथियों द्वारा नहलायी गई लक्ष्मी, आकाश में लटकती हुई दो मालाएँ, आकाश को प्रकाशमान करता हुआ चन्द्रमा, उदय होता हुआ सूर्य, मनोहर मछलियों का युगल, स्वच्छ जल से भरे हुए दो कलश, स्वच्छ जल और कमलों से सहित सरोवर, क्षुभित और भंवर से युक्त समुद्र, दैदीयमान सिंहासन, स्वर्ग से आता हुआ विमान, पृथ्वी से प्रकट होता हुआ नागेन्द्र का भवन, प्रकाशमान किरणों से शोभित रत्नों की राशि और जलती हुई दैदीयमान अग्नि । इन सोलह स्वप्नों को देखने के बाद हे राजन् !

मैंने देखा है कि एक सुवर्ण के समान पीला बैल मेरे मुख में प्रवेश कर रहा है । हे देव ! आप इन स्वज्ञों का फल कहिए । उनके फल सुनने की मेरी इच्छा निरन्तर बढ़ रही है सो ठीक ही है अपूर्व वस्तु के देखने से किसका मन कौतुक युक्त नहीं होता है ?” तदनन्तर अवधि ज्ञान के द्वारा जिन्होंने स्वज्ञों का उत्तम फल जान लिया है और जिनकी दाँतों की किरणें अतिशय शोभायमान हो रही हैं ऐसे महाराज नाभिराज मरुदेवी के लिए स्वज्ञों का फल कहने लगे ।

नाभिराज द्वारा 16 स्वज्ञों का फल वर्णन

शृणु देवी महान् पुत्रो भविता ते गजेक्षणात् ।
समस्त भुवन ज्येष्ठो महावृषभदर्शनात् ॥ 155 ॥

हे देवि ! सुन, हाथी को देखने से तेरे उत्तम पुत्र होगा, उत्तम बैल देखने से वह समस्त लोक में ज्येष्ठ होगा ।

सिंहेनान्तवीर्योऽसौ दाम्ना सद्धर्मतीर्थकृत् ।
लक्ष्याभिषेकमासासौ मेरोर्मूर्ध्नि सुरोत्तमैः ॥ 156 ॥

सिंह के देखने से वह अनन्त बल से युक्त होगा, मालाओं के देखने से समीचीन धर्म के तीर्थ (आम्नाय) चलाने वाला होगा, लक्ष्मी के देखने से वह सुमेरु पर्वत के मस्तक पर देवों के द्वारा अभिषेक को प्राप्त होगा ।

पूर्णेन्दुना जनाल्हादी भास्वता भास्वरद्युतिः ।
कुम्भाभ्यां निधिभागी स्यात् सुखी मत्स्ययुगेक्षणात् ॥ 157 ॥

पूर्ण चन्द्रमा के देखने से समस्त लोगों को आनन्द दैने वाला होगा, सूर्य के देखने से दैदीप्यमान प्रकाश का धारक होगा, दो कलश देखने से अनेक निधियों को प्राप्त होगा, मछलियों का युगल देखने से सुखी होगा ।

सरसा लक्षणोद्भासी सोऽब्धिना केवली भवेत् ।
सिंहासने साम्राज्यमवाप्यति जगद्गुरुः ॥ 158 ॥

सरोवर के देखने से अनेक लक्षणों से शोभित होंगा, समुद्र को देखने से केवली होंगा, सिंहासन के देखने से जगत् का गुरु होकर साम्राज्य को प्राप्त करेगा ।

स्वर्विमानावलोकेन स्वर्गादवतरिष्यति ।
फणीन्द्रभवनालोकात् सोऽवधिज्ञानलोचनः ॥ 159 ॥

देवों का विमान देखने से घट स्वर्ग से अवतीर्ण होगा । नागेन्द्र का भवन देखने से अवधि ज्ञान रूपी लोचनों से सहित होगा ।

गुणानामाकरः प्रोद्यद्रलराशिनिशामनात् ।

कर्मेन्धन् धगप्येष निर्धूमज्वलनेक्षणात् ॥ 160 ॥

चमकते हुए रत्नों की राशि देखने से गुणों की खान होगा और निर्धूम अग्नि के देखने से कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाला होगा ।

वृषभाकारमादाय भवत्यास्यप्रवेशनात् ।

त्वदगर्भे वृषभो देवः स्वमाधास्यति निर्मले ॥ 161 ॥

तथा तुम्हारे मुख में जो वृषभ ने प्रवेश किया है उसका फल यह है कि तुम्हारे निर्मल गर्भ में भगवान् वृषभ देव अपना शरीर धारण करेंगे ।

इस प्रकार नाभिराज के वचन सुनकर उसका सारा शरीर हर्ष से रोमांचित हो गया जिससे ऐसा जान पड़ता था मानों परम आनन्द से निर्भर होकर हर्ष के अंकुरों से ही व्याप्त हो गया हो ।

ऋषभदेव का माता के गर्भ में अवतीर्ण होना

तृतीयकालशेषेऽसावशीतिश्चतुरुत्तरा ।

पूर्वलक्ष्मिवर्गाष्टमासपक्षयुतास्तदा ॥ 1 ॥

अवतीर्य युगाद्यन्ते ह्यखिलार्थविमानतः ।

आषाढ़ासितपक्षस्य द्वितीयायां सुरोत्तमः ॥ 2 ॥

उत्तराषाढ़नक्षत्रे देव्या गर्भसमाश्रितः ।

स्थितो यथा विबाधोऽसौ मौक्तिकं शुक्तिसम्पुटे ॥ 3 ॥

आ. पृ. पृ. 264

जब अवसर्पिणी काल के तीसरे सुषमदुष्म नामक काल में चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष आठ माह और एक पक्ष बाकी रह गया था तब आषाढ़ कृष्ण द्वितीया के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में वज्रनाभि अहमिन्द्र, देवायु का अन्त होने पर सवार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर मरुदेवी के गर्भ में अवतीर्ण हुआ और वहाँ सींप के सम्पुट में मोती की तरह सब बाधाओं से निर्मुक्त होकर स्थित हो गया ।

गर्भ कल्याणक का उत्सव

उस समय समस्त इन्द्र अपने—अपने यहाँ होने वाले चिन्हों से भगवान् के गर्भावतार का समय जानकर वहाँ आये और सभी ने नगर की प्रदक्षिणा देकर भगवान् के माता-पिता को नमस्कार किया। सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने देवों के साथ—साथ संगीत प्रारम्भ किया। उस समय कहाँ गीत हो रहे थे, कहाँ बाजे बज रहे थे और कहाँ मनोहर नृत्य हो रहे थे। नाभिराज के महल का आँगन स्वर्गलोक से आये हुए देवों के द्वारा खचाखच भर गया था। इस प्रकार गर्भ कल्याणक का उत्सव कर वे देव अपने—अपने स्थानों पर वापस चले गये। उसी समय से लेकर इन्द्र की आज्ञा से दिक्कुमारी देवियाँ उस समय होने योग्य कार्यों के द्वारा दासियों के समान मरुदेवी की सेवा करने लगीं।

देवियों के द्वारा माता की सेवा—श्री, ही, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी इन पट्टकुमारी देवियों ने मरुदेवी के समीप रहकर उसमें क्रम से अपने—अपने शोभा, लज्जा, धैर्य, स्तुति, बोध और विभूति नामक गुणों का संचार किया था। अर्थात् श्री देवी ने मरुदेवी की शोभा बढ़ा दी, ही देवी ने लज्जा बढ़ा दी, धृति देवी ने धैर्य बढ़ाया, कीर्ति देवी ने स्तुति की, बुद्धि देवी ने बोध (ज्ञान) को निर्मल कर दिया और लक्ष्मी देवी ने विभूति बढ़ा दी। इस प्रकार उन देवियों के सेवा—संस्कार से वह मरुदेवी ऐसी सुशोभित होने लगी थी जैसे कि अग्नि के संस्कार से मणि सुशोभित होने लगती है। परिचर्या करते समय देवियों ने सबसे पहले स्वर्ग से लाये हुए पवित्र पदार्थों के द्वारा माता का गर्भ शोधन किया था।

ऋषभदेव का जन्म कल्याणक

अथानन्तर, ऊपर कही हुई श्री, ही आदि देवियाँ जिसकी सेवा करने के लिये सदा सुमीप में विद्यमान रहती हैं ऐसी माता मरुदेवी ने नव महीने व्यतीत होने पर भगवान् ऋषभदेव को उत्पन्न किया। जिस प्रकार प्रातः काल के समय पूर्व दिशा कमलों को विकसित करने वाले प्रकाशमान सूर्य को प्राप्त करती है उसी प्रकार मरुदेवी ने भी श्री चैत्र कृष्ण नवमी के दिन सूर्योदय के समय उत्तराषाढ़ नक्षत्र और ब्रह्म नामक महायोग में मति, श्रुति, अवधि इन तीनों ज्ञानों से शोभायमान, बालक होने पर भी गुणों से वृद्ध तथा तीनों लोकों के एक मात्र स्वामी दैदीष्यमान पुत्र को प्राप्त किया।

ऋषभदेव के जन्म का विश्वत्यापी प्रभाव

दिशः प्रसन्निमासेदु रासीनिर्मलमम्बरम् ।

गुणानामस्य वैमल्य मनुकर्त्तुमिव प्रभोः ॥ ५ ॥ आ.पु. पृ. 13
उस समय समस्त दिशायें स्वच्छता को प्राप्त हुई थीं और आकाश निर्मल हो गया था। ऐसा मालूम होता था मानों भगवान् के गुणों की निर्मलता का अनुकरण करने के लिए ही दिशाएँ और आकाश स्वच्छता को प्राप्त हुए हों।

प्रजानां ववृथे हर्षः सुरा विस्मयमाश्रयन् ।

अम्लानि कुसुमान्युच्चैर्मुमुचुः सुरभूरुहाः ॥ ६ ॥

उस समय प्रजा का हर्ष बढ़ रहा था, देव आश्र्य को प्राप्त हो रहे थे और कल्पवृक्ष ऊँचे से प्रफुल्लित फूल बरसा रहे थे।

अनाहताः पृथुध्वाना दध्वनुर्दिविजानकाः ।

मृदुः सुगन्धिः शिशिरो मरुमन्दं तदा ववौ ॥ ७ ॥

देवों के दुन्दुभि बाजे बिना बजाये ही ऊँचा शब्द करते हुए बज रहे थे और कोमल, शीतल तथा सुगन्धित वायु धीरे—धीरे बह रही थी।

प्रचचाल मही तोषात् नृत्यन्तीव चलदग्गिरिः ।

उद्गेलो जलधिर्नूनमगमत प्रमदं परम् ॥ ८ ॥

उस समय पहाड़ों को हिलाती हुई पृथ्वी भी हिलने लगी थी मानों सन्तोष से नृत्य ही कर रही हो और समुद्र भी लहरा रहा था मानों परम आनन्द को प्राप्त हुआ हो।

ऋषभदेव के जन्म से स्वर्ग भी प्रभावित

ततोऽबुद्ध सुराधीशः सिंहासन विकम्पनात् ।

प्रयुक्तावधिरूदभूतिं जिनस्य विजितैनसः ॥ ९ ॥

तदनन्तर सिंहासन कम्पायमान होने से अवधि ज्ञान जोड़कर इन्द्र ने जान लिया कि समस्त पापों को जीतने वाले जिनेन्द्र देव का जन्म हुआ। आगामी काल में उत्पन्न होने वाले भव्य जीव रूपी कमलों को विकसित करने वाले श्री तीर्थङ्कर रूपी सूर्य के उदित होते ही इन्द्र ने उनका जन्माभिषेक करने का विचार किया।

तदासनानि देवानाम कस्मात् प्रचकम्पिरे ।

देवानुच्चासनेभ्योऽथः पातयनीव संभ्रमात् ॥11॥

उस समय अकस्मात् सब देवों के आसन कम्पित होने लगे थे और ऐसे मालूम होते थे मानों उन देवों को बड़े संभ्रम के साथ उँचे सिंहासनों से नीचे ही उतार रहे हों।

शिरांसि प्रचलन्मौलिमणीनि प्रणतिं दधुः ।

सुरासुर गुरो जर्म भावयनीव विस्मयात् ॥12॥

जिन के मुकुटों में लगे हुए मणि कुछ-कुछ हिल रहे हैं ऐसे देवों के मस्तक स्वयमेव नम्रीभूत हो गये थे और ऐसे मालूम होते थे मानों बड़े आर्थर्य से सुर, असुर आदि सब के गुरु भगवान् जिनेन्द्रदेव के जन्म की भावना ही कर रहे हों।

घण्टाकण्ठीर वध्वान भेरी शङ्खाः प्रदध्वनुः ।

कल्पेश ज्योतिषां वन्यभावनानां च वेशमसु ॥13॥

उस समय कल्पवासी, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवों के घरों में क्रम से अपने-आप ही घण्टा, सिंहनाद, भेरी और शंखों के शब्द होने लगे थे। उठी हुई लहरों से शोभायमान समुद्र के समान उन बाजों का गम्भीर शब्द सुनकर देवों ने जान लिया कि तीन लोक के स्वामी तीर्थकर भगवान् का जन्म हुआ है। तदनन्तर महासागर की लहरों के समान शब्द करती हुई देवों की सेनाएँ इन्द्र की आङ्गारा पाकर अनुक्रम से स्वर्ग से निकलीं। हाथी, घोड़े, रथ, गन्धर्व, नृत्य करने वाली, पियादे और बैल इस प्रकार इन्द्र की ये सात बड़ी-बड़ी सेनाएँ निकलीं।

तदनन्तर सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने इन्द्राणी सहित बड़े भारी (एक लाख योजन विस्तृत) ऐरावत हाथी पर चढ़कर अनेक देवों से परिवृत्त हो प्रस्थान किया। तत्पश्चात् सामानिक, त्रायस्त्रिंशं, पारिषद, आत्मरक्ष और लोकपाल जाति के देवों ने उस सौधर्म इन्द्र को चारों ओर से घेर लिया अर्थात् उसके चारों ओर चलने लगे। उस समय दुन्दुभि बाजों के गम्भीर शब्दों से तथा देवों के जय-जय शब्द के उच्चारण से उस देवसेना में बड़ा भारी कोलाहल हो रहा था।

जन्माभिषेक

अनन्तर वे देवों की सेनाएँ क्रम-क्रम से बहुत ही शीघ्र आकाश से जमीन पर उतरकर उत्कृष्ट विभूतियों से शोभायमान अयोध्यापुरी में जा पहुँची। देवों के सैनिक चारों ओर से अयोध्यापुरी को घेरकर स्थित हो गये और बड़े उत्सव के साथ आये हुए इन्द्रों से राजा नाभिराज का आँगन भर गया। तत्पश्चात् इन्द्राणी ने बड़े ही उत्सव से प्रसूति गृह में प्रवेश किया और वहाँ कुमार के साथ-साथ जिनमाता मरुदेवी के दर्शन किये। इन्द्राणी ने वहाँ जाकर पहले कई बार प्रदक्षिणा दी, फिर जगत् के गुरु जिनेन्द्र देव को नमस्कार किया और फिर जिनमाता के सामने खड़े होकर इस प्रकार स्तुति की—“ हे माता ! तू तीनों लोकों की कल्याणकारिणी माता है, तू ही मंगल करने वाली है, तू ही महादेवी है, तू ही पुण्यवती है और तू ही यशस्विनी है ।” जिसने अपने शरीर को गुप्त कर रखा है ऐसी इन्द्राणी ने ऊपर लिखे अनुसार माता की स्तुति कर उसे मायामयी नींद से युक्त कर दिया। तदनन्तर उसके आगे मायामयी दूसरा बालक रखकर शरीर से निकलते हुए तेज के द्वारा लोक को व्याप करने वाली चूड़ामणि रत्न के समान जगद्गुरु जिन बालक को दोनों हाथों से उठाकर वह परम आनन्द को प्राप्त हुई। उस समय अत्यन्त दुर्लभ भगवान् के शरीर का स्पर्श पाकर इन्द्राणी ने ऐसा माना था मानों मैंने तीनों लोकों का समस्त ऐश्वर्य ही अपने अधीन कर लिया हो। तदनन्तर जिन बालक को लेकर जाती हुई वह इन्द्राणी ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों अपनी दैदीयमान किरणों से आकाश को व्याप करने वाले सूर्य को लेकर जाता हुआ आकाश ही सुशोभित हो रहा है। तत्पश्चात् जिस प्रकार पूर्व दिशा प्रकाशमान मणियों से सुशोभित उदयाचल के शिखर पर बाल सूर्य को विराजमान कर देती है उसी प्रकार इन्द्राणी ने जिन बालक को इन्द्र की हथेली पर विराजमान कर दिया। इन्द्र आदर सहित इन्द्राणी के साथ हाथ से भगवान् को लेकर हर्ष से नेत्रों को प्रफुल्लित करता हुआ उनका सुन्दर रूप देखने लगा। तदनन्तर जय-जय शब्द का उच्चारण करते हुए और अपने आभूषणों की फैलाती हुई किरणों से इन्द्रधनुष को विस्तृत करते हुए देव लोग आकाश रूपी आँगन में ऊपर की ओर चलने लगे। तत्पश्चात् वे इन्द्र निन्यानवे हजार योजन ऊँचे उस सुमेरु पर्वत पर जा पहुँचे। तदनन्तर इन्द्र ने बड़े प्रेम से देवों के साथ-साथ उस गिरिराज सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देकर

उसके मस्तक पर हर्षपूर्वक श्री जिनेन्द्ररूपी सूर्य को विराजमान किया । जिनेन्द्र देव के जन्म कल्याणक की विभूति को देखने के अभिलाषी देव लोग उस पाण्डुक शिला को धेरकर सभी दिशाओं में क्रम-क्रम से यथायोग्य रूप में बैठ गये । तदनन्तर सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र भगवान को पूर्व दिशा की ओर मुँह करके पाण्डुक शिला पर रखे हुए सिंहासन पर विराजमान कर उनका अभिषेक करने के लिये तत्पर हुआ । तत्पश्चात् बहुत से देव सुवर्णमय कलशों से क्षीर सागर का पवित्र जल लाने के लिये श्रेणीबद्ध होकर बड़े सन्तोष से निकले । जो स्वयं पवित्र है और जिसमें रुधिर भी क्षीर के समान अत्यन्त स्वच्छ है ऐसे भगवान् के शरीर का स्पर्श करने के लिए क्षीरसागर के जल के सिवाय अन्य कोई जल योग्य नहीं है ऐसा मानकर ही मानों देवों ने बड़े हर्ष के साथ पाँचवे क्षीरसागर के जल से ही भगवान् का अभिषेक करने का निश्चय किया था । आठ योजन गहरे मुख पर एक योजन चौड़े (और उदर में चार योजन चौड़े) सुवर्णमय कलशों से भगवान् के जन्माभिषेक का उत्सव प्रारम्भ किया था । देवों के परस्पर एक के हाथ दूसरे के हाथ में जाने वाले और जल से भरे हुये उन सुवर्णमय कलशों से आकाश ऐसा व्याप्त हो गया था मानो वह कुछ-कुछ लालिमायुक्त संध्याकालीन बादलों से ही व्याप्त हो गया हो । सौधर्मेद्र ने जय-जय शब्द का उच्चारण कर भगवान के मस्तक पर पहली जलधारा छोड़ी उसी समय जय जय-जय बोलते हुए अन्य करोड़ों देवों ने भी बड़ा भारी कोलाहल किया था । तदनन्तर अन्य सभी स्वर्गों के इन्द्रों ने सन्ध्या-समय के बादलों के समान शोभायमान, जल से भरे हुये सुवर्णमय कलशों से भगवान के मस्तक पर एक साथ जल की धारा छोड़ी । यद्यपि वह जलधारा भगवान् के मस्तक पर ऐसी पड़ रही थी मानो गंगा सिन्धु आदि महानदियाँ ही मिलकर एक साथ पड़ रही हों तथापि मेरु पर्वत के समान स्थिर रहने वाले जिनेन्द्र उसे अपने माहात्म्य से लीलामात्र में ही सहन कर रहे थे । जब शुद्ध जल का अभिषेक समाप्त हो गया था तब इन्द्र ने शुभ सुगन्धित जल से भगवान् का अभिषेक करना प्रारम्भ किया । विधि-विधान को जानने वाले इन्द्र ने अपनी सुगन्धि से भ्रमरों का आह्वान करने वाले सुगन्धित जल रूपी द्रव्य से भगवान का अभिषेक किया । सुगन्धित जल का अभिषेक समाप्त होने पर देवों ने जय-जय शब्द के कोलाहल के साथ चूर्ण मिले हुए सुगन्धित जल से परस्पर में फाग की अर्थात् वह

सुगन्धित जल एक दूसरे पर डाला । इस प्रकार अभिषेक की समाप्ति होने पर सब देवों ने स्नान किया और फिर विलोक पूज्य उल्कृष्ट ज्योति स्वरूप भगवान की प्रदक्षिणा देकर पूजा की । सब इन्द्रों ने मन्त्रों से पवित्र हुए जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ्य के द्वारा भगवान् की पूजा की ।

इस तरह इन्द्रों ने भगवान् की पूजा की, उसके प्रभाव से अपने अनिष्ट अमंगलों का नाश किया और फिर पौष्टिक कर्म कर बड़े समारोह के साथ जन्माभिषेक की विधि समाप्त की । तत्पश्चात् इन्द्र इन्द्राणी ने समस्त देवों के साथ परम आनन्द देने वाले और क्षण भर के लिये मेरु पर्वत पर चूड़ामणि के समान शोभायमान होने वाले भगवान् की प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया । उस समय स्वर्ग से पानी की छोटी-छोटी बूँदों के साथ फूलों की वर्षा हो रही थी और वह ऐसी मालूम होती थी मानो स्वर्ग की लक्ष्मी के हर्ष से पड़ते हुए अश्रुओं की बूँदे ही हों । उस समय कल्पवृक्षों के पुष्पों से उत्पन्न हुए पराग समूह को कंपाता हुआ और भगवान् के अभिषेक जल की बूँदों को बरसाता हुआ वायु मन्द-मन्द बह रहा था । अथानन्तर पवनकुमार जाति के देव अपनी उल्कृष्ट भक्ति को प्रत्येक दिशाओं में वितरण करते हुए के समान धीरे-धीरे चलने लगे और मेघ कुमार जाति के देव उस मेरु पर्वत सम्बन्धी भूमि पर अमृत से मिले हुए जल के छींटों की अखण्ड धारा छोड़ने लगे- मन्द-मन्द जलवृष्टि करने लगे । जो वायु शीघ्र ही कल्पवृक्ष को हिला रहा था, जो आकाश गंगा की अत्यन्त शीतल तरङ्गों के उड़ाने में समर्थ था और जो किनारे के वनों से पुष्पों का अपहरण कर रहा था ऐसा वायु मेरु पर्वत के चारों ओर धूम रहा था और ऐसा मालूम होता था मानो उसकी प्रदक्षिणा ही कर रहा हो । देवों के हाथों से ताङ्गित हुए दुन्दुभि बाजों का गम्भीर शब्द सुनाई दे रहा था मानो जोर-जोर से यह कहता कल्याण की घोषणा ही कर रहा था कि जब विलोकीनाथ भगवान् ऋषभदेव का जन्म महोत्सव तीनों लोकों में अनेक कल्याण उत्पन्न कर रहा है तब यहाँ अकल्याणों का रहना अनुचित है ।

इन्द्राणी द्वारा बाल ऋषभ की सेवा

जब अभिषेक की विधि समाप्त हो चुकी तब इन्द्राणी देवी ने हर्ष के साथ जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव को अलंकार पहनाने का प्रयत्न किया । जिनका अभिषेक किया जा चुका है ऐसे पवित्र शरीर को धारण करने वाले भगवान्

वृषभदेव के शरीर में लगे हुए जलकणों को इन्द्राणी ने स्वच्छ एवं निर्मल वस्त्र से पोछा। भगवान् के मुख पर, अपने निकटवर्ती कटाक्षों की जो सफेद छाया पड़ रही थी उसे इन्द्राणी जलकण समझती थी। अतः पोछे हुए मुख को भी बार-बार पोछ रही थी। अपनी सुगन्धि से स्वर्ग अथवा तीनों लोकों को लिप्त करने वाले अतिशय सुगन्धित गाढ़े सुगन्ध द्रव्यों से उसने भगवान् के शरीर पर विलेपन किया था। यद्यपि वे सुगन्ध द्रव्य उत्कृष्ट सुगन्धि से रहित थे तथापि भगवान् के शरीर की स्वाभाविक तथा दूर-दूर तक फैलने वाली सुगन्ध ने उन्हें तिरस्कृत कर दिया था। इन्द्राणी ने बड़े आदर से भगवान् के ललाट पर तिलक लगाया, परन्तु जगत् के तिलक स्वरूप भगवान् क्या उस तिलक से शोभायमान हुए थे? इन्द्राणी ने भगवान् के मस्तक पर कल्पवृक्ष के पुष्पों की माला से बना हुआ मुकुट धारण कराया था। उन मालाओं से अलंकृत मस्तक होकर भगवान् ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानों कीर्ति से ही अलंकृत किये गये हों। यद्यपि भगवान् स्वयं जगत् के चूड़ामणि थे और सज्जनों में सबसे मुख्य थे तथापि इन्द्राणी ने भक्ति से निर्भर होकर उनके मस्तक पर चूड़ामणि रल रखा था। यद्यपि भगवान् के सघन बरौनी वाले दोनों नेत्र अंजन लगाये बिना ही श्यामवर्ण थे तथापि इन्द्राणी ने नियोग मात्र समझकर उनके नेत्रों में अंजन का संस्कार किया था। भगवान् के दोनों कान बिना वेधन किए ही छिद्र सहित थे, इन्द्राणी ने उनमें मणिमय कुण्डल पहनाये थे जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो भगवान् के मुख की कान्ति और दीति को देखने के लिए सूर्य और चन्द्रमा ही उनके पास पहुँचे हों। मोक्ष-लक्ष्मी के गले के हार के समान अतिशय सुन्दर और मनोहर मणियों के हार से त्रिलोकीनाथ भगवान् वृषभदेव के कण्ठ की शोभा बहुत भारी हो गयी थी। बाजूबन्द, कड़ा, अनन्त (अणत) आदि से शोभायमान उनकी दोनों भुजाएँ ऐसी मालूम होती थीं मानों कल्पवृक्ष की दो शाखाएँ ही हों। भगवान् के कटिप्रदेश में छोटी-छोटी घण्टियों (बोरों) से सुशोभित मणिमय करधनी ऐसी शोभायमान हो रही थी मानों कल्पवृक्ष के अंकुर ही हों। गोमुख के आकार से चमकीले मणियों से शब्दायमान उनके दोनों चरण ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानों सरस्वती देवी ही आदर सहित उनकी सेवा कर रही हों। उस समय अनेक आभूषणों से शोभायमान भगवान् ऐसे जान पड़ते थे मानो लक्ष्मी का पुंज ही प्रकट हुआ हो, ऊँची शिखावाली रलों की राशि ही हो अथवा अलंकार

सहित भगवान् ऐसे शोभायमान हो रहे थे जैसे भोग्य वस्तुओं का समूह ही हो या मानों सौन्दर्य का समूह ही हो, सौभाग्य का खजाना ही हो अथवा गुणों का निवास स्थान ही हो। स्वभाव से सुन्दर तथा संगठित भगवान् का शरीर अलंकारों से युक्त होने पर ऐसा शोभायमान होने लगा था मानो उपमा रूपक आदि अलंकारों से युक्त तथा सुन्दर रखना से सहित किसी कवि का काव्य ही हो। इस प्रकार इन्द्राणी के द्वारा प्रत्येक अंग में धारण किये हुए मणिमय आभूषण से वे भगवान् उस कल्पवृक्ष के समान शोभायमान हो रहे थे जिसकी प्रत्येक शाखा पर आभूषण सुशोभित हो रहे हैं। इस तरह इन्द्राणी ने इन्द्र की गोदी में बैठे हुए भगवान् को अनेक वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर जब उनकी रूप-सम्पदा देखी तब-वह स्वयं भारी आश्चर्य को प्राप्त हुई। इन्द्र ने भी भगवान् के उस समय की रूप सम्बन्धी शोभा देखनी चाही परन्तु दो नेत्रों से देखकर सन्तुष्ट नहीं हुआ इसलिये मालूम होता है कि वह द्वयक्ष से सहस्राक्ष (हजारों नेत्रों वाला) हो गया था, उसने विक्रिया शक्ति से हजार नेत्र बनाकर भगवान् का रूप देखा था। उस समय देव और असुरों ने अपने टिमकार रहित नेत्रों से क्षण-भर के लिये मेरु पर्वत के शिखामणि के समान सुशोभित होनेवाले भगवान् को देखा। तदनन्तर इन्द्र आदि श्रेष्ठ देव उनकी स्तुति करने के लिए तत्पर हुए सो ठीक ही है तीर्थङ्कर होने वाले पुरुष का ऐसा ही अधिक प्रभाव होता है। हे देव! हम लोगों को परम आनन्द के लिये ही आप उदित हुए हैं। क्या सूर्य के उदित हुए बिना कभी कमलों का समूह प्रबोध को प्राप्त होता है? हे देव! मिथ्याज्ञानरूपी अन्धकूप में पड़े हुए इन संसारी जीवों के उद्धार करने की इच्छा से आप धर्मरूपी हाथ का सहारा देने वाले हैं।

अभिषेक के बाद ऋषभदेव को माता-पिता को समर्पण

अयोध्या से मेरु पर्वत तक जाते समय मार्ग में जैसा उत्सव हुआ था उसी प्रकार फिर होने लगा। उसी प्रकार दुन्दुभि बजने लगी, उसी प्रकार जय-जय शब्द का उच्चारण होने लगा और उसी प्रकार इन्द्र ने जिनेन्द्र भगवान् को ऐरावत हाथी के कन्धे पर विराजमान किया।

वे देव बड़ा भारी कोलाहल, गीत, नृत्य और जय-जय शब्द की घोषणा करते हुए आकाश रूपी आँगन को उल्लंघ कर शीघ्र ही अयोध्या पुरी आ पहुँचे।

अयोध्या- यां प्राहुरि दुर्लङ्घ्यामयोध्या योधसंकुलाम् ।
विनीता खण्ड मध्यस्था या तनाभिरिवाबभौ ॥ 70 ॥

वह नगरी अन्य शत्रुओं के द्वारा दुर्लघ्य थी और स्वयं अनेक योद्धाओं से भरी हुई थी इसलिए लोग उसे “अयोध्या” (जिसमें कोई युद्ध नहीं कर सके) कहते थे। उसका दूसरा नाम विनीता भी था और वह आर्यखण्ड के मध्य में स्थित थी इसलिए उसकी नाभि के समान शोभायमान हो रही थी। देवों की सेनाएँ उस अयोध्यापुरी को चारों ओर से घेरकर ठहर गयी थीं जिससे ऐसी मालूम होती थी मानों उसकी शोभा देखने के लिए तीनों लोक ही आ गये हों। तत्पथात् इन्द्र ने भगवान् ऋषभदेव को लेकर कुछ देवों के साथ उत्कृष्ट लक्ष्मी से सुशोभित महाराज नाभिराज के घर में प्रवेश किया।

**तत्रामर कृतानेक विन्यासे श्री गृहाङ्गणे ।
हर्यासने कुमारं तं सौधमेन्द्रो न्यवीविशत् ॥ 73 ॥**

और वहाँ जहाँ पर देवों ने अनेक प्रकार की सुन्दर रचना की है ऐसे श्रीगृह के आँगन में बालक रूप धारी भगवान् को सिंहासन पर विराजमान किया। महाराज नाभिराज उन प्रियदर्शन भगवान् को देखने लगे, उस समय उनका सारा शरीर रोमांचित हो रहा था, नेत्र प्रीति से प्रफुल्लित तथा विस्तृत हो रहे थे।

**माया निद्रा मयाकृत्य देवी शच्या प्रबोधिता ।
देवीभिः सममैक्षिष्ट प्रहृष्य जगतां पतिम् ॥ 75 ॥**

मायामयी निद्रा दूर कर इन्द्राणी के द्वारा प्रबोध को प्राप्त हुई माता मरुदेवी भी हर्षित चित्त होकर देवियों के साथ-साथ तीनों जगत् के स्वामी भगवान् वृषभदेव को देखने लगीं। वह सती मरुदेवी अपने पुत्र को उदय हुए तेज के पुंज के समान देख रही थी और वह उससे ऐसी सुशोभित हो रही थी जैसी कि बाल सूर्य से पूर्व दिशा सुशोभित होती है।

जिनके मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं ऐसे जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव के माता-पिता अतिशय प्रसन्न होत हुए इन्द्राणी के साथ-साथ इन्द्र को देखने लगे।

**ततस्तौ जगतां पूज्यो पूजयामास वासवः ।
विचित्रै भूषणैः स्वरिभरंशुकैश्च महार्घकैः ॥ 78 ॥**

तत्पथात् इन्द्र ने नाना प्रकार के आभूषणों, मालाओं और बहुमूल्य वस्त्रों से उन जगत्पूज्य माता-पिता की पूजा की। फिर वह सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन दोनों की इस प्रकार स्तुति करने लगा कि आप दोनों पुण्य रूपी धन से सहित हैं तथा बड़े ही धन्य हैं क्योंकि समस्त लोक में श्रेष्ठ पुत्र आप के ही हुआ है।

युवामेव महाभागौ युवा कल्याण भागिनौ ।

युवयोर्न तुला लोके युवामधि गुरोर्गुरु ॥ 80 ॥

इस संसार में आप दोनों ही महाभाग्यशाली हैं, आप दोनों ही अनेक कल्याणों को प्राप्त होने वाले हैं और लोक में आप दोनों की बराबरी करने वाला कोई नहीं है क्योंकि आप जगत् के गुरु के भी गुरु अर्थात् माता-पिता हैं।

इस प्रकार इन्द्र ने माता-पिता की स्तुति कर उनके हाथों में भगवान् को सौंप दिया और फिर उन्हीं के जन्माभिषेक की उत्तम कथा कहता हुआ वह क्षण भर वहाँ पर खड़ा रहा।

इन्द्र के द्वारा जन्माभिषेक की सब कथा मालूम कर माता-पिता दोनों ही हर्ष और आश्र्य की अन्तिम सीमा पर आरूढ़ हुए।

जातकर्मत्सवं भूयश्चत्कृतुस्तौ शतक्रतौः ।

लब्ध्वानुमतिभिद्धदर्ध्या समं पौरैर्धृतोत्सवैः ॥ 85 ॥

माता-पिता ने इन्द्र की अनुमति प्राप्त कर अनेक उत्सव करने वाले पुरवासी लोगों के साथ-साथ बड़ी विभूति से भगवान् का फिर भी जन्मोत्सव किया। उस समय उस नगर में न तो कोई दीन रहा था, न निर्धन रहा था। न कोई ऐसा ही रहा था जिस की इच्छाएँ पूर्ण नहीं हुई हों और न कोई ऐसा ही था जिसे आनन्द उत्पन्न नहीं हुआ हो।

“इन्द्र द्वारा आनन्द नाटक करना”

उन नगरवासियों का आनन्द देखकर अपने आनन्द को प्रकाशित करते हुए इन्द्र ने आनन्द नाटक करने में अपना मन लगाया। तत्पथात् अनेक प्रकार के पाठ्यें और चित्र-विचित्र शरीर की चेष्टाओं से इन्द्र के द्वारा किया हुआ वह नृत्य महात्मा पुरुषों के देखने और सुनने योग्य था।

उस समय इन्द्र ने पहले त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) रूप फल को सिद्ध करने

वाला गर्भावतार सम्बन्धी नाटक किया और फिर जन्माभिषेक सम्बन्धी नाटक करना प्रारम्भ किया । तदनन्तर इन्द्र ने भगवान् के महाबल आदि दशावतार सम्बन्धी वृत्तान्त को लेकर अनेक रूप दिखलाने वाले अन्य अनेक नाटक करना प्रारम्भ किये । उन नाटकों का प्रयोग करते समय इन्द्र ने सबसे पहले पापों का नाश करने के लिए मंगलाचरण किया और फिर सावधान होकर पूर्वरंग का प्रारम्भ किया । पूर्वरंग प्रारम्भ करते समय इन्द्र ने पुष्पाञ्जलि क्षेपण करते हुए सबसे पहले ताण्डव नृत्य प्रारम्भ किया । ताण्डव नृत्य के प्रारम्भ में उसने नान्दी मङ्गल किया और फिर नान्दी मङ्गल कर चुकने के बाद रंगभूमि में प्रवेश किया । उस समय नाट्य शास्त्र के अवतार को जानने वाला और मङ्गलमय वस्त्राभूषण धारण करने वाला वह इन्द्र बहुत ही शोभायमान हो रहा था । इस प्रकार जिसमें श्रेष्ठ गन्धर्वों के द्वारा अनेक प्रकार के बाजों का बजाना प्रारम्भ किया गया था ऐसे आनन्द नामक नृत्य को इन्द्र ने बड़ी सज-धज के साथ समाप्त किया ।

वृषभनाथ भगवान का नामकरण

वृषभोऽयं जगञ्ज्येष्ठो वर्धिष्यति जगद्वितम् ।
धर्मामृतमितीन्द्रास्तमकार्षुर्वृषभाहृयम् ॥ 160 ॥

आ.पु.प. 14 पृ. 319

ये भगवान् वृषभदेव जगत्-भर में ज्येष्ठ हैं और जगत् का हित करने वाले धर्मरूपी अमृत की वर्षा करेंगे इसीलिए इन्द्रों ने उनका वृषभदेव नाम रखा था ।

वृषो हि भगवान् धर्मस्तेन यद्वाति तीर्थकृत ।

ततोऽयं वृषभस्वामीत्याह्वा स्तैनं पुरन्दरः ॥ 161 ॥

अथवा वृष श्रेष्ठ धर्म को कहते हैं और तीर्थकर भगवान् उस वृष अर्थात् श्रेष्ठ धर्म से शोभायमान हो रहे हैं इसलिए ही इन्द्र ने उन्हें 'वृषभस्वामी' इस नाम से पुकारा था ।

स्वर्गावतरणेदृष्टः स्वप्नेऽस्य वृषभो यतः ।

जनन्या तदयं देवैराहूतो वृषभाख्यया ॥ 162 ॥

अथवा उनके गर्भावतरण के समय माता मरुदेवी ने एक वृषभ देखा था इसलिए ही देवों ने उनका 'वृषभ' नाम से आह्वान किया था ।

पुरुहूतः पुरु देवमाहृयन्नाख्ययानया ।

पुरुहूत इति ख्यातिं बभारान्वर्थतां गताम् ॥ 163 ॥

इन्द्र ने सबसे पहले भगवान् वृषभनाथ को 'पुरुदेव' इस नाम से पुकारा था इसलिए इन्द्र अपने पुरुहूत (पुरु अर्थात् भगवान् वृषभदेव को आह्वान करने वाला) नाम को सार्थक ही धारण करता था ।

देव कृत सेवा एवं भोग

ततोऽस्य सवयोरूप वेषान्सुरकुमारकान् ।

निरूप्य परिचर्यायै दिवं जगमुर्द्युनामकाः ॥ 164 ॥

तदनन्तर वे इन्द्र भगवान् की सेवा के लिए समान अवस्था, समान रूप और समान वेशवाले देवकुमारों को निश्चित कर अपने -अपने स्वर्ग को छले गये ।

धात्र्योनियोजिताश्रास्य देव्यः शक्रेण सादरम् ।

मञ्जने मण्डने स्तन्ये संस्कारे क्रीडनेऽपि च ॥ 165 ॥

इन्द्र ने आदर सहित भगवान् की स्नान कराने, वस्त्राभूषण पहनाने, दूध पिलाने, शरीर के संस्कार (तेल, कज्जल आदि लगाना) करने और क्रीड़ा करने के कार्य में अनेक देवियों को धाय बनाकर नियुक्त किया था ।

ललित सुरकुमारैरिज्ञितज्ञैर्वयस यैः सममुपहितरागः सोऽन्वभूत पुण्य पाकात् ॥ 211 ॥

वे भगवान् पुण्यकर्म के उदय से प्रतिदिन इन्द्र के द्वारा भेजे हुए सुगन्धित पुष्पों की माला अनेक प्रकार के वस्त्र तथा आभूषण आदि श्रेष्ठ भोगों का अपना अभिप्राय जानने वाले सुन्दर देवकुमारों के साथ प्रसन्न होकर अनुभव करते थे ।

बाल्य अवस्था

तदनन्तर आश्र्यकारक चेष्टाओं को धारण करने वाले भगवान् वृषभदेव अपनी पहली अवस्था (शैशव अवस्था) में कभी मन्द-मन्द हँसते थे और कभी मणिमयी भूमि पर अच्छी तरह चलते थे, इस प्रकार वे माता-पिता का हर्ष बढ़ा रहे थे । भगवान् की वह बाल्य अवस्था ठीक चन्द्रमा की बाल्य अवस्था के समान थी क्योंकि जिस प्रकार चन्द्रमा की बाल्य अवस्था जगत् को आनन्द देने वाली होती है उसी प्रकार भगवान् की बाल्य अवस्था भी जगत् को आनन्द देने

वाली थी। चन्द्रमा की बाल्य अवस्था जिस प्रकार नेत्रों को उत्कृष्ट आनन्द देने वाली होती है उसी प्रकार उनकी बाल्यावस्था नेत्रों को उत्कृष्ट आनन्द देने वाली थी और चन्द्रमा की बाल्यावस्था जिस प्रकार कला मात्र से उज्ज्वल होती है उसी प्रकार उनकी बाल्यावस्था भी अनेक कलाओं-विद्याओं से उज्ज्वल थी। भगवान के मुखरूपी चन्द्रमा पर मन्द हास्यरूपी निर्मल चाँदनी प्रकट रहती थी और उससे माता-पिता का सन्तोषरूपी समुद्र अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता रहता था। उस समय भगवान के मुख पर जो मनोहर मन्द हास्य प्रकट हुआ था वह ऐसा जान पड़ता था मानो सरस्वती का गीतबन्ध अर्थात् संगीत का प्रथम राग ही हो अथवा लक्ष्मी के हास्य की शोभा ही हो अथवा कीर्तिरूपी लता का विकास ही हो। भगवान के शोभायमान मुख-कमल में क्रम-क्रम से अस्पष्ट वाणी प्रकट हुई जो कि ऐसी मालूम होती थी मानो भगवान की बाल्य अवस्था का अनुकरण करने के लिए सरस्वती देवी ही स्वयं आयी हो। इन्द्रनील मणियों की भूमि पर धीरे-धीरे गिरते-पड़ते पैरों से चलते हुए बालक भगवान ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो पृथ्वी को लाल कमलों का उपहार ही दे रहे हों। सुन्दर आकार को धारण करने वाले वे भगवान माता-पिता के मन में सन्तोष को बढ़ाते हुए देव बालकों के साथ-साथ रत्नों की धूलि में क्रीड़ा करते थे। वे बाल भगवान् चन्द्रमा के समान शोभायमान होते थे, क्योंकि जिस प्रकार चन्द्रमा अपने आह्नादकारी गुणों से, प्रजा को आनन्द पहुँचाता है उसी प्रकार वे भी अपने आह्नादकारी गुणों से प्रजा को आनन्द पहुँचा रहे थे और चन्द्रमा का शरीर जिस प्रकार चाँदनी से व्याप्त रहता है उसी प्रकार उनका शरीर भी कीर्तिरूपी चाँदनी से व्याप्त था।

किशोरावस्था

जब भगवान् की बाल्यावस्था व्यतीत हुई तब इन्होंने के द्वारा पूज्य और महाप्रतापी भगवान् का कौमार्य अवस्था का शरीर बहुत ही सुन्दर हो गया। जिस प्रकार चन्द्रमण्डल की वृद्धि के साथ-साथ ही उसके कान्ति, दीपि आदि अनेक गुण प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं उसी प्रकार भगवान् के शरीर की वृद्धि के साथ-साथ ही उनके अनेक गुण प्रतिदिन बढ़ते जाते थे।

उस समय उनका मनोहर शरीर, प्यारी बोली, मनोहर अवलोकन और मुस्कराते हुए बातचीत करना यह सब संसार की प्रीति को विस्तृत कर रहे थे।

आदिनाथ की विद्या एवं बाल्य क्रीड़ा

जिस प्रकार जगत के मनको हर्षित करने वाले चन्द्रमा की वृद्धि होने पर उसकी समस्त कलाएँ बढ़ने लगती हैं उसी प्रकार समस्त जीवों के हृदय को आनन्द देने वाले जगत्पति-भगवान् के शरीर की वृद्धि होने पर उनकी समस्त कलाएँ बढ़ने लगी थीं।

मतिश्रुते सहोत्पन्ने ज्ञानं चावधिसंज्ञकम् ।

ततोऽबोधि स निशेषा विद्या लोकस्थितीरपि ॥ 178 ॥

मति, श्रुत और अवधि ये तीनों ही ज्ञान भगवान के साथ-साथ ही उत्पन्न हुए थे इसलिए उन्होंने समस्त विद्याओं और लोक की रिति को अच्छी तरह जान लिया था।

विश्वविद्येश्वरस्यास्य विद्या: परिणताः स्वयम् ।

ननु जन्मान्तराभ्यासः स्मृतिं पुण्याति पुष्कलाम् ॥ 179 ॥

वे भगवान् समस्त विद्याओं के ईश्वर थे इसलिए उन्हें समस्त विद्याएँ अपने आप ही प्राप्त हो गयी थीं सो ठीक ही है क्योंकि जन्मान्तर का अभ्यास स्मरण शक्ति को अत्यन्त पुष्ट रखता है।

कलासु कौशलं श्लाघ्यं विश्वविद्यासु पाटवम् ।

क्रियासु कर्मठत्वं च स भेजे शिक्षया विना ॥ 180 ॥

वे भगवान् शिक्षा के बिना ही समस्त कलाओं में प्रशंसनीय कुशलता को, समस्त विद्याओं में प्रशंसनीय चतुराई को और समस्त क्रियाओं में प्रशंसनीय कर्मठता (तर्क करने की सामर्थ्य) को प्राप्त हो गये थे।

वाङ्मयं सकलं तस्य प्रत्यक्षं वाक्प्रभोरभूत ।

येन विश्वस्य लोकस्य वाचस्पत्यादभूत गुरुः ॥ 181 ॥

वे भगवान् सरस्वती के एकमात्र स्वामी थे इसलिए उन्हें समस्त वाङ्मय (शास्त्र) प्रत्यक्ष हो गये थे और इसलिए वे समस्त लोक के गुरु हो गये थे।

पुराणः स कविर्वाग्मी गमकश्चेति नोच्यते ।

कोष्टबुद्ध्यादयो बोधा येन तस्य निसर्जाः ॥ 182 ॥

वे भगवान् पुराण थे अर्थात् प्राचीन इतिहास के जानकार थे, कवि थे, उत्तम वक्ता थे, गमक (टीका आदि के द्वारा पदार्थ को स्पष्ट करने वाले) थे और

सबको प्रिय थे, क्योंकि कोष्ठबुद्धि आदि अनेक विद्याएँ उन्हें स्वभाव से ही प्राप्त हो गयी थीं ।

क्षायिकं दर्शनं तस्य चेतोऽप्लमपाहरत् ।

वाग्मलं च निसर्गेण प्रसृतास्य सरस्वती ॥ 183 ॥

उनके क्षायिक सम्यक् दर्शन ने उनके चित के समस्त मल को दूर कर दिया था और स्वभाव से ही विस्तार को प्राप्त हुई सरस्वती ने उनके वचन सम्बन्धी समस्त दोषों का अपहरण कर लिया था ।

श्रुतं निसर्गतोऽस्यासीत् प्रसूतः प्रशमः श्रुतात् ।

ततो जगद्वितास्यासीत् चेष्टा सापालयत प्रजाः ॥ 184 ॥

उन भगवान् के स्वभाव से ही शास्त्र ज्ञान था, उस शास्त्र ज्ञान से उनके परिणाम बहुत ही शान्त रहते थे । परिणामों के शान्त रहने से उनकी चेष्टाएँ जगत का हित करने वाली होती थी और उन जगत् हितकारी चेष्टाओं से वे प्रजा का पालन करते थे । ज्यों-ज्यों शरीर के साथ-साथ उनके गुण बढ़ते जाते थे त्यों-त्यों समस्त जनसमूह और उनके परिवार के लोग हर्ष को प्राप्त होते जाते थे । इस प्रकार वे भगवान् माता-पिता के परम आनन्द को, बन्धुओं के सुख को और जगत के समस्त जीवों की परम प्रीति को बढ़ाते हुए वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे ।

ऋषभदेव की आयु

परमायुस्थास्याभूत् चरमं बिभ्रतो वपुः ।

सम्पूर्णा पूर्णलक्षाणामशीतिश्चरूतुतरा ॥ 187 ॥

चरम शरीर को धारण करने वाले भगवान् की सम्पूर्ण आयु चौरासी लाख पूर्व की थी ।

दीर्घदर्शीसुदीर्घायुदीर्घबाहुश्च दीर्घदृक् ।

स दीर्घसूत्रो लोकानामभजत सूत्रधारताम् ॥ 188 ॥

वे भगवान् दीर्घदर्शी थे, दीर्घ आयु के धारक थे, दीर्घ भुजाओं से युक्त थे, दीर्घ नेत्र धारण करने वाले थे और दीर्घ सूत्र अर्थात् दृढ़ विचार के साथ कार्य करने वाले थे, इसलिए तीनों ही लोकों की सूत्रधारता-गुरुत्व को प्राप्त हुए थे ।

30

युग निर्माता : ऋषभदेव

विद्या अभ्यासी ऋषभदेव

कदाचिल्लिपिसंख्यान गन्धर्वादिकलागमम् ।

स्वभ्यस्तपूर्वमभ्यस्यन् स्वयमभ्यासयत् परान् ॥ 189 ॥

भगवान् वृषभदेव कभी तो जिनका पूर्व भव में अच्छी तरह अभ्यास किया है ऐसे लिपि विद्या, गणित विद्या तथा संगीत आदि कला शास्त्रों का स्वयं अभ्यास करते थे और कभी दूसरों को कराते थे ।

छन्दोक्त्वचित्सलङ्कारप्रस्तारादिविवेचनैः ।

कदाचित्भावमान गोष्ठीश्चित्राद्यैश्च कला गमैः ॥ 190 ॥

कभी छन्द शास्त्र, कभी अलंकार शास्त्र, कभी प्रस्तार नष्ट उद्दिष्ट संख्या आदि का विवेचन और कभी चित्र खींचना आदि कला शास्त्रों का मनन करते थे ।

कदाचित् पद गोष्ठीभिः काव्यगोष्ठीभिरन्यदा ।

वावदूकैः समं कैश्चित् जल्पगोष्ठीभिरेकदा ॥ 191 ॥

कभी वैयाकारणों के साथ व्याकरण सम्बन्धी चर्चा करते थे, कभी कवियों के साथ काव्य विषय की चर्चा करते थे और कभी अधिक बोलने वाले वादियों के साथ वाद करते थे ।

कर्हिचिद् गीतगोष्ठीभिर्नृत गोष्ठीभिरेकदा ।

कदाचित् वाद्यगोष्ठीभिर्विणा गोष्ठीभिरन्यदा ॥ 192 ॥

कभी गीत गोष्ठी, कभी नृत्य गोष्ठी, कभी वादित्रगोष्ठी और कभी वीणागोष्ठी के द्वारा समय व्यतीत करते थे ।

कर्हिचिद् बहिरूपेणनटतः सुरचेटकान् ।

नटयन करतालेन लयमार्गानुयायिना ॥ 193 ॥

कभी मयूरों का रूप धर कर नृत्य करते हुए देवकिकरों को लय के अनुसार हाथ की ताल देकर नृत्य कराते थे ।

कांशिचञ्च शुकरूपेणसमासादितविक्रियान् ।

संपाठं पाठयछलोकान्मिलष्ट मधुराक्षरम् ॥ 194 ॥

कभी विक्रिया शक्ति से तोते का रूप धारण करने वाले देवकुमारों को स्पष्ट और मधुर अक्षरों से श्लोक पढ़ाते थे ।

युग निर्माता : ऋषभदेव

हंसविक्रियया कांश्चित् कूजतो मन्त्रगददम् ।
बिसभङ्गौ स्वहस्तेन दत्तैः संभावयम्भुहः ॥ 195 ॥

कभी हंस की विक्रिया कर धीरे-धीरे गदगद बोली से शब्द करते हुए हंस रूप धारी देवों को अपने हाथ से मृणाल के टुकड़े देकर सम्मानित करते थे।

गजविक्रियया कांश्चित् दधतः कालमी दशाम् ।

सान्त्वयम्भुरुग्नानात्यर्थ्य(रानाश्य) करभा क्रीडयम्भुदा ॥

कभी विक्रिया से हाथियों के बच्चों का रूप धारण करने वाले देवों को सांत्वना देकर या सूँड में प्रहार कर उनके साथ आनन्द से क्रीडा करते थे।

मणिकुट्टिमसंक्रान्तैः स्वैरेव प्रतिबिम्बकैः ।

कृकणाकूयितान कांश्चिद् मोदधुकामान परामृशन् ॥ 197 ॥

कभी मुर्गों का रूप धारण कर रलमयी जमीन में पड़ते हुए अपने प्रतिबिम्बों के साथ ही युद्ध करने की इच्छा करने वाले देवों को देखते थे या उन पर हाथ फेरते थे।

मल्लविक्रियया कांश्चिद् युथुत्सूननागिद्रहः ।

प्रोत्साहयन्कृतास्फोटवल्नानभिनृत्यतः ॥ 198 ॥

कभी विक्रिया शक्ति से मल्ल का रूप धारण कर वैर के बिना ही मात्र क्रीड़ा करने के लिए युद्ध करने की इच्छा करने वाले गम्भीर गर्जना करते हुए और इधर-उधर नृत्य-सा करते हुए देवों को प्रोत्साहित करते थे।

क्रौञ्चसारसरूपेण तारकेङ्गारकारिणाम् ।

शृण्वन्ननुगतं शब्दं केषांचित् श्रुतिपेशलम् ॥ 199 ॥

कभी क्रौञ्च और सारस पक्षियों का रूप धारण कर उच्च स्वर में क्रेकार शब्द करते हुए देवों के निरन्तर होने वाले कर्ण प्रिय शब्द सुनते थे।

स्त्रीगवणः शुचिलिपाङ्गान समेतान सुरदारकान् ।

दाण्डां क्रीडा समायोज्यद्य नर्तयंशं च कदाचन ॥ 200 ॥

कभी माला पहने हुए, शरीर में चन्दन लगाये हुए और इकट्ठे होकर आये हुए देव बालकों को दण्ड क्रीड़ा (पड़गर का खेल) में लगाकर नाचते थे।

अनारतं च कुदेन्दुमन्दाकिन्यपछटामलम् ।

सुरवन्दिभिरुद्धीतं स्वं समाकर्णयन् यशः ॥ 201 ॥

युग निर्माता : ऋषभदेव

कभी स्तुति पढ़ने वाले देवों के द्वारा निरन्तर गाये गये और कुन्द, चन्द्रमा तथा गङ्गा नदी के जल के छींटों के समान निर्मल अपने यश को सुनते थे।

अतन्त्रितं च देवीभिः न्यस्यमानं गृहाङ्गणे ।

रत्नचूर्णर्बलि चित्रं सानन्दमवलोकयन् ॥ 202 ॥

कभी घर के आंगन में आलस्य रहित देवियों के द्वारा बनायी हुई रत्नचूर्ण की चित्रावली को आनन्द के साथ देखते थे।

संभावयन कदाचिच्च प्रकृती द्रष्टुमागताः ।

वीक्षितैर्मधुरैः स्निग्धैः स्मितैः सादरभाषितैः ॥ 203 ॥

कभी अपने दर्शन के लिए आयी हुई प्रजा का, मधुर और स्नेह युक्त अवलोकन के द्वारा तथा मन्द हास्य और आदर सहित संभाषण के द्वारा सल्कार करते थे।

कदाचिद् दीर्घिकाम्भस्मु समं सुरकुमारकैः ।

जलक्रीडाविनोदेन रममाणः समंदम् ॥ 204 ॥

कभी बावडियों के जल में देवकुमारों के साथ-साथ आनन्द सहित जल क्रीड़ा का विनोद करते हुए क्रीड़ा करते थे।

साखं जलमासाद्य साखं हं सकूजितैः ।

ताश्चैमन्त्रकैः क्रीडन जलास्फाकृतारवैः ॥ 205 ॥

कभी हंसों के शब्दों से शब्दायमान सरयू नदी का जल प्राप्त कर उसमें पानी आस्फालन से शब्द करने वाले लकड़ी के बने हुए यन्त्रों से जल क्रीड़ा करते थे।

जलकेलिविधावेनं भक्त्या मेघकुमार काः ।

भेजुर्धारागृहीभूय स्फुरद्धाराः समन्ततः ॥ 206 ॥

जल क्रीड़ा के समय मेघकुमार जाति के देव भक्ति से धारागृह (फव्वारा) का रूप धारण कर चारों ओर से जल की धारा छोड़ते हुए भगवान् की सेवा करते थे।

कदाचिनन्दनस्पद्धितरूशोभाजिते वने ।

वनक्रीडा समातन्वन् वयस्यै रन्वितः सुरैः ॥ 207 ॥

कभी नन्दनवन के साथ स्पर्धा करने वाले वृक्षों की शोभा से सुशोभित नन्दन वन में मित्र रूप हुए देवों के साथ-साथ वन क्रीड़ा करते थे।

वनक्रीडाविनोदेऽस्य विरजीकृतभूतलाः।

मन्दं दुधुबुरुद्यानपादपान पवनामराः ॥ 208 ॥

वन क्रीड़ा के विनोद के समय पवन कुमार जाति के देव पृथिवी को धूलि रहित करते थे और उद्यान के वृक्षों को धीरे-धीरे हिलाते थे।

इस प्रकार देव कुमारों के साथ अपने-अपने समय के योग्य क्रीड़ा और विनोद करते हुए भगवान् वृषभदेव सुखपूर्वक रहते थे।

इस प्रकार जो तीन लोक के अधिपति इन्द्रादि देवों के द्वारा पूज्य हैं, आश्रय लेने योग्य हैं, सम्पूर्ण गुणकारी मणियों की खान हैं और पवित्र शरीर के धारक हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव महाराज नाभिराज के पवित्र घर में दिव्य भोग भोगते हुए देवकुमारों के साथ-साथ चिरकाल तक क्रीड़ा करते रहे।

यदि नो यजसे पादौ सर्वज्ञपरमेष्ठिनः ।

अरिविलं तर्हि वैदुष्यं मुघा ते शास्त्रकीर्तिने ॥

यदि तुम सर्वज्ञ परमेश्वर के श्रीचरणों की पूजा नहीं करते हो तो तुम्हारी सारी विद्वता किस की की ?



वीतरागस्य देवस्य रक्तः पादारविन्दयोः ।

यो धन्यः स पुमाँल्लोके दुःखी न स्यात् कदाचन् ॥

धन्य है वह मनुष्य, जो आदिपुरुष के पादारविन्द में रत रहता है। जो न किसी से राग करता है और न वृणा, उसे कभी कोई दुःख नहीं होता।

उपाय 2

यौवनावस्था एवं शरीर संगठन

पूर्ण यौवन अवस्था होने पर भगवान का शरीर बहुत ही मनोहर हो गया था, सो ठीक ही है, क्योंकि चन्द्रमा स्वभाव से ही सुन्दर होता है, यदि शरदक्रतु का आगमन हो जाये तो फिर कहना ही क्या है ?

उनका रूप बहुत ही सुन्दर और असाधारण हो गया था, वह तपाये हुये स्वर्ण के समान कान्तिवाला था, पसीने से रहित था, धूलि और मल से रहित था, दूध के समान सफेद रुधिर, समचतुरस्त्र नामक सुन्दर संस्थान और वज्रवृषभनाराचसंहनन से सहित था, सुन्दरता और सुगन्धि की परम सीमा धारण कर रहा था, एक हजार आठ लक्षणों से अलंकृत था, अप्रेमय था, महाशक्तिशाली था, और प्रिय तथा हितकारी वचन धारण करता था, काले-काले केशों से युक्त तथा मुकुट से अलंकृत उनका सिर ऐसा सुशोभित होता था, मानों नील मणियों से मनोहर मेरु पर्वत का शिखर ही हो। उनके मस्तक पर पड़ी हुई कल्पवृक्ष के पुष्पों की माला ऐसी अच्छी मालूम होती थी, मानों हिमगिरि के शिखरों को धेरकर ऊपर से पड़ी हुई आकाशगंगा ही हो।

उनके चौड़े ललाटपट्ट पर भारी शोभा ऐसी मालूम होती थी, मानों सरस्वती देवी के सुन्दर उपवन अथवा क्रीड़ा करने के स्थल की शोभा ही बढ़ा रही हो।

ललाटरूपी पर्वत के तट पर आश्रय लेने वाली भगवान की दोनों भौंहरूपी लताएँ ऐसी शोभायमान हो रही थी मानों कामदेवरूपी मृग को रोकने के लिये दो पाश ही बनाये हों ! काली पुतलियों से सुशोभित भगवान् के नेत्ररूपी कमलों की कान्ति, जिन पर भ्रमर बैठे हुये हैं, ऐसे कमलों की पाँखुरी के समान थी। मणियों के बने हुये कुण्डल रूपी आभूषणों से उनके दोनों कान ऐसे शोभायमान हो रहे थे मानों चन्द्रमा और सूर्य से अलंकृत आकाश के दो किनारे ही हों। भगवान के मुखरूपी चन्द्रमा में जो कान्ति थी वह तीन लोक में किसी दूसरी जगह नहीं थी सो ठीक ही है, अमृत में जो संतोष होता है, वह क्या किसी दूसरे

जगह दिखायी देता है ? उनका मुख मन्दहास से मनोहर था, और लाल-लाल अंधर से सहित था, इसलिये फेन सहित पाँखुरी से युक्त कमल की शोभा धारण कर रहा था । भगवान् की लम्बी और ऊँची नाक सरस्वती देवी के अवतरण के लिये बनायी प्रणाली के समान शोभायमान हो रही थी । उनका कंठ मनोहर रेखाएँ धारण कर रहा था । उससे ऐसा मालूम होता था, मानों विधाता ने मुखरूपी घर के लिये उकेर कर एक सुवर्ण का स्तम्भ ही बनाया हो । वे भगवान् अपने वक्षःस्थल पर महानायक अर्थात् बीच में लगे हुये श्रेष्ठ मणि से युक्त जिस हारयष्टि को धारण कर रहे थे, वह महानायक अर्थात् श्रेष्ठ सेनापति से युक्त, गुणरूपी क्षत्रियों की सुसंगठित सेना के समान शोभायमान हो रही थी । जिस प्रकार सुमेरु पर्वत अपने शिखर पर पड़ते हुए झरने धारण करता है उसी प्रकार भगवान् वृषभदेव अपने वक्षःस्थल पर अतिशय देवीयमान इन्दुच्छद नामक हार को धारण कर रहे थे । उस मनोहर हार से भगवान् का वक्षःस्थल गंगा नदी के प्रवाह से युक्त हिमालय पर्वत के तट के समान शोभा को प्राप्त हो रहा था । भगवान् का वक्षस्थल सरोवर के समान सुन्दर था । वह हार की किरण रूपी जल से भरा था, और उस पर दिव्य लक्ष्मीरूपी कलहंसी चिरकाल तक क्रीड़ा करती थी । भगवान् का वक्षस्थल लक्ष्मी के रहने का घर था, उसके दोनों ओर ऊँचे उठे हुए उनके दोनों कंधे ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानों जयलक्ष्मी के रहने की दो ऊँची अटारी ही हों । बाजूबंद के संघटन से जिनके कन्धे स्तिर्याध हो रहे हैं । जो शोभारूपी लता से सहित हैं ऐसी जिन भुजाओं को भगवान् धारण कर रहे थे वे अभीष्ट फल देने वाले कल्पवृक्षों के समान सुशोभित हो रही थीं । सुख देने वाले प्रकाश से युक्त तथा सीधी अंगुलियों के आश्रित भगवान् के हाथों के नखों को मैं समझता हूँ कि वे उनके महाबल आदि इस अवतारों में भोगी हुई लक्ष्मी के विलास दर्पण ही थे । महाराज नाभिराज के पुत्र भगवान् वृषभदेव अपने शरीर के मध्यभाग में जिस नाभि को धारण किये हुए थे, वह लक्ष्मी रूपी हंसी से सेवित तथा आवर्त से सहित सरसी के समान सुशोभित हो रही थी । करधनी और वस्त्र से सहित भगवान् का जघन भाग ऐसी शोभा धारण कर रहा था मानों बिजली और शरदक्रतु के बादलों से सहित किसी पर्वत का मध्यभाग ही हो । धीर वीर भगवान् सुवर्ण के समान देवीयमान जिन दो अरुओं को धारण कर रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों,

लक्ष्मी देवी के झूला के दो ऊँचे स्तम्भ ही हों । कामदेवरूपी हाथी के उल्लंघन न करनेयोग्य अर्गतों के समान शोभायमान भगवान् की दोनों जंघाएँ इस प्रकार उत्कृष्ट कान्ति को प्राप्त हो रही थीं मानो लक्ष्मीदेवी ने स्वयं उबटन कर उन्हें उज्ज्वल किया हो ।

ऋषभदेव के शरीर के शुभ-लक्षण

पादारविन्दयोः कान्तिरस्य केनोपमीयते ।

त्रिजगच्छ्रीसमाश्लेष सौभाग्यमदशालिनोः ॥ 26 ॥ आ.पु.प. 15

भगवान् के दोनों ही चरणकमल तीनों लोकों की लक्ष्मी के आलिंगन से उत्पन्न हुये सौभाग्य के गर्व से बहुत ही शोभायमान हो रहे थे, संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसके कि साथ उनकी उपमा दी जा सके ।

इत्यस्याविरभूत कान्तिरालकाग्रं नखाग्रतः ।

नूनमन्यत्र नालब्ध सा प्रतिष्ठां स्ववाज्ज्ञाताम् ॥ 27 ॥

इस प्रकार पैरों के नख के अग्रभाग से लेकर सिर के बालों के अग्रभाग तक भगवान् के शरीर की कान्ति प्रकट हो रही थी और ऐसी मालूम होती थी मानों उसे किसी दूसरी जगह अपनी इच्छानुसार स्थान प्राप्त नहीं हुआ था, इसलिये वह अनन्यगति होकर भगवान् के शरीर में आ प्रकट हुई हो ।

निसर्गसुन्दरं तस्य वपुर्वज्रास्थिबन्धनम् ।

विषशस्त्राद्यभेद्यत्वं भेजे रुकमादिसच्छवि ॥ 28 ॥

भगवान् का शरीर स्वभाव से ही सुन्दर था, वज्रमय हड्डियों के बन्धन से सहित था, विष-शस्त्र आदि से अभेद्य था और इसलिये वह मेरु पर्वत की कान्ति को प्राप्त हो रहा था ।

यत्र वज्रमयास्थीनि वज्रैर्वलयितानि च ।

वज्रनाराचभिनानि तत्संहननमीशितुः ॥ 29 ॥

जिस संहनन में वज्रमयी हड्डियाँ वस्त्रों से वेष्टित होती हैं और वज्रमयी कीलों से कीलित होती हैं । भगवान् वृषभदेव का वही वज्रवृषभनाराचसंहनन था ।

त्रिदोषजा महातङ्गा नास्य देहे न्यघुः पदम् ।

मरुतां चलितागानां ननु मेरुरगोचरः ॥ 30 ॥

वात-पित और कफ इन तीन दोषों से उत्पन्न हुई व्याधियाँ भगवान् के

युग निर्माता : ऋषभदेव
शरीर में स्थान नहीं कर सकी थीं सो ठीक ही है वृक्ष अथवा अन्य पर्वतों को हिलाने वाली वायु मेरु पर्वत पर अपना असर नहीं दिखा सकती ।

न जरास्य न खेदो वा नोपधातोऽपि जातुचित ।
केवलं सुखसादभूतो महीतल्पेऽमहीयत ॥ 31 ॥

उनके शरीर में न कभी बुढ़ापा आता था, न कभी उन्हें खेद होता था और न कभी उनका उपधात (असमय मृत्यु) ही हो सकता था । वे केवल सुख के अधीन होकर पृथ्वी रूपी शश्या पर पूजित होते थे ।

तदस्य रुसचे गात्रं परमौदारिकाह्यम् ।
महाभ्युदयनिः श्रेयसार्थानां मूलकारणम् ॥ 32 ॥

जो महाभ्युदय रूप मोक्ष का मूल कारण था ऐसा भगवान् का परमौदारिक शरीर अत्यन्त शोभायमान हो रहा था ।

मानोन्मानप्रमाणानामन्युनाधिकतां श्रितम् ।
संस्थानमाद्यमस्यासीच्चतुरस्त्रं समन्तत ॥ 33 ॥

भगवान् के शरीर का आकार, लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई आदि सब और हीनाधिकता से रहित था, उनका समचुतरस्त्र-संस्थान था ।

यथास्य रूपसंपित्तं स्तथा भौगेश्च पप्रथे ।
न हि कल्पाइघिपोदभूतिरनाभरभासुरा ॥ 34 ॥

भगवान् ऋषभदेव को जैसी रूप सम्पत्ति थी, वैसी ही उनको भोगोपभोग की सामग्री भी प्रसिद्ध थी सो ठीक ही है, क्योंकि कल्पवृक्षों की उत्पत्ति आभरणों से देवीप्यमान हुये बिना नहीं रहती ।

लक्षणानि बर्भुर्भुर्तुर्देहमाश्रित्य निर्मलम् ।
ज्योतिषामिव विम्वानि मेरोर्मणिमयं तटम् ॥ 35 ॥

जिस प्रकार सुमेरु पर्वत के मणिमय तट को पाकर ज्योतिषी देवों के मण्डल अतिशय शोभायमान होने लगते हैं, उसी प्रकार भगवान् के निर्मलं शरीर को पाकर सामुद्रिक शास्त्र में कहे हुए लक्षण अतिशय शोभायमान होने लगे थे ।

विभु कल्पतरुच्छायांवभाराभरणोज्जलः ।
शुभानि लक्षणान्यस्मिन् कुसुमानीव रेजिरे ॥ 36 ॥

अथवा अनेक आभूषणों से उज्ज्वल भगवान् कल्पवृक्ष की शोभा धारण कर रहे थे और अनेक शुभलक्षण उस पर लगे हुये फूलों के समान सुशोभित हो रहे थे ।

श्री वृक्ष, शङ्क, कमल, स्वस्तिक, अंकुश, तोरण, चमर, सफेद छत्र, सिंहासन, पताका, दो मीन, दो कुम्भ, कच्छप, चक्र, समुद्र, सरोवर, विमान, भवन, हाथी, मनुष्य, श्वियाँ, सिंह, बाण, धनुष, मेरु, इन्द्र, देवगंगा, पुर, गोपुर, चन्द्रमा, सूर्य, उत्तम घोड़ा, तालवृन्त पंखा, बाँसुरी, वीणा, मृदंग, मालाएँ, रेशमी वस्त्र, दुकान, कुण्डल आदि को लेकर चमकते हुये चित्र-विचित्र आभूषण फल सहित उपवन, पके हुए वृक्षों से सुशोभित खेत, रत्नद्वीप, वज्र, पृथ्वी, लक्ष्मी, सरस्वती, कामधेनु, वृषभ, चूडामणी, महानिधियाँ, कल्पलता, सुवर्ण, जम्बूद्वीप, गरुड़, नक्षत्र, तारे, राजमहल, सूर्यादिक ग्रह, सिन्धार्थ वृक्ष, आठ प्रातिहार्य और आठ मंगलद्रव्य आदि इन्हें लेकर एक सौ आठ लक्षण और मसूरिका आदि नौ सौ व्यञ्जन भगवान् के शरीर में विद्यमान थे ।

इन मनोहर और श्रेष्ठ लक्षणों से व्याप हुआ भगवान् का शरीर ज्योतिषी देवों से भरे हुए आकाश रूपी आँगन की तरह शोभायमान हो रहा था ।

चूंकि उन लक्षणों को भगवान् का निर्मल शरीर स्पर्श करने के लिये प्राप्त हुआ था, इसलिये जान पड़ता है कि उन लक्षणों के अन्तर्लक्षण कुछ शुभ अवश्य थे ।

राग-द्वेष रहित जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव के अतिशय कठिन मन रूपी घर में लक्ष्मी जिस प्रकार-बड़ी कठिनाई से अवकाश पा सकी थी ।

भावार्थ-भगवान् स्वभाव से ही वीतराग थे, राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करना अच्छा नहीं समझते थे ।

सरस्वती प्रियास्यासीत् कीर्तिश्चाकल्पवर्तिनी ।
लक्ष्मीं तडिल्लतालोलां मन्दप्रेम्मैव सोऽवहत् ॥ 48 ॥

भगवान् के दो श्वियाँ ही अत्यन्त प्रिय थीं— एक तो सरस्वती और दूसरी कल्पान्तकाल तक स्थिर रहने वाली कीर्ति । लक्ष्मी विद्युत्लता के समान चंचल होती है, इसलिये भगवान् उस पर बहुत थोड़ा प्रेम रखते थे ।

तदीयरूपलावण्ययौवनादिगुणोद्गमैः ।
आकृष्टा जनतानेत्रभृङ्गा नान्यत्र रेमिरे ॥ 49 ॥

भगवान् के रूप लावण्य, यौवन आदि गुणरूपी पुष्पों से आकृष्ट हुये मनुष्यों के नेत्ररूपी भौंरे दूसरी जगह कही भी रमण नहीं करते थे—आनन्द नहीं पाते थे ।

ऋषभदेव का विवाह प्रस्ताव

किसी एक दिन महाराज नाभिराय भगवान् की घौवन अवस्था का प्रारम्भ देखकर अपने मन में उनके विवाह करने की चिन्ता इस प्रकार करने लगे ।

कि यह देव अतिशय सुन्दर शरीर के धारक हैं, इनके चित्त को हरण करने वाली कौन सी स्त्री हो सकती है ? कदाचित् इनका चित्त हरण करने वाली सुन्दर स्त्री मिल भी सकती है । परन्तु इनका विषयराग अत्यन्त मन्द है । इसलिये इनके विवाह का प्रारम्भ करना ही कठिन कार्य है ।

अपि चास्य महानस्ति प्रारभस्तीर्थवर्त्तने ।

सोऽतिवर्तीव गन्धेभो नियमात्प्रविशेद्वनम् ॥ 52 ॥

और दूसरी बात यह है कि इनका धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति करने में भारी उद्योग है, इसलिये ये नियम से सब परिग्रह छोड़कर मन्त्र हस्ती की भाँति वन में जाकर दीक्षा धारण करेंगे ।

तथापि काललब्धिः स्याद् यावदस्य तपस्त्यितुम् ।

तावत्वकलत्रमुचितं चिन्त्यं लोकानुरोधतः ॥ 53 ॥

तथापि तपस्य करने के लिये जब इनकी काललब्धि आती है, तब तक इनके लिये लोक व्यवहार के अनुरोध से योग्य स्त्री का विचार करना चाहये ।

इसलिये जिस प्रकार हंसी निष्ठंक अर्थात् कीचड़ रहित मानस (मान सरोवर) में निवास करती है उसी प्रकार कोई योग्य और कुलीन स्त्री इनके निष्ठंक अर्थात् निर्मल मन में निवास करे ।

यह निश्चय कर लक्ष्मीवान् महाराज नाभिराज बड़े ही आदर और हर्ष के साथ भगवान् के पास जाकर वक्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् से शान्ति पूर्वक इस प्रकार कहने लगे कि ।

देव किंचिद् विवक्षामि सावधानमितः शृणु ।

त्वयोपकारो लोकस्य करणीयो जगत्यते ॥ 56 ॥

हे देव ! मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ, इसलिये आप सावधान होकर सुनिए । आप जगत् के अधिपति हैं, इसलिये आपको जगत् का उपकार करना चाहिये ।

हिरण्यगर्भस्त्वं धाता जगतां त्वं स्वभूरसि ।

निभमात्रं त्वदुपत्तौ पितृभ्मन्या यतो वयम् ॥ 57 ॥

हे देव ! आप जगत की सृष्टि करने वाले ब्रह्म है तथा स्वयंभू है अर्थात् अपने आप ही उत्पन्न हुये हैं । क्योंकि आपकी उत्पत्ति में अपने आपको पिता मानने वाले हम लोग छलमात्र है ।

यथार्कं स्य समुद्धूतौ निमित्तमुदयाचलः ।

स्वतस्तु भास्वानुद्याति तथैस्मद् भवानपि ॥ 58 ॥

जिस प्रकार सूर्य के उदय होने में उदयाचल निमित्त मात्र है, क्योंकि सूर्य स्वयं ही उदित होता है । उसी प्रकार आपकी उत्पत्ति होने में हम निमित्त मात्र हैं क्योंकि आप स्वयं ही उत्पन्न हुये हैं ।

गर्भगेहे शुचौ मातुस्त्वं दिव्ये पद्मविष्ट्रे ।

निधाय स्वां परां शक्तिमुद्भूतो निष्कलोऽस्यतः ॥ 59 ॥

आप माता के पवित्र गर्भगृह में कमलरूपी दिव्य आसन पर अपनी उत्कृष्ट शक्ति स्थापन कर उत्पन्न हुए हैं, इसलिये आप वास्तव में शरीर रहित हैं ।

गुरुब्रुवोऽहं तद्वे त्वामित्यभ्यर्थये विभुम् ।

मति विधेहि लोकस्य सृजनं प्रति संप्रति ॥ 60 ॥

हे देव ! यद्यपि मैं यथार्थ में आपका पिता नहीं हूँ, निमित्त मात्र से ही पिता कहलाता हूँ तथापि मैं आपसे एक अभ्यर्थना करता हूँ कि आप इस समय संसार की सृष्टि की ओर भी बुद्धि लगाइये ।

विवाह का उद्देश्य

त्वामादिपुरुषं दृष्ट्वा लोकोऽप्येवं प्रवर्त्तताम् ।

महतां मार्गवर्त्तिन्यः प्रजाः सुप्रजसो ह्यमूः ॥ 61 ॥

आप आदि पुरुष हैं, इसलिये आपको देखकर अन्य लोग भी ऐसी ही प्रवृत्ति करेंगे । क्योंकि जिनके उत्तम संतान होने वाली है ऐसी यह प्रजा महापुरुषों के ही मार्ग का अनुगमन करती है ।

ततः कलत्रमेत्रष्टुं परिणेतुं मनः कुरु ।

प्रजासन्ततिरेवं हि नोच्छेत्स्यति विदांवर ॥ 62 ॥

इसलिये हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! आप इस संसार में किसी इष्ट कन्या के साथ विवाह करने के लिये मन कीजिये, क्योंकि ऐसा करने से प्रजा की सन्तति का

मुग निर्माता : ऋषभदेव उच्छेद नहीं होगा ।

प्रजासन्तत्यविच्छेदे तनुते धर्मसन्ततिः ।
मनुष्व मानवं धर्मं ततो देवेममच्युत ॥ 63 ॥

प्रजा की सन्तति का उच्छेद नहीं होने पर धर्म की सन्तति बढ़ती रहेगी, इसलिए हे देव ! मनुष्यों में इस अविनाशिक विवाह रूपी धर्म को अवश्य ही स्वीकार कीजिये ।

देवेमं गृहिणां धर्मं विद्धि दारपरिग्रहम् ।
सन्तानरक्षणे यल कार्ये हि गृहमेधिनाम् ॥ 64 ॥

हे देव ! आप इस विवाह कार्य को गृहस्थों का एक धर्म समझिये, क्योंकि गृहस्थों को सन्तान की रक्षा में प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिये ।

विवाह प्रस्ताव स्वीकार –

त्वया गुरुर्मतोऽयं चेत् जनः केनापि हेतुना ।
वचो नोल्लङ्घयमेवास्य नेष्टुं हि गुरुलङ्घनम् ॥ 65 ॥

यदि आप मुझे किसी भी तरह गुरु मानते हैं तो आपको मेरे वचनों का किसी भी कारण से उल्लंघन नहीं करना चाहिये, क्योंकि गुरुओं के वचनों का उल्लंघन करना इष्ट नहीं है ।

इत्युदीर्यं गिरं धीरो व्यरसीनाभिपार्थिवः ।
देवस्तु सस्मितं तस्य वचः परत्यच्छदोमिति ॥ 66 ॥

इस प्रकार वचन कहकर धीर-वीर महाराज नाभिराय चुप रहे, और भगवान् ने हँसते हुये ‘ओम्’ कहकर उनके वचन स्वीकार कर लिये। अर्थात् विवाह करना स्वीकृत कर लिया ।

किमेतत्पितृदाक्षिण्यं किं प्रजानुग्रहैषिता ।
नियोगः कोऽपि वा ताहग यैनेच्छन्तादृशं वशी ॥ 67 ॥

इन्द्रियों को वश में करने वाले भगवान् ने जो विवाह कराने की स्वीकृति दी थी, वह क्या उनके पिता की चतुराई थी, अथवा प्रजा का उपकार करने की इच्छा थी, अथवा वैसा कोई कर्मों का नियोग ही था ।

विवाह उत्सव

तदनन्तर भगवान् की अनुमति जानकर नाभिराय ने निःशंक होकर बड़े हर्ष के साथ विवाह का बड़ा भारी उत्सव किया ।

मुग निर्माता : ऋषभदेव सुरेन्द्रानुमतात् कन्ये सुशीले चारुलक्षणे ।
सत्यौ सुरुचिराकारे वरयामास नाभिराट् ॥ 69 ॥

महाराज नाभिराज ने इन्द्र की अनुमति से सुशील, सुन्दर लक्षणों वाली, सती और मनोहर आकार वाली दो कन्याओं की याचना की ।

वे दोनों कन्यायें कच्छ-महाकच्छ की बहनें थीं। बड़ी ही शान्त और यौवनवती थीं, यशस्वती और सुनन्दा उनका नाम था, उन्हीं दोनों कन्याओं के साथ नाभिराय ने भगवान का विवाह कर दिया ।

श्रेष्ठ गुणों को धारण करने वाले भगवान् वृषभदेव विवाह कर रहे हैं, इस हर्ष से देवो ने प्रसन्न होकर अनेक उत्तम-उत्तम उत्सव किये थे ।

पश्यन्याणिगृहीत्यौ ते नाभिराजः सनाभिभिः ।

समं समतुष्टत् प्रायः लोकधर्मप्रियो जनः ॥ 72 ॥

महाराज नाभिराय अपने परिवार के लोगों के साथ, दोनों पुत्र-वधुओं को देखकर भारी सन्तुष्ट हुए सो ठीक है, क्योंकि संसारी जनों को विवाह आदि लौकिक धर्म ही प्रिय होता है ।

पुरुदेवस्य कल्याणे मरुदेवी तुतोष सा ।

दारकर्मणि पुत्राणां प्रीत्युक्तर्णे हि योषिताम् ॥ 73 ॥

भगवान् वृषभदेव के विवाहोत्सव में मरुदेवी बहुत सन्तुष्ट हुई थी, सो ठीक है, पुत्र के विवाहोत्सव में स्त्रियों को अधिक प्रेम होता ही है ।

जिस प्रकार चन्द्रमा की कला से लहरों की माला से भरी हुई समुद्र की खेला बढ़ने लगती है उसी प्रकार भाग्योदय से होने वाली पुत्र की विवाहोत्सव रूप सम्पदा से मरुदेवी बढ़ने लगी थी ।

पुरोर्विवाहकल्याणे प्रीतिं भेजे जनोऽखिलः ।

स्वधोगिनतया भोक्तु भौगांल्लोकोऽनुरुद्ध्यते ॥ 75 ॥

नगवान् के विवाहोत्सव में सभी लोग आनन्द को प्राप्त हुये थे सो ठीक ही । मनुष्य स्वयं ही भोगों की तृष्णा रखते हैं, इसलिये वे स्वामी को भोग स्वीकार करते देखकर उन्हीं का अनुसरण करने लगते हैं ।

भगवान् का वह विवाहोत्सव केवल मनुष्यलोक की प्रीति के लिये ही नहीं हुआ था बल्कि उसने स्वर्गलोक में भी भारी प्रीति को विस्तृत किया था ।



अध्याय 3

आदिनाथ द्वारा कला एवं विद्याओं का उपदेश

एक समय भगवान् वृषभदेव सिंहासन पर सुख से बैठे हुए थे, कि उन्होंने अपना चित्त कला और उपदेश देने में व्यापृत किया। उसी समय उनकी ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की पुत्रियाँ माझलिक वेशभूषा धारण कर उनके निकट पहुँची।

मेधाविन्यौ विनीते च सुशीले चारुलक्षणे ।

रूपवत्यौ यशस्विन्यौ श्लाघ्ये मानवती जनैः ॥ 75 ॥

आ.पु. प. 1 पृ. 352

वे दोनों ही कन्याएँ बुद्धिमती थीं, विनीत थीं, सुन्दर क्षण से सहित थीं, रूपवती थीं और मानिनी श्वर्णों के द्वारा भी प्रशंसनीय थीं।

प्रणते ते समुत्याप्य दूरान्मितमस्तके ।

प्रीत्या स्वमङ्गमारोप्य स्पष्टवाद्याय च मस्तके ॥ 94 ॥

संप्रहासमुवाचैवमेतं मन्यै सुरैः समम् ।

यास्ययोऽद्यामरोद्यानं नैवमेते गताः सुराः ॥ 95 ॥

दूर से ही जिनका मस्तक उग्र हो रहा है ऐसी नमस्कार करती हुई उन दोनों पुत्रियों को उठाकर भगवान् ने प्रेम से अपनी गोद में बैठाया। उन पर हाथ फेरा, उनका मस्तक सूँघा और हँसते हुए उनसे बोले कि आओ, तुम समझती होगी कि हम आज देवों के साथ-अमर वन को जायेंगी परन्तु अब ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि देव लोग पहले हीं चले गए हैं।

इस प्रकार भगवान् वृषभदेव क्षण भर उन दोनों पुत्रियों के साथ क्रीड़ा कर फिर कहने लगे कि तुम अपने शील और विनय गुण के कारण युवावस्था में भी वृक्ष के समान हो।

विद्या का महत्व

तुम दोनों का यह शरीर, यह अवस्था और यह अनुपम शील यदि विद्या से विभूषित किया जाय तो तुम दोनों का यह जन्म सफल हो सकता है।

विद्यावान् पुरुषो लोके संमतिं याति कोविदैः ।

नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदम् ॥ 98 ॥

इस लोक में विद्यावान् पुरुष पण्डितों के द्वारा भी सम्मान को प्राप्त होता है और विद्यावती स्त्री भी सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होती है।

विद्या यशस्करी पुंसां विद्या श्रेयस्करी मता ।

सम्यगाराधिता विद्या देवता कामदायिनी ॥ 99 ॥

विद्या ही मनुष्यों का यश करने वाली है, विद्या ही पुरुषों का कल्याण करने वाली है, अच्छी तरह से आराधना की गई विद्या देवता ही सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली है।

विद्या कामदुहा धेनुर्विद्या चिन्तामणिर्नृणाम् ।

त्रिवर्गफलितां सूते विद्या संपत्परम्पराम् ॥ 100 ॥

विद्या मनुष्यों के मनोरथों को पूर्ण करने वाली कामधेनु है, विद्या ही चिन्तामणि है, विद्या से ही धर्म, अर्थ, काम और कामरूप फल से रहित सम्पदाओं की परम्परा उत्पन्न होती है।

विद्या बन्धुश्च मित्रं च विद्या कल्याणकारकम् ।

सहयायि धनं विद्या विद्या सर्वार्थसाधनी ॥ 101 ॥

विद्या ही मनुष्यों का बन्धु है, विद्या ही मित्र है, विद्या ही कल्याण करने वाली है, विद्या ही साथ-साथ जाने वाला धन है और विद्या ही सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली है।

तदविद्याग्रहणं यत्तं पुत्रिके कुरुतं युवाम् ।

सत्संगग्रहणकालोऽयं युवयोर्वर्त्ततेऽधुना ॥ 102 ॥

इसलिये हे पुत्रियों ! तुम दोनों विद्या ग्रहण करने में प्रयत्न करो क्योंकि तुम दोनों के विद्या ग्रहण करने का यही काल है।

सर्व प्रथम अक्षराङ्क विद्यारम्भ एवं स्त्री शिक्षा

इत्युक्त्वा मुहुराशास्य विस्तीर्णे हेम पट्टुके ।

अधिवास्य स्वचित्तस्थां श्रुतेदेवीं सपर्यया ॥ 103 ॥

विभुः करद्वयेनाभ्यां लिखनक्षरमालिकाम् ।

उपादिशल्लिपि संख्यास्थानं चाङ्कःरनुक्रमात् ॥ 104 ॥

भगवान् ऋषभदेव ने ऐसा कहकर तथा बार-बार उन्हें आशीर्वाद देकर अपने धित में स्थिर श्रुत देवता को आदर पूर्वक सुवर्ण के विस्तृत पट्टे पर स्थापित किया, फिर दोनों हाथों से अ आ आदि वर्णमाला लिखकर उन्हें लिपि (लिखने का) उपदेश दिया और अनुक्रम इकाई दहाई आदि अंकों के द्वारा उन्हें संख्या के ज्ञान का भी उपदेश दिया। ऐसी प्रसिद्धि है कि भगवान् ने दाहिने हाथ से वर्णमाला और बायें हाथ से संख्या लिखी थी।

ततो भगवतो वक्त्रान्निःसृतामक्षरावलीम् ।
सिद्धं नम इति व्यक्तमङ्गलां सिद्धमातृकाम् ॥ 105 ॥
अकारादिहकारान्तां शुद्धां मुक्तावलीमिव ।
स्वरव्यञ्जनभेदेन द्विधा भेदमुपेयुषीम् ॥ 106 ॥
अयोगवाहपर्यन्तां सर्वविद्या तु संतताम् ।
संयोगाक्षरसंभूतिं नैकबीजाक्षरैश्चिताम् ॥ 107 ॥
समवादीधरद् ब्राह्मी मेधाविन्यतिसुन्दरी ।
सुन्दरी गणितं स्थानक्रमैः सम्यगधारयत् ॥ 108 ॥

तदनन्तर जो भगवान् के मुख से निकली हुई है, जिससे “सिद्धं नमः” इस प्रकार का मंगलाचरण अत्यन्त स्पष्ट है, जिसका नाम सिद्धमातृका है, जो स्वर और व्यंजन के भेद से दो भेदों को प्राप्त है, जो समस्त विद्याओं में पायी जाती है, जिसमें अनेक संयुक्त अक्षरों की उत्पत्ति है, जो अनेक बीजाक्षरों से व्याप्त है, और जो शुद्ध मोतियों की माला के समान है ऐसे अकार को आदि लेकर हकार पर्यंत तथा विसर्ग, अनुस्वार, जिह्वामूलीय और उपध्यमानीय इन अयोगवाह पर्यन्त समस्त शुद्ध अक्षरावली को बुद्धिमती ब्राह्मी पुत्री ने धारण किया और अतिशय सुन्दरी सुन्दरी देवी ने इकाई दहाई आदि स्थानों के क्रम से गणित शास्त्र को अच्छी तरह धारण किया।

लिपि निर्माण का इतिहास

मानवीय सभ्यता संस्कृति, आध्यात्मिक उन्नति के लिए शिक्षा का योगदान सबसे महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार अशुद्ध सुवर्ण पाषाण अग्नि से संस्कारित होकर, विशुद्ध होकर, चमकदार मूल्यवान एवं बहुपयोगी हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य शिक्षा द्वारा सुसंस्कृत होकर विशुद्ध ज्ञानवान, तेजवान, चारित्रवान

एवं बहुआयामी हो जाता है। नीतिकारों ने बताया है-

“विद्या विहीनम् पशुः”

मनुष्य विद्या से हीन पशु के समान है। मनुष्य को पशु-स्तर से ऊपर उठाकर मानव, महामानव एवं भगवान बनने के लिए विद्या की नितान्त आवश्यकता है।

भोगभूमिज मनुष्य स्वाभाविक अनुकूल परिस्थिति एवं सुलभ प्राप्त जीवनोपयोगी सामग्रियों के कारण जीवन क्षेत्र में विशेष संघर्ष नहीं करते थे। वे लोग स्वभावतः पूर्वजन्म के संस्कार से सदाचारी, नीतिवान थे। उस समय में सामाजिक राष्ट्रीय संगठन भी नहीं था।

(1) सहज प्राप्त जीवनोपयोगी सामग्रियों के कारण (2) सामाजिक राष्ट्रीय आदि संगठन के अभाव के कारण (3) स्वाभाविक नैतिक एवं सदाचार के कारण (4) जीवन क्षेत्र में विभिन्न संघर्षों के अभाव के कारण भोगभूमि काल में दूसरों से प्राप्त शिक्षा की विशेष आवश्यकता न होना स्वभाविक भी था।

कर्मभूमि प्रवेश के प्राथमिक चरण में भोगभूमि की समस्त परिस्थिति परिवर्तित हो चली। उस समय में काल, परिस्थिति परिवर्तन के साथ-साथ सहज प्राप्त जीवनोपयोगी सामग्री हास होती चली। मनुष्य को सहज प्राप्त विद्या, सरलता, नम्रता, नैतिकता, क्रमशः हास होती चली। स्वतंत्रता पूर्ण, व्यक्तिगत जीवन समाप्त होकर सामाजिक जीवन क्रमशः वृद्धिंगत हो रहा था। इस परिस्थिति में मनुष्य को नैतिक, सदाचारी, ज्ञानी, संगठन प्रिय एवं युगानुकूल आगे अग्रसर होने के लिए शिक्षा की आवश्यकता नितान्त अनिवार्य थी। उस काल के इस भूखण्ड के महाज्ञानी, दूर दृष्टि सम्पन्न ऋषभदेव ने उपरोक्त दृष्टिकोण को लेकर शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार करने के लिए अपने घर (या परिवार) से ही प्रारम्भ किया। क्योंकि व्यक्ति से, परिवार से, समाज से, राष्ट्र का निर्माण होता है। इसलिए व्यक्ति तथा परिवार को शिक्षित, सभ्य, नैतिक बनाना ही समाज एवं राष्ट्र को शिक्षित नैतिक बनाना है।

आदिनाथ की दो पुत्रियाँ एवं सौ पुत्र थे। जब ब्राह्मी एवं सुन्दरी शैशव अवस्था को अतिक्रम करके कुमारी अवस्था में पदापर्ण कर रही थीं। तब ऋषभदेव ने दोनों को शिक्षा प्राप्त करने के लिये योग्य पात्र समझकर दोनों को विद्या शिक्षा प्रदान की। ब्राह्मी कुमारी को आदिनाथ ने ‘अ, आ’ आदि स्वर

व्यंजनात्मक वर्णमाला की पद्धति सिखाकर अक्षर विद्या सिखलायी। सुन्दरी को 1, 2 आदि संख्या के माध्यम से अंक विद्या सिखलायी। इसी प्रकार अत्यन्त ही प्राचीन काल से स्त्री शिक्षा के साथ-साथ अंकाक्षर विद्या प्रारम्भ हुई। वह काल आधुनिक भाषा में कहने पर प्रागऐतिहासिक काल होगा जो कि ईसा पूर्व अनेक अरबों, खरबों वर्ष पहले है। कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि अंकाक्षर विद्या कुछ हजार वर्ष पहले प्रारम्भ हुई। परन्तु जैन, बौद्ध, हिन्दू आदि वाङ्मय के अध्ययन से सिद्ध होता है कि अंकाक्षर विद्या का प्रारम्भ अत्यन्त ही प्राचीन काल में हुआ है।

लिपि के बारे में आधुनिक मत

वर्तमान संसार में प्रायः चार सौ प्रधान लिपियाँ प्रचलित हैं। आधुनिक विद्वानों के मतानुसार ईसा पू. 10वीं सदी में वर्णमालात्मक लिपियाँ प्रारम्भ हुई। आधुनिक विद्वानों का मत है कि 25,000 वर्ष पूर्व 'क्रो. मेगनाल' मानव गुहा में रहते थे एवं गुफा की दिवारों में चित्र बनाते थे। इस चित्र के माध्यम से ही लिपियों का प्रारम्भिक सूत्रपात हुआ। 10,000 वर्ष पहले सभ्य मानव का विकास हुआ। एशिया के पश्चिमी तट पर ईसा पूर्व 2000 में 'सेमेटिक' भाषा परिवार की एक अक्षरमालात्मक लिपि उत्पन्न हुई जो कि प्राचीनतम लिपि है। 1000 वर्ष ईसा पूर्व में व्यंजनात्मक या वर्ण मालात्मक लिपि रूप 'सेमेटिक लिपि' परिवर्तित हो जाती है। प्राचीन 'सुमेरी लिपि' परिवर्तित होकर ईसा पूर्व 800 में ब्राह्मी लिपि रूप में परिवर्तित हुई। इस ब्राह्मी लिपि से ही पूर्ण भारतीय एवं तिब्बती सिंहली आदि लिपियाँ उत्पन्न हुई। आधुनिक विज्ञान के मतानुसार सर्वप्रथम चित्रलिपि हुई। उसके उपरान्त लिपि क्रम विकसित होकर भाव चित्रलिपि में परिणमन हुए। काल-क्रम से परिवर्तित संवर्द्धित होकर भाव चित्रलिपि ध्वनि संकेत रूप में परिणमित हो गई। अनेक काल परिवर्तन के बाद ध्वनि संकेत में जो विशेष परिवर्तित रूप हुआ, वह अक्षरात्मक लिपि है। यह अक्षरात्मक लिपि ही सभ्य भाषा के लिए बीज स्वरूप है। समस्त साहित्यरूपी विशाल भवन इस अक्षरात्मक ईंट से निर्मित हुआ है। यह अकारात्मक लिपि ही संयुक्त होकर अंतिम विकसित लिपि वर्णमालात्मक लिपि में परिवर्तित हो जाती है।

लिपि निर्माता

हिन्दू धर्म की अपेक्षा 'ब्रह्मा' ब्राह्मी लिपि का निर्माता है। प्राचीन मिस्र की अपेक्षा 'थोत् देव' लिपि का निर्माता है। बेबोलीन की अपेक्षा 'नेवो देवता' लिपि का निर्माता है। प्राचीन यूदी धर्म की अपेक्षा पैगम्बर 'मूसा' लिपि का निर्माता था। इस्लाम धर्म की अपेक्षा 'अल्लाह' ने लिपि निर्माण करके आदम को समर्पण किया था। यूनानी लोग 'हेर्मेस' को लिपि का निर्माता मानते हैं। जैन धर्म की अपेक्षा आदिनाथ, आदिब्रह्मा, ऋषभदेव ने लिपि की शिक्षा पहले ब्राह्मी कुमारी को दी थी।

हीरागना जापानी लिपि का जनक बौद्ध भिक्षु 'कोवो दैशी' कवि था। उसने ९वीं शताब्दी में इस लिपि का निर्माण किया था। इस लिपि में प्रथम 3 अक्षर इ-रो-हा होने से इस लिपि को 'इरोहा' अक्षरमाला कहते हैं। इस अक्षरमाला के ये सारे अक्षर अपुनरावृत्ति से रखने से एक बौद्ध दर्शन को प्रगट करते हैं, इसका अर्थ -

इस क्षणिक संसार में सभी कुछ अनित्य है।

इसके मायाजाल तथा दिखावे से मैं बचना चाहता हूँ।

सिंहल में अशोक के ब्राह्मी लिपि का शिलालेख मिला है। आश्वर्य की बात यह है कि ब्राह्मी लिपि का प्रचार पश्चिम बोर्नियो तक हुआ है। पश्चिमी बोर्नियो में कयुअस नदी के किनारे सुंगेइते कार से पास के चश्मों के समीप एक चट्टान पर उत्कीर्ण मूर्तियों के पास सात शिलालेख मिले हैं। उसमें लिखा हुआ है कि-

अज्ञानाच्छ्रीयते कर्म जन्मनः कर्म कारणम्।

ज्ञानान् क्रियते कर्म कर्माभावान् जायते ॥

उपरोक्त आधुनिक शोध से एवं प्राचीन साहित्यों के मंथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रचलित सम्पूर्ण वर्णमालात्मक लिपि में ब्राह्मी लिपि सबसे प्राचीनतम लिपि है। लिपि विद्या से ही मानवीय संस्कृत एवं सभ्यता विशेष उन्नत हुई है।

आधुनिक गणितज्ञ एवं विद्वान् लोग मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं कि अनेक विद्या एवं गणित का प्रारम्भ सर्वप्रथम भारत में हुआ था। शून्य एवं 1, 2, 3 आदि 9 ईकाई संख्याओं का आविष्कार भारत में हुआ था। इटली, ग्रीक आदि देशों में चित्र, संकेत लिपि में संख्या एवं गणित विद्या का प्रचलन

युग निर्माता : ऋषभदेव

था। भारतीय पञ्चत के अनुसार जिस बृहत्तम संख्या को आधा लाईन में लिख सकते हैं उसको इटेलियन के अनुसार लिखने पर आठ-दश लाईन अथवा आधा-एक पृष्ठ लगेगा।

सर्वप्रथम वाङ्मयारंभ एवं उसका स्वरूप

न विना वाङ्मयात् किंचिदस्ति शास्त्रं कलापि वा ।
ततो वाङ्मयमेवादौ वेधास्ताभ्यामुपादिशत् ॥ 109 ॥

आ.पु. पूर्व 12 पृ. 256

वाङ्मय के बिना न तो कोई शास्त्र है और न कोई कला है इसलिये भगवान् वृषभदेव ने सबसे पहले उन पुत्रियों के लिये वाङ्मय का उपदेश दिया था।

अत्यन्त बुद्धिमती उन कन्याओं ने सरस्वती देवी के समान अपने पिता के मुख से संशय, विषय आदि दोषों से रहित शब्द तथा अर्थ रूप समस्त वाङ्मय का अध्ययन किया था।

पदविद्यामधिच्छन्दोविचितिं वागलंकृतिम् ।
त्रयीं समुदितामेतां तद्विदो वाङ्मयं विदुः ॥ 111 ॥

वाङ्मय के जानने वाले गणधरादि देव व्याकरणशास्त्र, छन्दशास्त्र और अलंकार शास्त्र इन तीनों के समूह को वाङ्मय कहते हैं।

तदा स्वायंभुवं नाम पदशास्त्रमभूत महत् ।
यत्तत्परशताध्यायैरतिगम्भीरमव्यिवृत् ॥ 112 ॥

उस समय स्वयंभू अर्थात् भगवान् वृषभदेव का बनाया हुआ एक बहुत भारी व्याकरण शास्त्र प्रसिद्ध हुआ था उसमें सौ से भी अधिक अध्याय थे और वह समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर था।

छन्दोविचितिमध्येवं नानाध्यायैरूपादिशत् ।
उक्तात्युक्तादिभेदाश्चं षड्विंशतिमदीदूशत् ॥ 113 ॥

इसी प्रकार उन्होंने अनेक अध्यायों में छन्दशास्त्र का भी उपदेश दिया था और उसके उक्ता अत्युक्ता आदि छब्बीस भेद भी दिखलाये थे।

प्रस्तारं नष्टमुदिष्टमेकाद्वित्रिलघुक्रियाम् ।
संख्यामथाघवयोगं च व्याजहार गिरांपतिः ॥ 114 ॥

अनेक विद्याओं के अधिपति भगवान् ने प्रस्तार, नष्ट, उदिष्ट एक-

युग निर्माता : ऋषभदेव

द्वित्रिलघुक्रिया, संख्या और अध्ययोग छन्दशास्त्र के इन छह प्रत्ययों का भी निरूपण किया था।

उपमादीनलंकारास्तन्मार्ग द्वयविस्तरम् ।

दश प्राणानलंकारसंग्रहे विभुरभ्यधात् ॥ 115 ॥

भगवान् ने अलंकारों का संग्रह करते समय अथवा अलंकार संग्रह ग्रन्थ में उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकारों का कथन किया था, उनके शब्दालंकार और अर्थालंकार रूप दो मार्गों का विस्तार के साथ वर्णन किया था और माधुर्य ओज आदि दश प्राण अर्थात् गुणों का भी निरूपण किया था।

अथानन्तर ब्रात्री और सुन्दरी दोनों- पुत्रियों की पदज्ञान (व्याकरण ज्ञान) रूपी दीपिका से प्रकाशित हुई समस्त विद्याएँ और कलाएँ अपने आप ही परिपक्व अवस्था को प्राप्त हो गयी थीं। इस प्रकार गुरु अथवा पिता के अनुग्रह से जिनने समस्त विद्याएँ पढ़ ली हैं ऐसी वे दोनों पुत्रियाँ सरस्वती देवी के अवतार लेने के लिये पात्रता को प्राप्त हुई थीं। वे इतनी अधिक ज्ञानवती हो गयी थीं कि साक्षात् सरस्वती भी उनमें अवतार ले सकती थी।

सर्वप्रथम अर्थशास्त्र, राजनीति आदि की शिक्षा

पुरुष शिक्षा

पुत्राणां च यथाम्नायं विनया दानपूर्णकम् ।

शास्त्राणि व्याजहारैवमा नुपूर्व्या जगदगुरुः ॥ 118 ॥

जगदगुरु भगवान् वृषभदेव ने इसी प्रकारे अपने भरत आदि पुत्रों को भी विनयी बनाकर क्रम से आमनाय के अनुसार अनेक शास्त्र पढ़ाये।

भरतायार्थं शास्त्रं च भरतं च संसंग्रहम् ।

अध्यायैरतिविस्तीर्णः स्फुटीकृत्य जगौ गुरुः ॥ 119 ॥

भगवान् ने भरत पुत्र के लिये अत्यन्त विस्तृत बड़े-बड़े अध्यायों से स्पष्ट कर अर्थशास्त्र और संग्रह (प्रकरण) सहित नृत्यशास्त्र पढ़ाया था।

विभुर्वृषभसेनाय गीतवाद्यार्थं संग्रहम् ।

गंधर्वशास्त्रमाचरव्यौ यत्राध्यायाः परश्शतम् ॥ 120 ॥

स्वामी वृषभदेव ने अपने पुत्र वृषभसेन के लिये जिसमें गाना बजाना

युग निर्माता : ऋषभदेव

आदि अनेक पदार्थों का संग्रह है और जिसमें सौ से भी अधिक अध्याय हैं ऐसे गन्धर्व शास्त्र का व्याख्यान किया था ।

अनन्तविजयायाख्यंद् विद्यां चित्रकलाश्रिताम् ।

नानाध्यायशताकीर्णा साकलाः कलाः ॥ 121 ॥

अनन्त विजय पुत्र के लिये नाना प्रकार कै-सैकड़ों अध्यायों से भरी हुई चित्रकला सम्बन्धी विद्या का उपदेश दिया और लक्ष्मी या शोभा-सहित समस्त कलाओं का निरूपण किया ।

विश्वकर्मतं चास्मै वास्तुविद्यामुपादिशत् ।

अध्यायविस्तरस्तत्र बहुभेदोऽवधारितः ॥ 122 ॥

इसी अनन्तविजय पुत्र के लिये उन्होंने सूत्रधार की विद्या तथा मकान बनाने की विद्या का उपदेश दिया । उस विद्या के प्रतिपादक शास्त्रों में अनेक अध्यायों का विस्तार था तथा उसके अनेक भेद थे ।

कामनीतिमथ स्त्रीणां पुरुषाणां च लक्षणम् ।

आयुर्वेदंधनुर्वेदं तन्त्रं चाश्वेभगोचरम् ॥ 123 ॥

तथा रत्नपरीक्षां च बाहुबल्यारव्यसूनवे ।

व्याचरव्यौ बहुधाम्नातैर ध्यायैरतिविस्तृतैः ॥ 124 ॥

बाहुबली पुत्र के लिये उन्होंने कामनीति, स्त्री-पुरुषों के लक्षण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, घोड़ा-हाथी आदि के लक्षण जानने के तन्त्र और रत्न परीक्षा आदि के शास्त्र अनेक प्रकार के बड़े-बड़े अध्यायों के द्वारा सिखाये ।

किमत्र बहुनोक्तेन शास्त्रं लोकोपकारि यत् ।

तत्सर्वमादिकर्त्तासौस्वाः समन्वशिष्टत् प्रजाः ॥ 125 ॥

इस विषय में अधिक कहने से क्या प्रयोजन है ? संक्षेप में इतना ही बस है कि लोक का उपकार करने वाले जो-जो शास्त्र थे भगवान् आदिनाथ ने वे सब अपने पुत्रों को सिखाये थे ।

जिस प्रकार स्वभाव से देवीप्यमान रहने वाले सूर्य का तेज शरदक्रतु के आने पर और भी अधिक हो जाता है उसी प्रकार जिन्होंने अपनी समस्त विद्याएँ प्रकाशित कर दी हैं ऐसे भगवान् ऋषभदेव का तेज उस समय बड़ा अद्भुत हो रहा था ।

युग निर्माता : ऋषभदेव

जिन्होंने समस्त विद्याएँ पा ली हैं ऐसे पुत्रों से भगवान् वृषभदेव उस समय उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि शरदक्रतु में अधिक कान्ति को प्राप्त होनेवाला सूर्य अपनी किरणों से सुशोभित होता है ।

आदिनाथ के कुमारावस्था का काल

अपने इष्ठ पुत्र और इष्ट स्त्रियों से घिरे हुए भगवान् ऋषभदेव का बहुत भारी समय निरन्तर अनेक प्रकार के दिव्य भोग भोगते हुए व्यतीत हो गया ।

ततः कुमारकालोऽस्य कलितो मुनिसत्तमैः ।

विंशतिः पूर्वलक्षणां पूर्यते स्म महाधियः ॥ 129 ॥

आ. पु. पर्व 16

इस प्रकार अनेक प्रकार के भोगों का अनुभव करते हुए भगवान् का बीस लाख पूर्व वर्षों का कुमार काल पूर्ण हुआ था ऐसी उत्तम मुनि गणधरदेव ने गणना की है ।

प्राचीनकाल में मनुष्यों की आयु सुदीर्घ होने के कारण कुमारकाल भी सुदीर्घ होता था । उत्तम भोगभूमिज की तीन पल्य, मध्यम भोग-भूमिज की दो पल्य, जघन्य भोगभूमिज की एक पल्य प्रमाणित आयु थी । यह आयु उत्तरोत्तर घटती गयी । आदिनाथ भगवान् के जघन्य भोगभूमि के अन्तिम समय में जन्म लिया था । उनकी आयु 84 लाख पूर्व वर्ष की थी । इस आयु के अनुपात से भगवान् का कुमार काल 20 लाख पूर्व वर्ष का था । तीर्थकर आदि शलाका महापुरुष विशिष्ट पुण्यशाली होने के कारण सम्पूर्ण जीवन में उनकी शरीर की अवस्था कुमार काल की अवस्था के बराबर रहती है । सिर में केवल सुन्दरता के लिए केश होते हैं, परन्तु उनकी दाढ़ी-मूळ नहीं होती है । विशिष्ट सातिशय पुण्य के कारण उनकी शरीर की संरचना अत्यन्त सुन्दर, संगठित, दृढ़, समुचतुरस्त संस्थान होती है । वे आहार करते हैं, परन्तु निहार (मल मूत्र त्याग) नहीं करते हैं । विश्व में सबसे अधिक पुण्यशाली तीर्थकर होने के कारण उनको कभी भी जीवन भर रोगादि नहीं होता है ।

साधारणतः देखा जाता है जो विशेष दुःखी, सन्तापी, पापी, भय, चिन्ता, रोगादि युक्त होते हैं वे शीघ्र ही वृद्ध जैसे भासित होते हैं । जो उपर्युक्त दुःख आदि से रहित होते हैं वे भी प्रायः चिरकाल तक स्वस्थ युवक जैसे भासित होते हैं ।

नमस्कार करने लगी ।

अथानन्तर अनादि से नष्ट होने से जिसे अनेक प्रकार के भय उत्पन्न हो रहे हैं और जो सबको शरण देने वाले भगवान् की शरण को प्राप्त हुई है ऐसी प्रजा सनातन भगवान् के समीप जाकर इस प्रकार निवेदन करने लगी कि....

हे देव ! हम लोग जीविका प्राप्त करने की इच्छा से आपकी शरण में आये हुए हैं इसलिए हे तीन लोक के स्वामी ! आप उसके उपाय दिखलाकर हम लोगों की रक्षा कीजिए ।

हे विभो ! जो कल्पवृक्ष हमारे पिता के समान थे- पिता के समान ही हम लोगों की रक्षा करते थे वे सब मूल सहित नष्ट हो गये हैं और जो धान्य बिना बोये ही उत्पन्न होते थे वे भी अब नहीं फलते हैं ।

हे देव ! बढ़ती हुई भूख-प्यास आदि की बाधाएँ हमें दुःखी कर रही हैं । अन्न पानी से रहित हुए हम लोग अब एक क्षण भी जीवित रहने में समर्थ नहीं हैं ।

शीतातपमहावातप्रवर्षेपप्लवश्च नः ॥

निराश्रयान्दुनोत्पद्य ब्रू हि नस्तत्प्रतिक्रियाम् ॥ 139 ॥

हे देव ! शीत, आताप, महावायु और वर्षा आदि का उपद्रव आश्रय रहित हम लोगों को दुःखी कर रहा है इसीलिये आप इन सबके दूर करने का उपाय कहिए ।

हे विभो ! आप इस युग के आदि कर्ता हैं और कल्पवृक्ष के समान उन्नत हैं, आपके आश्रित हुए हम लोग भय के स्थान कैसे हो सकते हैं ?

इसलिए हे देव ! जिस प्रकार हम लोगों की आजीविका निरुपद्रव हो जाये, आज उसी प्रकार उपदेश देने का प्रयत्न कीजिए और हम लोगों पर प्रसन्न होजिए ।

प्रजाओं के दुःख दूर करने के लिए ऋषभदेव का उपाय

इस प्रकार प्रजाजनों के दीन वचन सुनकर जिनका हृदय दया से प्रेरित हो रहा है ऐसे भगवान् आदिनाथ अपने मन में ऐसा विचार करने लगे कि

पूर्वपरविदेहेषु या स्थितिः समवस्थिता ॥

साद्य प्रवर्तनीयात्र ततो जीवन्त्यमू प्रजा ॥ 143 ॥

पूर्व और पश्चिम विदेह – क्षेत्र मे जो स्थिति वर्तमान है वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है उसी से यह प्रजा जीवित रह सकती है।

षट्कर्माणि यथा तत्र यथा वर्णश्रमस्थिति ।

यथा ग्रामगृहादीनां संस्त्याश्च पृथग्विधाः ॥ 144 ॥

वहाँ जिस प्रकार असि, मसि आदि छह कर्म हैं जैसी क्षत्रिय आदि वर्णों की स्थिति है और जैसी ग्राम-घर आदि की पृथक्-पृथक् रचना है उसी प्रकार यहाँ पर भी होनी चाहिए।

तथात्राप्युचिता वृत्तिरूपायैरेभिरङ्ग्नाम् ।

नोपायान्तरमस्त्येषां प्राणिनां जीविकां प्रति ॥ 145 ॥

इन्हीं उपायों से प्राणियों की आजीविका चल सकती है। इनकी आजीविका के लिए और कोई उपाय नहीं है।

कर्मभूर्य जातेयं व्यतीतौ कल्पभूरुहाम् ।

ततोऽत्र कर्मभिः षड्भिः प्रजानां जीविकोचिता ॥ 146 ॥

कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर अब यह कर्मभूमि प्रकट हुई है, इसलिए यहाँ प्रजा को असि-मसि आदि छह कर्मों के द्वारा ही आजीविका करना उचित है।

इस प्रकार स्वामी वृषभदेव ने क्षणभर प्रजा के कल्याण करने वाली आजीविका का उपाय सोचकर उसे बार-बार आश्वासन दिया कि तुम भयभीत मत होओ।

विभिन्न देशों की स्थापना

अथानन्तर भगवान् के स्मरण करने मात्र से देवों के साथ इन्द्र आया और उसने नीचे लिखे अनुसार विभाग कर प्रजा की जीविका के उपाय किये।

शुभे दिने सुनक्षत्रे सुमुहूर्ते शुभोदये ।

स्वोच्चस्थेषु ग्रहेष्वच्चैरानुकूल्ये जगदगुरोः ॥ 149 ॥

कृतप्रथममाङ्गल्ये सुरेन्द्रो जिनमन्दिरम् ।

न्यवेशयत् पुरस्यास्य मध्ये दिक्षवप्यनुक्रमात् ॥ 150 ॥

शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न के समय तथा सूर्य आदि ग्रहों के अपने-अपने स्थानों में स्थित रहने और जगदगुरु भगवान के हर एक प्रकार की अनुकृतता होने पर इन्द्र ने प्रथम ही मांगलिक कार्य किया और

फिर उसी अयोध्यापुरी के बीच में जिनमन्दिर की रचना की। इसके बाद पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर इस प्रकार चारों दिशाओं में भी यथाक्रम से जिनमन्दिरों की रचना की।

कोसलादीन् महादेशान् साकेतादिपुराणि च ।

सारामसीमनिगमान् खेटादींश्च न्यवेशयत् ॥ 151 ॥

तदनन्तर कौशल आदि महादेश, अयोध्या आदि नगर, वन और सीमासहित गाँव तथा खेड़ों आदि की रचना की थी।

देशाः सुकोसलावन्तीपुण्ड्रो ग्राशमकरम्यकाः ।

कुरुकाशीकलङ्गाङ्गवङ्गसुह्याः समुद्रकाः ॥ 152 ॥

काश्मीरोशीनरानर्त्त वत्सपञ्चालमालवाः ।

दशार्णाः कच्छमगधा विदर्भाः कुरुजाङ्गलम् ॥ 153 ॥

करहाटमहाराष्ट्रसुराष्ट्रभीर कोङ्गणाः ।

वनवासान्धकर्णाटकोसलाश्चोलकेरलाः ॥ 154 ॥

दार्वाभिसारसौवीर शूरसेनापरान्तकाः ।

विदेहसिन्धुगान्धारपवनाश्चेदिपल्लवाः ॥ 155 ॥

काम्बोजा रट्टबाह्लीकतुरष्कशककेकयाः ।

निवेशितास्तथान्येऽपि विभक्ता विषयास्तदा ॥ 156 ॥

सुकोशल, अवन्ती, पुण्ड्र, उण्ड्र, अश्मक, रम्यक, कुरु, काशी, कलिंग, अंग, वंग, सुह्य, समुद्रक, काश्मीर, उशीनर, आनर्त, वत्स, पंचाल, मालव, दशार्ण, कच्छ, मगध, विदर्भ, कुरुजांगल, करहाट, महाराष्ट्र, सुराष्ट्र, आभीर, कोकण, वनवास, आन्ध्र, कर्णाट, कोशल, चोल, केरल, दारू अभिसार, सौवीर, शूरसेन, अपरान्तक, विदेह, सिन्धु, गान्धार, यवन, चैदि, पल्लव, काम्बोज, आरह, वाह्लीक, तुरुष्क, शक और केकय इन देशों की रचना की तथा इनके सिवाय उस समय और भी अनेक देशों का विभाग किया।

अदेवमातृकाः केचिद् विषया देवमातृकाः ।

परे साधारणाः केचिद् यथास्वं ते निवेशिताः ॥ 157 ॥

इन्द्र ने उन देशों में से कितने ही देश यथासम्भव रूप से अदेवमातृका अर्थात् नदी-नहरों आदि से सींचे जाने वाले, कितने ही देश देवमातृका अर्थात्

युग निर्माता : ऋषभदेव

वर्षा के जल से सींचे जाने वाले और कितने ही देश साधारण अर्थात् दोनों से सींचे जाने वाले निर्माण किये थे।

जो पहले नहीं थे नवीन ही प्रकट हुए थे ऐसे देशों से वह पृथ्वीतल ऐसा सुशोभित होता था मानो कौतुकवश स्वर्ग के टुकड़े ही आये हों।

देशैः साधारणानूपजाङ्गलैस्तेस्तना मही ।

रेजे रजतभूभर्तुरारादा च पयोनिधेः ॥ 159 ॥

विजयार्थ पर्वत के समीप से लेकर समुद्र पर्यन्त कितने ही देश साधारण थे, कितने ही बहुत जलवाले थे और कितने ही जल की दुर्लभता से सहित थे, उन देशों से व्याप्त हुई पृथ्वी भारी सुशोभित होती थी।

सुरक्षोपाय एवं किले निर्माण

जिस प्रकार स्वर्ग के धारों-स्थानों की सीमाओं पर लोकपाल देवों के स्थान होते हैं उसी प्रकार उन देशों की अन्त सीमाओं पर भी सब ओर अन्तपाल अर्थात् सीमारक्षक पुरुषों के किले बने हुये थे।

तदन्तरालदेशाश्च बभूवुरनुरक्षिताः ।

लुब्धकारण्यचरकं पुलिन्दशबरादिभिः ॥ 161 ॥

उन देशों के मध्य में और भी अनेक देश थे जो लुब्धक, आरण्य, चरट, पुलिन्द, शबर आदि मूलेच्छ जाति के लोगों द्वारा रक्षित रहते थे।

राजधानी निर्माण

मध्ये जनपदं रेजु राजधान्यः परिष्कृताः ।

वप्रप्राकारपरिखागोपुराहालकादिभिः ॥ 162 ॥

उन देशों में मध्यभाग में कोट, प्राकार, परिखा, गोपुर और अटारी आदि से शोभायमान राजधानी सुशोभित हो रही थी।

ग्राम नगरादि के निर्माण

तानि स्थानीयसंज्ञानि दुर्गाण्यावृत्य सर्वतः ।

ग्रामादीनां निवेशोऽभूद् यथाभिहितलक्ष्मणाम् ॥ 163 ॥

जिनका दूसरा नाम स्थानीय है ऐसे राजधानी रूपी किले को घेरकर सब और शास्त्रोक्त लक्षण वाले गाँवों आदि की रचना हुई थी।

युग निर्माता : ऋषभदेव

यामावृत्तिपरिक्षेपमात्राः स्युरुचिता श्रयाः ।

शूद्रकर्षक भूयिष्ठाः सारामाः सजलाशया ॥ 164 ॥

जिसमें बाड़ से घेरे हुए घर हों, जिनमें अधिकतर शूद्र और किसान लोग रहते हों तथा जो बगीचा और तालाबों से सहित हों उन्हें ग्राम कहते हैं।

ग्रामाः कुलशतेनेष्टो निकृष्ट समाधिष्ठितः ।

परस्तत्पञ्च शत्या स्यात् सुसमद्वक्षीवलः ॥ 165 ॥

जिसमें सौ घर हों उसे निकृष्ट अर्थात् छोटा गाँव कहते हैं तथा जिसमें पाँच सौ घर हों और जिसके किसान धनसम्पन्न हों उसे बड़ा गाँव कहते हैं।

क्रोशद्विकोशसीमानो ग्रामाः स्युरधमोत्तमाः ।

सम्पन्नसस्यसुश्रेत्राः प्रभूतयवसोदकाः ॥ 166 ॥

छोटे गाँवों की सीमा एक कोस और बड़े गाँवों की सीमा दो कोस की होती है। इन गाँवों के धान के खेत सदा सम्पन्न रहते हैं और इनमें घास तथा जल भी अधिक रहता है।

सरिदिगिरिदरी गृष्टिक्षीरकण्टकशारिवनः ।

वनानि सेतवश्चेति तेषां सीमोपलक्षणम् ॥ 167 ॥

नदी, पहाड़, गुफा, शमशान, क्षीरवृक्ष, अर्थात् थूवर आदि के वृक्ष, बबूल आदि कंटीले वृक्ष, वन और पुल ये सब उन गाँवों की सीमा के चिन्ह कहलाते हैं अर्थात् नदी आदि से गाँवों की सीमा का विभाग किया जाता है।

तत्कर्तृभोक्तृनियमो योगक्षेमानुचिन्तनम् ।

विष्टिदण्डकराणां च निबन्धो राजसाद्ववेत् ॥ 168 ॥

गाँवों के बसाने और उपभोग करने वालों के योग्य नियम बनाना, नवीन वस्तु के बनाने और पुरानी वस्तु की रक्षा करने के उपाय, वहाँ के लोगों से बैगार कराना, अपराधियों को दण्ड करना तथा जनता से कर वसूलना आदि कार्य राजाओं के अधीन रहते थे।

नगर

परिखागोपुराहालवप्रप्राकारमण्डिततम् ।

नानाभवनविन्यास सोद्यानं सजलाशयम् ॥ 169 ॥

पुरमेवंविधं शस्तमुचितोदेशसुस्थितम् ।

पूर्वोत्तरपल्लववाभस्कं प्रधानपुरुषोचितम् ॥ 170 ॥

जो परिखा, गोपुर, अटारी, कोट और प्राकार से सुशोभित हो, जिसमें अनेक भवन बने हुए हों, जो बगीचे और तालाबों से सहित हों, जो उत्तम रीति से अच्छे स्थान पर बसा हुआ हो, जिसमें पानी का प्रवाह पूर्व और उत्तर के बीच वाली ईशान दिशा की ओर हो तथा जो प्रधान पुरुषों के रहने के योग्य हो वह प्रशंसनीय पुर अथवा नगर कहलाता है।

खर्वट

सरिदिगिरिभ्यां संरूद्धं खेटमाहुर्मनीषिणः ।
केवलं गिरिसंरूद्धं खर्वटं तत्प्रचक्षते ॥ 171 ॥

जो नगर नदी और पर्वत से घिरा हुआ हो उसे बुद्धिमान पुरुष खेट कहते हैं और जो केवल पर्वत से घिरा हो उसे खर्वट कहते हैं।

पत्तन

मडम्बमासेनन्ति ज्ञाः पञ्चग्रामशतीवृत्तम् ।
पत्तनं तत्समुद्रान्ते यन्नौभिरवतीर्यते ॥ 172 ॥

जो पाँच सौ गाँवों से घिरा हो उसे पण्डितजन मडम्ब मानते हैं और जो समुद्र के किनारे हो तथा जहाँ पर लोग नावों के द्वारा उत्तरते (आते-जाते) हैं उसे पत्तन कहते हैं।

संवाह

भवेद् द्रोणमुखं नामा निमग्नातटमाञ्चितम् ।
संवाहस्तु शिरोव्यूढ़ धान्यसंचय इप्यते ॥ 173 ॥

जो किसी नदी के किनारे पर हो उसे द्रोणमुख कहते हैं और जहाँ मस्तकपर्यन्त ऊँचे-ऊँचे धान्य के ढेर लगे हों वह संवाह कहलाता है।

पुटभेदनभेदानाभमीषां च क्वचित्क्वचित् ।
संनिवेशोऽभवत् पृथव्यां यथोदेशभितोऽमुतः ॥ 174 ॥

इस प्रकार पृथ्वी पर जहाँ-तहाँ अपने योग्य स्थानों के अनुसार कहीं-कहीं पर ऊपर कहे हुए गाँव, नगर आदि की रचना हुई थी।

शतान्यष्टौ च चत्वारि द्वे च स्युर्गमसंख्या ।
राजधान्यास्तथा द्रोणमुखखर्वटयोः क्रमात् ॥ 175 ॥

दशग्राम्यास्तु मध्ये यो महान् ग्रामः स संग्रहः ।

तथा घोषकरादीनामपि लक्ष्म विकल्प्यंताम् ॥ 176 ॥

एक राजधानी में आठ सौ गाँव होते हैं, एक द्रोणमुख में चार सौ गाँव होते हैं और एक खर्वट में दो सौ गाँव होते हैं। दस गाँवों के बीच जो एक बड़ा भारी गाँव होता है उसे संग्रह (जहाँ पर एक वस्तुओं का संग्रह रखा जाता है) कहते हैं। इसी प्रकार घोष तथा आकार आदि के लक्षणों की कल्पना कर लेनी चाहिए अर्थात् जहाँ पर बहुत घोष (अहीर) रहते हैं उसे घोष कहते हैं और जहाँ पर सोने चाँदी आदि की खान हुआ करती है उसे आकर कहते हैं।

पुरां विभागमित्युच्चैः कुर्वन् गीर्वाणनायकः ।

तथा पुरन्दरख्यातिमगादन्वर्थतां गताम् ॥ 177 ॥

इस प्रकार इन्द्र ने बडे अच्छे ढंग से नगर, गाँवों आदि का विभाग किया था इसलिए वह उसी समय से पुरन्दर इस सार्थक नाम को प्राप्त हुआ था।

तदनन्तर इन्द्र भगवान् की आज्ञा से इन नगर, गाँव आदि स्थानों में प्रजा को बसाकर कृतकृत्य होता हुआ प्रभु की आज्ञा लेकर स्वर्ग को चला गया।

सामाजिक व्यवस्था

यथास्वं स्वोचितं कर्म प्रजा दधुरसंकरम् ।

विवाहजातिसंबन्धव्यवहारश्च तन्मतम् ॥ 187 ॥

उस समय प्रजा अपने-अपने योग्य कर्मों को यथायोग्य रूप से करती थी। अपने वर्ग की निश्चित आजीविका को छोड़कर कोई दूसरी आजीविका नहीं करता था। इसलिये उनके कार्य में कभी संकर (मिलावट) नहीं होता था। उनके विवाह, जाति सम्बन्ध तथा व्यवहार आदि सभी कार्य भगवान् आदिनाथ की आज्ञानुसार होते थे।



अध्याय 4

ऋषभदेव का राज्याभिषेक

कियत्यपि गते काले षट्कर्मविनियोगतः ।
यदा सौस्थित्यमायातः प्रजाः क्षेमूण योजिताः ॥ 191 ॥
तदास्याविरभूद्द्यावापृथिव्योः प्राभवं महत् ।
आधिराज्येऽभिषिक्तस्य सुरागत्य सत्वरम् ॥ 192 ॥

आ.पु. पर्व 16 पृ. 363

इस प्रकार जब कितना ही समय व्यतीत हो गया और छह कर्मों की व्यवस्था से जब प्रजा कुशलता पूर्वक सुख से रहने लगी तब देवों ने आकर शीघ्र ही उनका सम्राट पद पर अभिषेक किया । उस समय उसका प्रभाव स्वर्ग लोक और पृथ्वी लोक में खूब ही प्रकट हो रहा था ।

नृपा मूर्द्धाभिषिक्ता ये नाभिराजपुरस्सराः ।
राजवद्रासिंहोयमभ्यषिच्यत तैस्समम् ॥ 224 ॥

नाभिराज आदि को लेकर जो बड़े-बड़े राजा थे उन सभी ने सब राजाओं में श्रेष्ठ यह ऋषभदेव वास्तव में राजा के योग्य हैं, ऐसा मानकर उनका एक साथ अभिषेक किया था ।

सुस्नातमङ्गलान्युच्चैः पठत्सु सुर वन्दिषु ।
राज्यलक्ष्मीसमुद्घाह स्नानं निर विशद् विभु ॥ 230 ॥

इस प्रकार जब देवों के बन्दी जन उच्च स्वर से शुभ स्नान सूचक मंगल पाठ पढ़ रहे थे तब भगवान् वृषभदेव ने राज्य लक्ष्मी को धारण करने अथवा उसके साथ विवाह करने योग्य स्नान को प्राप्त किया था ।

नाभिराजः स्वहस्तेन मौलिमारोपयत् प्रभोः ।
महाम कुटबद्धानामधिराद् भगवानिति ॥ 232 ॥

महामुकुट बद्ध राजाओं के अधिष्ठित भगवान् वृषभदेव ही हैं, यह कहते हुए महाराज नाभिराज ने अपने मस्तक का मुकुट अपने हाथ से उतारकर भगवान् के मस्तक पर धारण किया था ।

भोगभूमि के समय में भोगभूमिज मनुष्य एवं पशु स्वभावतः अत्यन्त सरल, न्यायप्रिय, नम्र होने के कारण तथा जीवनोपयोगी सामग्री इच्छानुसार पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने के कारण उस समय कोई प्रकार का विशेष अन्याय, अत्याचार नहीं होता था । इसलिए उस समय में प्रत्येक जीव सुखी खावलंबी एवं स्वयं अनुशासित था । इसलिए उस समय तक एक अनुशासन कर्ता एवं अनुशासन प्रणाली की आवश्यकता नहीं थी । परन्तु कर्म भूमि के प्रारम्भ में जीवनोपयोगी सामग्री की कमी होने से तथा स्वभाव में असदाचरण अन्याय अत्याचार का प्रवेश होने के कारण अनुशासन कर्ता एवं विशेष अनुशासन पट्टाति की आवश्यकता हुई । इसलिये एक अनुशासन कर्ता (राजा) की नियुक्ति करना अनिवार्य हो गया । अतः विज्ञ जन-गण एवं देव-गण मिलाकर सर्वगुण सम्पन्न ऋषभदेव का राजा के रूप में चुनाव किया ।

विश्व के भरत-खण्ड सम्बन्धी प्रथम राजा ऋषभदेव हुए । ऋषभदेव ने राजा होकर राजा की सुख-सुविधाओं के लिए पूर्व संस्कारित ज्ञान-विज्ञान अनुभव से एवं तात्कालिक परिस्थिति को लेकर विभिन्न अनुशासन प्रणालियाँ शोध-बोध करके प्रचारित कीं ।

राज पोषाक

जगत् मात्र के बन्धु भगवान् वृषभदेव के ललाट पर पट्टबंध भी रखा जो कि ऐसा मालूम होता था मानों यहाँ-वहाँ भागने वाली चंचल राज्य लक्ष्मी को स्थिर करने वाला एक बंधन ही हो ।

उस समय भगवान् माला पहने हुए थे, उत्तम वस्त्र धारण किये हुए थे, उनके दोनों कानों में कुंडल सुशोभित हो रहे थे । वे मस्तक पर लक्ष्मी के क्रीड़ाचल के समान मुकुट धारण किये हुए थे, कण्ठ में हार लता और कमर में करधनी पहने हुए थे, जिस प्रकार हिमवान् पर्वत गंगा का प्रवाह धारण करता है उसी प्रकार वे भी अपने कंधे पर यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे ।

उनकी दोनों लम्बी भुजाएँ कड़े, बाजूबन्द और अनन्त आदि अभूषणों से विभूषित थीं । उन भुजाओं से भगवान् ऐसे मालूम होते थे, मानो शोभायमान बड़ी-बड़ी शाखाओं से सहित चलता-फिरता कल्पवृक्ष ही हो । उनके चरण नीलमणि के बने हुए नपुरों से सहित थे, इसलिए ऐसे जान पड़ते थे मानो जिन

युग निर्माता : वृषभदेव

पर भ्रमर बैठे हुए हैं ऐसे खिले हुए दो लाल कमल ही हों। इस प्रकार प्रत्येक अंग में पहने हुए आभूषण रूपी सम्पदा से आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेव ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों भूषणांग जाति के कल्पवक्ष हों।

वृषभदेव का राज्यानुशासन

अथानन्तर कर्मभूम की रचना करने वाले भगवान् वृषभदेव ने राज्य पाकर महाराज नाभिराज के समीप ही प्रजा का पालन करने के लिए नीचे लिखे अनुसार प्रयत्न किये।

राज्यानुशासन विभाग

कृत्वादितः प्रजा सर्ग तद् वृत्तिनियमं पुनः ।

स्वधर्मानतिवृत्यैव नियच्छन्नवशात् प्रजाः ॥ 242 ॥

भगवान् ने सबसे पहले राजा की सृष्टि (विभाग आदि) की, फिर उसकी आजीविका के नियम बनाये और फिर वे अपनी-अपनी मर्यादा का उल्लंघन न कर सकें इस प्रकार के नियम बनाये। इस तरह वे प्रजा का शासन करने लगे।

प्रजा का विभाग

क्षत्रियः—

स्वदोर्भ्या धारयन् शस्त्रं क्षत्रियानसृजद् विभुः ।

क्षत्रियाणे नियुक्ता हि क्षत्रियाः शस्त्रपाणयः ॥ 243 ॥

उस समय भगवान् ने अपनी दोनों भुजाओं में शस्त्र धारण कर क्षत्रियों की सृष्टि की थी, अर्थात् उन्हें शस्त्र विद्या का उपदेश दिया था, सो ठीक ही है क्योंकि जो हाथों में हथियार लेकर सबल शत्रुओं के प्रहार से निर्बलों की रक्षा करते हैं वे ही क्षत्रिय कहलाते हैं।

वैश्यः—

ऊरुभ्यां दर्शयन् यात्रामस्तक्षीद् वणिजः प्रभुः ।

जलस्थलादियात्राभिस्तद् वृत्तिवर्त्तया यतः ॥ 244 ॥

तदनन्तर भगवान् ने अपने ऊरुओं से यात्रा दिखलाकर अर्थात् परदेश जाना सिखलाकर वैश्यों की रचना की सो ठीक ही है, क्योंकि जल स्थल आदि प्रदेशों में यात्रा का व्यापार करना ही उनकी मुख्य आजीविका है।

युग निर्माता : वृषभदेव

शूद्रः—

न्यगृत्तिनियतां शूद्रां पदभ्यामेवासृजत् सुधीः ।

वर्णोत्तमेषु शुश्रूषा तद्वृत्तिर्नेकधा स्मृता ॥ 245 ॥

हमेशा नीच (दैत्य) वृत्ति में तत्पर रहने शूद्रों की रचना बुद्धिमान वृषभदेव ने पैरों से ही की थी, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन उत्तम वर्णों की सेवा सुश्रूषा आदि करना ही अनेक प्रकार की आजीविका है।

ब्राह्मणः—

मुखतोऽध्यापयन् शास्त्रं भरतः स्वक्ष्यति द्विजान् ।

अधीत्यध्यापने दानंप्रतिच्छेष्येति तत्क्रियाः ॥ 246 ॥

इस प्रकार तीन वर्णों की सृष्टि तो स्वयं भगवान् वृषभदेव ने की थी, उनके बाद भगवान् वृषभदेव के बड़े पुत्र महाराज भरत के मुख से शास्त्र का अध्ययन कराते हुए ब्राह्मणों की रचना करेंगे, स्वयं पढ़ना, दूसरों को पढ़ाना, दान लेना तथा पूजा यज्ञ आदि कराना उनके कार्य होंगे।

आदिनाथ भगवान् जन्मतः अवधिज्ञान सम्पन्न थे। भोगभूमि के अवसान के बाद कर्मभूमि का आगमन हुआ। भोगभूमि में व्यक्तिनिष्ठ जीवन था। कर्मभूमि में समाजनिष्ठ जीवन प्रारम्भ हुआ। समाज को सुसंगठित एवं उत्साह सहित सुचारू रूप से परिपालन करने के लिए आदिनाथ भगवान् ने अवधिज्ञान से शाश्वतिक कर्मभूमि विदेह की अवस्था को अवगत करके विदेह की व्यवस्था के सदृश इस भूखण्ड में भी विदेह की व्यवस्था प्रारम्भ की। उन्होंने गुण कर्म के अनुसार क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण की स्थापना की। जो दूसरे की रक्षा करते हैं वे क्षत्रिय हुए। जिन्होंने जंघा बल से व्यवसाय आदि कार्य सम्पादन करके समाज की सेवा की वे वैश्य हुए। जिन्होंने समाज उपकारक क्षत्रिय एवं वैश्यों की सुरक्षा के लिए उनकी सेवा की वे शूद्र हुए।

आदिनाथ भगवान् ने सामाजिक, सुसंगठन, परिचालन एवं लौकिक कर्तव्य को सम्पादन करके अलौकिक, आध्यात्मिक उन्नति के लिए जब सर्व सन्यास रूप मुनिव्रत को स्वीकार करके आत्म साधना के माध्यम से जगत् उद्धारक तीर्थकर पदवी को प्राप्त कर ली थी, उस समय उनके ज्येष्ठ पुत्र प्रथम चक्रवर्ती भरत ने गुण, कर्म एवं व्रत सम्पन्न धर्मात्मा व्यक्तियों को ब्राह्मण वर्णरूप में स्थापन किया। जो ब्रह्मा को जानते हैं धर्मानुकूल आचरण करते हैं, तथा

युग निर्माता : ऋषभदेव

धर्मानुकूल आचरण दूसरों को कराते हैं वे ब्राह्मण हुए। इसलिए ब्राह्मण सम्पूर्ण वर्णों में शीलस्थानीय मुख्य हुए।

हिन्दू धर्म में रूपक अलङ्कारीय भाषा में इसका प्रतिपादन किया गया है कि जो ब्रह्म के मुख से उत्पन्न होता है वह ब्राह्मण, जो ऊरुओं से उत्पन्न होता है वह वैश्य और जो पैरों से उत्पन्न होता है वह शूद्र है। यह वर्ण व्यवस्था सामाजिक सुव्यवस्था के लिए गुण, कर्म व्यवसाय के अनुकूल करना हितकर एवं अनिवार्य है।

स्वामिमां वृत्तिमुल्कम्य यस्त्वन्यां वृत्तिमाचरेत्।

स पार्थिवैर्नियन्तव्योवर्णं संकीर्णरन्यथा ॥ 248 ॥

उस समय भगवान् ने यह भी नियम प्रचलित किया था कि जो कोई अपने वर्ण की निश्चित आजीविका छोड़कर दूसरे वर्ण की अजीविका करेगा वह राजा के द्वारा दण्डित किया जायेगा क्योंकि ऐसा न करने से वर्ण संकीर्णता हो जायेगी अर्थात् सब वर्ण एक हो जायेंगे उनका विभाग नहीं हो सकेगा।

कर्म भूमि का कारण

कृष्णादि कर्मषटकं च स्त्रष्टा प्रागेव सृष्टवान् ।

कर्मभूमिरियं तस्मात् तदासीत्तद् व्यवस्थया ॥ 249 ॥

भगवान् आदिनाथ के द्वारा विवाह आदि की व्यवस्था करने के पहले ही असि, मसि, कृषि, सेवा, शिल्प और वाणिज्य इन छः कर्मों की व्यवस्था होने से यह कर्मभूमि कहलाने लगी थी।

भोगभूमि के समय में पूर्वोपार्जित पुण्य कर्मों के उदय से कल्पवृक्ष से सहज प्राप्त जीवनोपयोगी सामग्री अर्जन करने के लिए कोई प्रकार की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु भोगभूमि के अवसान के बाद कर्मभूमि के प्रादुर्भाव से कल्पवृक्ष विलीन होने के कारण जीवनोपयोगी सामग्रियों की उपलब्धि ना होने के कारण प्रजाओं को अनेक कष्टमयी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। उस कष्टमयी परिस्थिति से प्रजाओं की सुरक्षा के लिए कुछ प्रणालियाँ प्रजाओं को सिखाई थीं। इस असि, मषी आदि कर्म के कारण इस युग को कर्मयुग एवं इस भूमि को कर्मभूमि कहने लगे।

युग निर्माता : ऋषभदेव

युग निर्माता : ऋषभदेव

दण्डनीति

स्त्रष्टेति ताः प्रजाः सृष्टा तद्योगक्षेमसाधनम् ।

प्रायुडक्त युक्तितो दण्ड हामाधिककार लक्षणम् ॥ 250 ॥

इस प्रकार ब्रह्म आदिनाथ ने प्रजा का विभाग कर अनेक भोग (नवीन वस्तु की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त हुई वस्तु की रक्षा) की व्यवस्था की रक्षा के लिए युक्ति पूर्वक हा, मा और धिक्कार इन तीन दण्डों की व्यवस्था की थी।

दुष्टानां निग्रहः शिष्टप्रतिपालनमित्यद् ।

न पुरासीत्कमो यस्मात् प्रजाः सर्वा निरागसः ॥ 251 ॥

दुष्ट पुरुषों का निग्रह करना अर्थात् उन्हें दण्ड देना और सज्जन पुरुषों का पालन करना यह क्रम कर्मभूमि से पहले अर्थात् भोगभूमि में नहीं था क्योंकि उस समय पुरुष निरपराध होते थे। किसी प्रकार का अपराध नहीं करते थे।

दण्डनीति की उचितता

प्रजा दण्ड धरा भावे मात्स्यं न्यायं श्रवन्त्यमूः ।

ग्रस्यतेऽन्तः प्रदुष्टेन निर्बलो हि बलीयसा ॥ 252 ॥

कर्मभूमि में दण्ड देने वाले राजा का अभाव होने पर प्रजा मात्स्य न्याय का आश्रय करने लगेगी अर्थात् जिस प्रकार बलवान् मच्छ छोटे मच्छों को खा जाते हैं उसी प्रकार अन्तरंग का दुष्ट बलवान् पुरुष निर्बल पुरुष को निगल जायेगा।

दण्डभीत्या हि लोकोऽयमपथं नानुधावति ।

युक्त दण्ड धरस्तस्मात् पार्थिवः पृथिवीं जयेत् ॥ 253 ॥

यह लोग दण्ड के भय से कुर्मार्ग की ओर नहीं दौड़ेंगे इसलिए दण्ड देने वाले राजा का होना उचित ही है और ऐसा राजा ही पृथिवी को जीत सकता है।

भोगभूमिज मानव स्वभावतः सरल स्वभावी निरपराधी नीतिवान् होने के कारण वे लोग स्वभावतः ही अनीति, अन्याय, दुराचार, शोषण आदि नहीं करते थे इसलिए भोगभूमि में दण्डनीति की कोई प्रकार की आवश्यकता एवं उचितता नहीं थी किन्तु कर्मभूमिज मानव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से प्रेरित होकर अन्याय, अत्याचार, दुराचार तथा अनैतिक कार्य करने लगे। शक्तिशाली मानव दुर्बलों को पीड़ित करने लगे, जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को पीड़ा देती

है तथा खा जाती है। इस अनैतिक उपक्रम को रोकने के लिए एक नीति पूर्ण व्यवस्था वृषभदेव ने विशेष रूप से प्रारम्भ की थी जिसको दण्डनीति कहते हैं। आचार्य गुणभद्र स्वामी आत्मानुशासन में स्पष्ट रूप से दण्डनीति की आवश्यकता स्वीकार करते हुए कहते हैं कि – ‘‘कलौ दण्डो नीतिः’’ कलिकाल की नीति दण्डनीति है और वह दण्डनीति राजाओं के द्वारा प्रचारित, प्रसारित एवं पोषित होती है। योग्य दण्डनीति के अभाव से दुष्ट दुर्जन दोषी जन अधिक ही अन्याय, अत्याचार में प्रवृत्ति करते हैं इसलिए जिस प्रकार रोगी को निरोगी करने के लिए योग्य वैद्य रोगी को कड़वी औषधि देता है, अपथ्य सेवन से दूर रखता है तथा शल्य चिकित्सा भी करता है, इससे भले तात्कालिक रोगी को क्षणिक दुःख कष्ट हो तो भी आगामी काल में रोगी को अधिक सुख की प्राप्ति होती है। उसी प्रकार योग्य नीति से दोषी को दण्ड देने पर उसको तात्कालिक कष्ट हो सकता है किन्तु भविष्यत् में दोषी व प्रजा को अधिक सुख सुविधा प्राप्त होती है।

वर्तमान काल में शारीरिक दण्ड कम करके उसकी (दोषी की) मानसिक धारा को परिवर्तन करके निर्दोषी बनाने के लिए देश-विदेश में मनोवैज्ञानिक पद्धति से दण्ड का प्रयोग किया जा रहा है यह एक उत्तम रीति है। परन्तु कुछ उच्चाधिकारी, न्यायालय के कर्मचारी वर्ग, वकील एवं न्यायाधीश रिश्वत लेकर न्यायी को अन्यायी एवं अन्यायी को न्यायी सिद्ध करते हैं तथा योग्य दण्ड न मिलने के कारण देश-विदेश में अन्याय व अत्याचार दिनों-दिन वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। एक दोषी को योग्य रीति से दण्ड देने पर अन्य-अन्य लोग दोष करने से भयभीत होते हैं जिससे वे दोष नहीं करते हैं तथा दोषी का दोष दूर होता है। इससे समाज, देश, राष्ट्र में शान्ति का साम्राज्य विस्तारित होता है।

कर व्यवस्था

परस्तिन्या यथा क्षीरम द्रोहेणोपजीव्यते ।

प्रजाप्येवं धनं दोह्या नातिपीडाकरैः करैः ॥ 254 ॥

जिस प्रकार दूध देने वाली गाय से उसे बिना किसी प्रकार की पीड़ा पहुँचाये दूध दूहा जाता है और ऐसा करने से वह गाय भी सुखी रहती है तथा दूध दूहने वाले की आजीविका भी चलती रहती है उसी प्रकार राजा को भी

प्रजा से धन वसूल करना चाहिए। वह धन अधिक पीड़ा न देन वाले करों (टेक्सों) से वसूल किया जा सकता है। ऐसा करने से प्रजा भी दुःखी नहीं होती और राज्य व्यवस्था के लिए योग्य धन भी सरलता से मिल जाता है।

प्रशासन चलाने के लिए अर्थ की भी आवश्यकता होती है। देश के नव निर्माण, जलसंचय, व्यवस्था दुष्काल से पीड़ित प्रजा की सहायता, वैदेशिक आक्रमण से देश की सुरक्षा आदि के लिए अर्थ की नितान्त आवश्यकता होती है। कभी-कभी आपातकालीन परिस्थिति में हठात् अधिक अर्थ की आवश्यकता भी हो जाती है इन सब परिस्थितियों के लिए अर्थ संचय राजकोष में नितान्त अनिवार्य है। इसलिए न्यायवान् प्रजापालक राजा प्रजा को बिना कष्ट दिए उनसे कुछ अर्थ स्वीकार करता है जिसको कर कहा जाता है। करों से संचित धन राजा स्वस्वार्थ के लिए खर्च न करता हुआ प्रजा के हित के लिए व्यय करता है। प्रजा के हित के लिए प्रजा से न्याय नीति से प्राप्त धन को कर कहा जाता है। प्रजा से अनीतिपूर्ण अधिक कर लेना प्रजा का रक्तशोषण है। राजस्व से राजा का स्वस्वार्थ के लिए व्यय करना राजनीति एवं धर्मनीति के विरुद्ध है। इसीलिए जो राजा राजस्व को हरण करता है वह भी दण्डनीय है। योग्य कर देना प्रजा का कर्तव्य है। योग्य कर नहीं देने वाली प्रजा भी राजनीति एवं धर्मनीति से विरुद्ध कार्य करने के कारण दण्डनीय है।

राज्य विभाग

ततोदण्डरानेता ननुमेने नृपान् प्रभुः ।

तदायतं हि लोकस्य योगक्षेमानुचिन्तनम् ॥ 255 ॥

इसलिए भगवान् वृषभदेव ने नीचे लिखे हुए पुरुषों को दण्डधर (प्रजा को दण्ड देने वाला) राजा बनाया जो ठीक ही है क्योंकि प्रजा के योग और क्षेम का विचार करना उन राजाओं के ही अधीन होता है।

1. महामण्डलीक राजा की नियुक्ति

समाहूय महाभागान् हर्यकम्पन काश्यपान् ।

सोमप्रभे च संमान्य सत्कृत्य च यथोचितम् ॥ 256 ॥

कृताभिषेचनानेतान् महामण्डलिकान् नृपान् ।

चतुः सहस्रभूनाथपरिवारान् व्याधाद् विभुः ॥ 257 ॥

युग निर्माता : ऋषभदेव

भगवान् ने हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभ इन चार महाभाग्यशाली क्षत्रियों को बुलाकर उनका यथोचित सम्मान और सत्कार किया। तदनन्तर राज्याधिषेक कर उन्हें महामण्डलीक राजा बनाया। ये राजा चार हजार अन्य छोटे राजाओं के अधिपति थे।

2. कुरुवंश का प्रथम राजा

**सोमप्रभः प्रभोरास कुरुराज समाहृयः ।
करुणामधिराजोऽभूत कुरुवंश शिखामणि ॥ 258 ॥**

सोमप्रभ भगवान् से कुरुराजा नाम पाकर कुरुदेश का राजा हुआ और कुरुवंश का शिखामणि कहलाया।

3. हरिवंश का प्रथम राजा

**हरिश्च हरिकान्ताख्यां दधानस्तदनुज्ञया ।
हरिवंशमलं चक्रे श्रीमान् हरिपराक्रमः ॥ 259 ॥**

हरि भगवान की आज्ञा से हरिकान्त नाम को धारण करता हुआ हरिवंश को अलंकृत करने लगा क्योंकि वह श्रीमान् हरिपराक्रम अर्थात् इन्द्र अथवा सिंह के समान पराक्रमी था।

4. नाथवंश का प्रथम राजा

**अकम्पनोऽपि सृष्टीशात् प्राप्त श्रीधर नामकः ।
नाथवंशस्य नेताभूत् प्रसन्ने भुवनेशिनि ॥ 260 ॥**

अकम्पन भी भगवान् से श्रीधर नाम पाकर उनकी प्रसन्नता से नाथवंश का नायक हुआ।

5. उग्रवंश का प्रथम राजा

**काश्यपोऽपि गुरोः प्राप्तमधवाख्यः पतिर्विशाम् ।
उग्रवंशस्य वंश्योऽभूत् किन्नाख्यं स्वामिसम्पदा ॥ 261 ॥**

और काश्यप भी जगद्गुरु भगवान् से मधवा नाम प्राप्त कर उग्रवंश का मुख्य राजा हुआ सो ठीक ही है स्वामी की सम्पदा से क्या नहीं मिलता अर्थात् सब कुछ मिलता है।

अधिराज नियुक्ति

तदाकच्छ महाकच्छ प्रमुखानपि भूभुजः ।
सोऽधिराज पदे देवः स्थापयामास सत्कृतान् ॥ 262 ॥

तदनन्तर भगवान् आदिनाथ ने कच्छ महाकच्छ आदि प्रमुख-प्रमुख राजाओं का सत्कार कर उन्हें अधिराज के पद पर स्थापित किया।

प्रशासन की सुव्यवस्था के लिए बड़े राष्ट्र को अनेक उपविभाग में विभक्त करके उस विभाग का अनुशासन करने के लिए यथायोग्य महामण्डलीक, अधिराज नियुक्त किये। जिस प्रकार वर्तमान काल में देश को अनेक प्रदेश एवं प्रदेश को अनेक जिला में विभक्त किया जाता है।

पहले एक ही क्षत्रिय वंश था। परन्तु ऋषभदेव के समय में विभिन्न राज्यों में राज्याशासन करने वाले प्रधान राजाओं के नाम पर विभिन्न क्षत्रिय वंशों का शुभारम्भ हुआ।

पुत्रों की व्यवस्था

**पुत्रानपि तथा योग्यं वस्तुवाहन संपदा ।
भगवान् संविधत्ते स्म तद्विद्व राज्योऽन्ने फलम् ॥ 263 ॥**

इसी प्रकार भगवान् ने अपने पुत्रों के लिए भी यथायोग्य रूप से महल, सवारी तथा अनेक प्रकार की सम्पत्ति का विभाग कर दिया था सो ठीक ही हैं क्योंकि पुत्र पिता का उत्तराधिकारी है। जिस प्रकार पुत्र का परम कर्तव्य पिता की सेवा करना है उसी प्रकार पुत्र को भी योग्य अधिकार देना पिता का कर्तव्य हो जाता है। नीतिकारों ने कहा है –

**पालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् ।
प्रामेषु षोडशवर्षे पुत्र मित्रमिवाचरेत् ॥**

पुत्र को पाँच वर्ष तक पालन करना चाहिए, दश वर्ष तक सुयोग्य बनाने के लिए योग्य शिक्षा-दीक्षा के लिए ताड़ना करना चाहिए तथा पुत्र सोलह वर्ष का होने के पश्चात् मित्र के समान आचरण करना चाहिए।

योग्य अवसर पर यदि पुत्र को योग्य अधिकार नहीं दिया जाता है तो पुत्र भी पिता के प्रति योग्य कर्तव्य परायण नहीं होता है। इसीलिए वृषभदेव ने योग्य काल देखकर उनकी भी योग्य व्यवस्था की थी।

71

वर्तमान काल में कुछ पिताओं द्वारा योग्य पुत्र को वृद्धावस्था में भी योग्य अधिकार नहीं देने के कारण आधुनिक पुत्र भी पिताओं को योग्य आदर सत्कार समान नहीं देते हैं। जैन कानून में वर्णित है कि विवाहित योग्य पुत्रों को योग्य पैतृक सम्पत्ति देकर अपने पैर पर खड़े होने के लिए उनको स्वतंत्र कर देना चाहिए। जिससे पुत्र जीवन में स्वावलम्बी होकर स्वतंत्र सुखमय जीवन यापन कर सके। योग्य काल में उपरोक्त कार्य सम्पादन करने से पिता पुत्र में स्नेह, सौहार्द्र एवं संगठन रहता है। वर्तमान काल में कुछ पिताओं द्वारा पुत्रों को उपरोक्त अधिकार नहीं देने से पुत्र भी विवाह के अनन्तर कलह करके अलग हो जाते हैं जिससे परिवार में स्नेह, सौहार्द्र, संगठन नहीं रहता है। यदि स्वयं पुत्र उपरोक्त अधिकार नहीं चाहता है तो अलग बात है।

इक्षु रस आविष्कारक

आकनाच्च तदेक्षुणां रस संग्रहणे नृणाम् ।

इक्ष्वाकुरित्य भूद देवो जगतामभि संमतः ॥ 264 ॥

उस समय भगवान् ने मनुष्यों को इक्षु का रस संग्रह करने का उपदेश दिया था। इसलिए जगत के लोग उन्हें इक्ष्वाकु कहने लगे।

भोगभूमि के काल में समस्त खाद्य सामग्री कल्पवृक्षों से प्राप्त होती है, परन्तु अदिनाथ के समय तक कल्पवृक्ष से यथेष्ट खाद्य सामग्री प्राप्त होना दुर्लभ हो गया था। उस समय स्वयं उत्पन्न रसभरित इक्षुदण्ड से रस निकालकर उस रस के प्रयोग का ऋषभदेव ने प्रजा को प्रशिक्षण दिया था इसलिए जगत् के लोगों ने ऋषभदेव के इक्ष्वाकु नाम से सम्बोधित किया। इसलिए ऋषभदेव भगवान् का वंश इक्ष्वाकु क्षत्रिय वंश है।

यावती जगती वृत्तिरपापोपहता च या ।

सा सर्वास्य मतेनासीत् स हि धाता सनातनः ॥ 188 ॥

उस समय संसार में जितने पाप रहित अजीविका के उपाय थे वे सब भगवान् ऋषभदेव की सम्मति में प्राप्त हुए थे सो ठीक ही है क्योंकि सनातन ब्रह्म भगवान् ऋषभदेव ही है।

युग निर्माता आदि ब्रह्मा

युगादिब्रह्माणा तेन यादित्थं स कृतो युगः ।

ततः कृतयुगं नाम्ना तं पुराणविदो विदुः ॥ 189 ॥

चैकिं युग के आदि ब्रह्मा भगवान् वृषभदेव ने इस प्रकार कर्मयुग का प्रारम्भ किया था इसलिए पुराण के जानने वाले उन्हें कृतयुग नाम से जानते हैं।

कर्म युग प्रारम्भ

आषाढ़ मास बहुल प्रतिपद्धिवसे कृति ।

कृत्वा कृत युगारम्भं प्राजापत्यमुपेयिवान् ॥ 190 ॥

कृत कृत्य भगवान् ऋषभदेव आषाढ़ मास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के दिन कृत युग का प्रारम्भ करके प्राजापत्य (प्रजापतिपने) को प्राप्त हुए थे अर्थात् प्रजापति कहलाने लगे।

वस्तुतः: विश्व अनादि अकृत्रिम होने के कारण इसका कर्ता, धर्ता, हर्ता कोई नहीं है, परन्तु भोगभूमि के उपरान्त आदिनाथ भगवान् कर्म भूमि सम्बन्धी समस्त व्यवस्था जन हित के लिए प्रचार-प्रसार करने के कारण आदिनाथ ही व्यवहारनय अपेक्षा आदि ब्रह्मा प्रजापति युग निर्माता कहलाये।

आषाढ़ मास के कृष्ण प्रतिपदा के दिन ऋषभदेव ने कृतयुग (कर्म युग) प्रारम्भ किया था। इसलिए इस दिन को युगादि दिवस वर्षारम्भ कहते हैं।

विधाताविश्वकर्मा च स्त्रष्टा चेत्यादिनामभिः ।

प्रजास्तं व्याहरन्तिस्म जगतां पतिमच्युतम् ॥ 267 ॥

इनके सिवाय तीनों जगत् के स्वामी और विनाश रहित भगवान् को प्रजा 'विधाता' 'विश्वकर्मा' और 'स्त्रष्टा' आदि अनेक नामों से पुकारती थी।

गौः स्वर्गः: स प्रकृष्टात्मा गौतमोऽभिमतः सताम् ।

स तस्मादगतो देवो गौतम श्रुतिमन्बूत ॥ 265 ॥

"गौ" शब्द का अर्थ स्वर्ग है, जो उत्तम स्वर्ग हो उसे सज्जन पुरुष गौतम कहते हैं। भगवान् ऋषभदेव स्वर्गों में सबसे उत्तम सर्वार्थसिद्धि से आये थे इसलिये वे "गौतम" इस नाम को प्राप्त हुए थे।

काश्यमित्युच्यते तेजः काश्यपस्तस्य पालनात् ।

जीवनोपायमननान् मनुः कुलधारोऽप्यसौ ॥ 266 ॥

"काश्य" तेज को कहते हैं, भगवान् वृषभदेव उस तेज के रक्षक थे इसलिए 'काश्यप' कहलाते हैं। उन्होंने प्रजा की आजीविका के उपायों का भी मनन किया था इसलिए वे मनु और कुलकर भी कहलाते थे।

राज्यकाल

त्रिष्णुलक्ष्मा: पूर्वाणां राज्यकालोऽस्य संमितः ।

स तस्य पुत्रपौत्रादिवृत्स्याविदतोऽगमत् ॥ 268 ॥

भगवान् का राज्यकाल 63 लाख पूर्व नियमित था सो उनका वह भारी काल पुत्र-पौत्रों आदि के सुख का अनुभव करते हुए उन्हें इस बात का पता ही नहीं चला कि मुझे राज्य करते समय कितना समय हो गया है ।

महादैदीप्यमान भगवान् ऋषभदेव ने अयोध्या के राज्य सिंहासन पर आसीन होकर पुण्योदय से प्राप्त हुई साप्राज्य लक्ष्मी का सुख से अनुभव किया था ।

इत्थसुरासुरगुरुर्गुरु पुण्य योगाद्

भोगानवितच्चिति तदा सुरलोकनाथे ।

सौख्येरगाद् धृतिमचिन्त्यधृतिः सधीरः

पुण्यार्जने कुरुत यत्प्रतो बुधेन्द्राः ॥ 270 ॥

इस प्रकार सुर और असुरों के गुरु तथा अचिन्त्य धैर्य के धारण करने वाले भगवान् ऋषभदेव को इन्द्र उनके विशाल पुण्य के संयोग से भोगोपभोग की सामग्री भेजता रहता था जिससे वे सुख पूर्वक संतोष को प्राप्त होते रहते थे । इसलिए हे पण्डित जन ! पुण्योपार्जन करने में प्रयत्न करो ।

स श्रीमानिति नित्यभोगनिरतः पुत्रैश्च पौत्रेर्निजै

रासूद्विषयैरूपा हितधृतिः सिंहासनाध्यासितः ।

शक्राक्वेन्दुपुरस्सरैः सुरवैर्यू ढोल्लसच्छासनः ॥ 275 ॥

इस प्रकार जो प्रशस्त लक्ष्मी के स्वामी थे, स्थिर रहने वाले भोगों का अनुभव करते थे, रनेह रखने वाले अपने पुत्र पौत्रों के साथ सन्तोष धारण करते थे । इन्द्र, सूर्य और चन्द्रमा आदि उत्तम-उत्तम देव जिनकी आज्ञा धारण करते थे और जिन पर किसी की आज्ञा नहीं चलती थी ऐसे भगवान् ऋषभदेव सिंहासन पर आसूङ्ह होकर इस समुद्रान्त पृथ्वी पर शासन करते थे ।



अध्याय 5

राजा वृषभदेव का वैराग्य उत्पादक कार्यक्रम

एक दिन सैकड़ों राजाओं से घिरे हुए भगवान् ऋषभदेव विशाल सभा मण्डप के मध्य भाग में सिंहासन पर ऐसे विराजमान थे, जैसे निषध पर्वत के तट भाग पर सूर्य विराजमान होता है । उस प्रकार सिंहासन पर विराजमान भगवान् की सेवा करने के लिये इन्द्र अप्सराओं और देवों के साथ पूजा की सामग्री लेकर वहाँ आया और अपने तेज से उदयाचल के मस्तक पर स्थित सूर्य को जीतता हुआ अपने योग्य सिंहासन पर जा बैठा । भक्ति विभोर इन्द्र ने भगवान् की आराधना करने की इच्छा से उस समय अप्सराओं और गंधर्वों का नृत्य करना प्रारम्भ किया । उस नृत्य ने भगवान् ऋषभदेव के मन को भी अनुरक्त बना दिया था सो ठीक ही है, अत्यन्त शुद्ध स्फटिक मणि भी अन्य पदार्थों के संसर्ग से राग अर्थात् लालिमा धारण करता है ।

(आदि पुराण सप्तदश पर्व)

नीलाञ्जना नृत्य

भगवान् राज्य और भोगों से किस प्रकार विरक्त होंगे । यह विचार कर इन्द्र ने उस समय नृत्य करने के लिए एक ऐसे पात्र को नियुक्त किया जिसकी आयु अत्यन्त क्षीण हो गयी थी । तदनन्तर वह अत्यन्त सुन्दरी नीलाञ्जना नाम की देवी नर्तकी रस, भाव और लय सहित फिरकी लगाती हुई नृत्य कर रही थी कि इन्हें मैं ही आयु रूपी दीपक के क्षय होने से वह क्षण-भर में अदृश्य हो गयी । जिस प्रकार बिजली रूपी लता देखते-देखते क्षण-भर में नष्ट हो जाती है उसी समय प्रभा से चंचल और बिजली के समान उज्ज्वल मूर्ति को धारण करने वाली वह देवी देखते-देखते ही क्षण भर में नष्ट हो गयी थी । उसके नष्ट होते ही इन्द्र ने रस भंग के भय से उस स्थान पर उसी के समान शरीर वाली दूसरी देवी जड़ी कर दी जिससे नृत्य ज्यों का त्वयं चलता रहा ।

यह निश्चय है कि इस असार संसार में सुख का लेश मात्र भी दुर्लभ है

और दुःख का भारी है, फिर भी आर्थर्य है कि मन्द बुद्धि पुरुष उसमें सुख की इच्छा करते हैं।

देखो, यह अत्यन्त मनोहर श्री रूपी यन्त्र (नृत्य करने वाली नीलाञ्जना का शरीर) हमारे साक्षात् देखते ही देखते किस प्रकार नाश को प्राप्त हो गया। बाहर से उज्ज्वल दिखने वाली श्री के रूप को अत्यन्त मनोहर मान कर कामीजन उस पर पड़ते हैं और पड़ते ही पतंगों के समान नष्ट हो जाते हैं— अशुभ कर्मों का बन्ध कर हमेशा के लिये दुःखी हो जाते हैं। इन्द्र ने जो यह कपट नाटक किया है अर्थात् नीलाञ्जना का नृत्य कराया है सो अवश्य ही उस बुद्धिमान ने सोच-विचार कर केवल हमारे बोध कराने के लिए ही ऐसा किया है। जिस प्रकार यह नीलाञ्जना का शरीर क्षण भंगुर था, विनाशशील था इसी प्रकार जीवों के अन्य भोगोपभोगों के पदार्थ भी भंगुर है, अवश्य नष्ट हो जाने वाले हैं और केवल धोखा देने वाले हैं।

इसलिये भार रूप आभरणों से क्या प्रयोजन है, मैल के समान सुगन्धित चंदनादि के लेपन से क्या लाभ है? पागल पुरुष की चेष्टाओं के समान यह नृत्य भी व्यर्थ है और शोक के समान ये गीत भी प्रयोजन रहित है। यदि शरीर की निज की शोभा अच्छी है तो फिर भार स्वरूप इन अलंकारों से क्या हो सकता है, इस रूप को धिक्कार है, इस असार संसार को धिक्कार है, इस राज्य भोग को धिक्कार है और बिजली के समान चंचल इस लक्ष्मी को धिक्कार है। इस प्रकार जिनकी आत्मा विरक्त हो गयी है ऐसे भगवान् ऋषभदेव भोगों से विरक्त हुए और काल लिथ्य को पाकर शीघ्र ही मुक्ति के लिये उद्योग करने लगे। उस समय भगवान् के हृदय में विशुद्धियों ने अपना स्थान बना लिया था और वे ऐसी मालूम होती थीं मानो मुक्ति रूपी लक्ष्मी के द्वारा प्रेरित हुई उसकी सखियाँ ही सामने आ कर उपस्थित हो गयी हों। उस समय भगवान् मुक्ति रूपी अंगना के समागम के लिये अत्यन्त चिन्ता को प्राप्त हो रहे थे, उन्हें यह सारा जगत् शून्य प्रतिभासित हो रहा था।

लौकान्तिक देवों का अनुमोदन

भगवान् ऋषभदेव को बोध उत्पन्न हो गया है अर्थात् वे अब संसार पर विरक्त हो गये हैं। जगद्गुरु भगवान् के अन्तःकरण की समस्त चेष्टाएँ इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से उसी समय जान ली थी। “उसी समय भगवान् को प्रबोध

कराने के लिए और उनके तप कल्याण की पूजा कराने के लिए लौकान्तिक देव ब्रह्म लोक से उत्तरे।’ वे लौकान्तिक देव सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ठ इस तरह आठ प्रकार के हैं। वे सभी देवों में आगे होते हैं। वे पूर्व भव में सम्पूर्ण श्रुतज्ञान का अभ्यास करते हैं। उनकी भावनाएँ शुभ रहती हैं। वे ब्रह्मलोक में अर्थात् पाँचवें स्वर्ग में रहते हैं, सदा शान्त रहते हैं, उनकी लेश्याएँ शुभ होती हैं। वे बड़ी-बड़ी ऋद्धियों को धारण करने वाले होते हैं और ब्रह्म लोक के अन्त में निवास करने के कारण लौकान्तिक इस नाम को प्राप्त हुए।

उन देवों ने प्रथम ही कल्प वृक्ष के फूलों से भगवान् के चरणों की पूजा की और फिर अर्थ से भरे हुए स्तोत्रों से भगवान् की स्तुति करना प्रारम्भ की। हे भगवान्! इस समय जो आपने मोह रूपी शत्रु को जीतने के उद्योग की इच्छा की है उससे स्पष्ट सिद्ध है कि आपने भव्यजीवों के साथ भाईपने का कार्य करने का विचार किया है। अर्थात् भाई की तरह भव्य जीवों की सहायता करने का विचार किया है। हे देव! आप परम ज्योति स्वरूप हैं, हम लोग आपको समस्त कार्यों का उत्तम कारण कहते हैं और हे देव! आप ही अज्ञान रूपी प्रपात से संसार का उद्धार करेंगे। हे देव! आज आपके द्वारा दिखलाये हुये धर्मरूपी तीर्थ को पाकर भव्यजीव इस दुस्तर और भयानक संसार रूपी समुद्र से लीला मात्र में पार हो जायेंगे। हे देव! जिस प्रकार सूर्य की देवीष्यमान किरणें समस्त जगत् को प्रकाशित करती हुई कमलों को प्रफुल्लित करती हैं उसी प्रकार आपके वचनरूपी देवीष्यमान किरणें भी समस्त जगत् को प्रकाशित करती हुई भव्यजीवरूपी कमलों को प्रफुल्लित करेंगी। हे देव! लोग आपको जगत् का पालन करने वाला ब्रह्म कहते हैं, कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाला विजेता मानते हैं, धर्मरूपी तीर्थ के नेता मानते हैं और सबकी रक्षा करने वाले जगद्गुरु मानते हैं। हे देव! यह समस्त जगत् मोहरूपी बड़ी भारी कीचड़ में फँसा हुआ है इसका आप धर्मरूपी हाथ का सहारा देकर शीघ्र ही उद्धार करेंगे। हे देव! आप स्वयंभू हैं। आपने मोक्षमार्ग को स्वयं जान लिया है। आप हम सबको मुक्ति के मार्ग का उपदेश देंगे, इससे सिद्ध होता है कि आपका हृदय बिना कारण ही करुणा से आर्द्ध है। हे भगवान्! आप स्वयं बुद्ध हैं, आप मति-श्रुत और अवधिज्ञान रूपी तीन निर्मल नेत्रों को धारण करने वाले हैं तथा आपने सम्यग्दर्शन,

सम्यग्ज्ञान और सम्प्रक्चारित्र इन तीनों की एकता रूपी मोक्षमार्ग को अपने आप ही जान लिया है, इसलिये आप बुद्ध हैं। हे स्वामिन् ! आप संसार के उपकार के लिये उद्योग कीजिये । ये भव्य-जीव रूपी चातक जीव मेघ के समान आपकी सेवा कर सन्तुष्ट हों । हे देव ! अब आप मोक्ष के लिए उठिए- उद्योग कीजिये, अनेक बार भोगे हुये इन भोगों को रहने दीजिये- छोड़िये क्योंकि जीवों के बार-बार भोगने पर भी इन भोगों के स्वाद में कुछ भी अन्तर नहीं आता नृतनता नहीं आती ।

तप के लिये तैयारियाँ

ततोऽस्य परिनिष्क्रान्ति महाकल्याणसंविधौ ।

महाभिषेकमिन्द्राद्याशचक्रुः क्षीरार्णवाम्बुधिः ॥ 74 ॥

तदनन्तर इन्द्रादिक देवों ने भगवान् के निष्क्रमण अर्थात् तपः कल्याणक करने के लिये क्षीर सागर के जल से महाभिषेक किया ।

अभिषिच्य विभुं देवा भूषयाज्व कुरादृताः ।

दिव्यर्विभूषणौ वैस्त्रैर्माल्यैश्च मलयोद् भवेः ॥ 75 ॥

अभिषेक कर चुकने के बाद देवों ने बड़े आदर के साथ दिव्य आभूषण, वस्त्र, मालायें और मलयागिरि चन्दन से भगवान् का अलंकार किया ।

पुत्रों को राज्य समर्पण

तदनन्तर भगवान् वृषभदेव ने साम्राज्य पद पर अपने बड़े पुत्र भरत का अभिषेक कर इस भारतवर्ष को उनसे सनाथ किया और युवराज पद पर बाहुबली को स्थापित किया । इस प्रकार उस समय यह पृथ्वी उक्त दोनों भाईयों से अधिष्ठित होने के कारण राजन्यती अर्थात् सुयोग्य राजा से सहित हुई थी । भगवान् ने अपने राज्य का भार दोनों ही युवराजों को समर्पित कर दिया था, इसलिये उस समय उनका दीक्षा लेने का उद्योग बिलकुल ही निराकुल हो गया था । उन्हें राज्य संबंधी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं रही थी । मोक्ष की इच्छा करने वाले भगवान् ने संभ्रम, आकुलता से रहित होकर अपने शेष पुत्रों के लिये भी यह पृथ्वी विभक्त कर बाँट दी थी ।

परिनिष्क्रमण

तदनन्तर अक्षर अविनाशी भगवान्, महाराज नाभिराय परिवार के लोगों से पूछकर इन्द्र के द्वारा बनायी हुई सुन्दर सुदर्शन नाम की पालकी पर है । बड़े आदर के साथ इन्द्र ने जिन्हें अपने हाथ का सहारा दिया था । ऐसे भगवान् वृषभदेव दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा के समान पालकी पर आरूढ़ हुये थे । दीक्षा रूपी अंगना के आलिंगन करने का जिनका कौतुक बड़े रहा है, ऐसे भगवान् वृषभदेव उस पालकी पर आरूढ़ होते हुए ऐसे जान पड़ते थे मानों पालकी के छल से दीक्षारूपी अंगना की श्रेष्ठ शव्या पर ही आरूढ़ हो रहे हों । जो मालायें पहने हुये हैं, जिनका दैदीप्यमान शरीर चन्दन के लेप से लिप्त हो रहा है और जो अनेक प्रकार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो रहे हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव पालकी पर आरूढ़ हुये ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों तपरूपी लक्ष्मी के उत्तम वर ही हों । भगवान् वृषभदेव पहले तो परम विशुद्धता को प्राप्त हुये थे अर्थात् परिणामों की विशुद्धता को प्राप्त हुये थे, और बाद में पालकी पर आरूढ़ हुये थे । इसलिये वे उस समय ऐसे जान पड़ते थे, मानों गुणस्थानों की श्रेणी चढ़ने का अभ्यास ही कर रहे हों । भगवान् की पालकी को प्रथम ही राजा लोग सात पैंड तक ले चले । तदनन्तर वैमानिक और भवनत्रिक देवों ने अत्यन्त हर्षित होकर वह पालकी अपने कन्धों पर रखी और शीघ्र ही उसे आकाश में ले गये । भगवान् वृषभदेव के माहात्म्य की प्रशंसा करना इतना ही पर्याप्त है कि उस समय देवों के अधिपति इन्द्र भी उनकी पालकी ले जाने वाले हुये थे, अर्थात् - इन्द्र स्वयं उनकी पालकी ढो रहे थे । उस समय यक्ष जाति के देव सुगन्धित फूलों की वर्षा कर रहे थे और गंगानदी के जलकणों को धारण करने वाला शीतल वायु बह रहा था । उस समय देवों के बन्दीजन उच्च स्वर से प्रस्थान समय के मंगल पाठ पढ़ रहे थे । उस समय इन्द्र की आज्ञा पाकर समस्त देव जोर-जोर से यह घोषणा कर रहे थे कि जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव का मोहरूपी शत्रु को जीतने के उद्योग करने का यही समय है ।

संन्यास ब्रत धारण

नातिदूर पुरस्यास्य नात्यासन्तेतिवृस्तृतम् ।

सिद्धार्थकवनोद्देशमभिप्राया ज्जगदगुरुः ॥ 181 ॥

इस प्रकार जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव अत्यन्त विस्तृत सिद्धार्थ नाम के बन में जा पहुँचे । वह बन उस अयोध्यापुरी से न तो बहुत दूर था न बहुत निकट ही था ।

ततः प्राप सुरेन्द्रणां पृतना रोदसी ।

वयोरूत्तरवाच्वानं कुर्वसिद्धार्थकं वनम् ॥ 182 ॥

तदनन्तर इन्द्रों की सेना भी आकाश और पृथ्वी को व्याप करती हुई उस सिद्धार्थक वन में जा पहुँची । उस वन में अनेक पक्षी शब्द कर रहे थे इसलिये वह उनसे ऐसा मालूम होता था मानों इन्द्रों की सेना को बुला ही रहे हों ।

पहले से देव लोगों ने अत्यन्त मनोहर स्वच्छ पवित्र चन्द्रकांतमणि की एक विस्तृत शिला स्थापित कर रखी थी । ऋषभदेव ने उस शिला पर आसीन होकर सिद्ध भगवान् की साक्षीपूर्वक “नमः सिद्धेभ्य” उच्चारण करते हुए पंचमुष्टि केशलोंच किया था । अन्तरंग परिग्रह के साथ-साथ बहिरंग परिग्रह त्याग कर दिया । बहिरंग अन्य-अन्य परिग्रह के साथ-साथ समस्त वेशभूषा त्यागकर परम दिगम्बर निर्गन्ध दीक्षा धारण की । उन पवित्र केशों को इन्द्र ने रत्नमय पेटिका में धारण करके अत्यन्त भक्तिभाव से लेकर क्षीरसमुद्र में विसर्जन कर दिया । वर्तमान राजा वृषभदेव ऋषि वृषभदेव बन गये । जब तक केवलज्ञान की उपलिधि नहीं होगी तब तक अखण्ड मौन स्वीकार करके ज्ञान-ध्यान तप में लीन हो गये ।

सहस्रीकारी (4000) राजा

बड़े बड़े वंशों में उत्पन्न हुए वे राजा भगवान् में अपनी उत्कृष्ट भक्ति प्रगट करना चाहते थे इसलिए उन्होंने भगवान् जैसी निर्गन्ध वृत्ति धारण की थी ।

जिनका संयम प्रकट नहीं हुआ है ऐसे उन द्रव्यलिंगी मुनियों से धिरे हुए भगवान् ऋषभदेव ऐसे सुशोभित होते थे मानों छोटे-छोटे कल्पवृक्षों से धिरा हुआ कोई उन्नत विशाल कल्पवृक्ष ही हो ।

चतुःसहस्रगणना नृपाः प्रावाजिपुस्तदा ।

गुरुर्मतमजानाना स्वामिभक्त्यैव केवलम् ॥ 212 ॥

उसी समय 4000 अन्य राजाओं ने भी दीक्षा धारण की थी । वे ऋषभदेव का अभिप्राय जाने, बिना केवल स्वामी भक्ति से प्रेरित होकर दीक्षित हुये थे ।

भरत द्वारा ऋषि ऋषभदेव की पूजा

ततो भरतराजोऽपि गुरुं भक्तिभरानतः ।

पूजयामास लक्ष्मीवान् उच्चावचवचःस्त्रजा ॥ 250 ॥

आ. पु. पृ. 394 भा. 1

लक्ष्मीवान् महाराज भरत ने भी भक्ति के भार से अतिशय नप्र होकर अनेक प्रकार के वचन रूपी मालाओं के द्वारा अपने पिता की पूजा की अर्थात् सुन्दर शब्दों के द्वारा उनकी स्तुति की ।

**अथ भरतनरेन्द्रो रुद्रभक्त्या मुनीन्द्रं
समधिगतसमाधिं सावधानं स्वसाध्ये
सुरभिसलिलधारगन्धपुष्पाक्षताद्यै रथजत
जितमोहं सप्रदीपैश्च धूपैः ॥ 251 ॥**

उन्हीं भरत महाराज ने बड़ी भारी भक्ति से सुगन्धित जल की धारा, गन्ध, पुष्प, अक्षत, द्वीप, धूप और अर्घ्य से समाधि को प्राप्त हुए । (आत्म-ध्यान में लीन) और मोक्ष प्राप्ति रूप अपने कार्य में सदा सावधान रहने वाले मोहनीय कर्म के विजेता मुनिराज भगवान् ऋषभदेव की पूजा की ।

विभिन्न फलों से पूजा

परिणतफलभेदैराम्रजम्बूकपित्थैः

पनसलकुचमोचै दर्ढिमैर्मातुलुङ्घैः ।

क्रमुकरुचिरगुच्छैनारिकेलैश्च रम्यैः

गुरुचरणसपर्यामातनोदाततश्रीः ॥ 252 ॥

जिनकी लक्ष्मी बहुत ही विस्तृत है ऐसे राजा भरत ने पके हुए मनोहर आम, जामुन, कैथा, कटहल, (पनस) बड़हल, केला, अनार, बिजौरा, सुपारियों के सुन्दर गुच्छे और नारियलों से भगवान् के चरणों की पूजा की थी ।

कृतचरणसपर्यो भक्तिनप्रेण मूर्धन्या

धरणिनिहित जानु प्रोदगतानन्दबापः ।

प्रणतिमतनुतोच्चैमौलिमाणिक्यरशिम

प्रविमलसलिलौघैः क्षालयन्भर्तुडश्मी ॥ 253 ॥

इस प्रकार जो भगवान् के चरणों की पूजा कर चुके हैं, ऐसे राजा भरत ने अपने उल्कुष मुकुट में लगे हुए मणियों की किरणों रूप स्वच्छ जल के समूह से भगवान् के चरण कमलों का प्रक्षालन करते हुए भक्ति से नम्र हुए अपने मस्तक से उन्हीं भगवान् के चरणों को नमस्कार किया ।

ऋषि ऋषभ की तपश्चर्या

अथ कायं समुत्सृज्य तपोयोगे समाहितः ।

वाचंयमत्वमास्थाय तस्थौ विश्वेव विमुक्तये ॥ 1 ॥

समस्त लोक के अधिपति भगवान् वृषभदेव शरीर से समत्व छोड़कर तथा तपोयोग में सावधान हो मौन धारण कर मोक्ष प्राप्ति के लिए स्थित हुए ।

षण्मासानशनं धीरः प्रतिज्ञाय महाधृतिः ।

योगैकाग्यनिरुद्धान्तर्बहिष्करण विक्रियः ॥ 2 ॥

योगों की एकाग्रता से जिन्होंने मन तथा बाह्य इन्द्रियों के समस्त विकार रोक दिये हैं ऐसे धीर-वीर, महा सन्तोषी भगवान् छह महीने के उपवास की प्रतिज्ञा पर स्थित हुए थे ।

वितस्व्यन्तरपादाग्रं तन्त्रयंशान्तरपार्षिकम् ।

सममृज्वागतं स्थानमास्थाय रचितस्थितिः ॥ 3 ॥

वे भगवान् सम (सीधी) और लम्बी जगह में कायोत्सर्ग धारण कर खड़े हुए थे। उस समय उनके दोनों पैरों के अग्रभाग में एक वितस्त अर्थात् बारह अंगुल का और एड़ियों में चार अंगुल का अन्तर था ।

मनः पर्ययज्ञान लाभ

दीक्षान्तर मुद्भूत मनः पर्ययबोधनः ।

चक्षुज्ञानधरः श्रीमान् सान्तर्दीप इवालयः ॥ 13 ॥

दीक्षा के अनन्तर ही उन्हे मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया था इसलिए मति, श्रुति, अवधि और मनःपर्यय इन चार ज्ञानों को धारण करने वाले श्रीमान् भगवान् ऐसे जान पड़ते थे मानो जिसके भीतर दीपक जल रहे हैं ऐसा कोई महल ही हो ।

कठोर तप से विचलित साधु

इस प्रकार भगवान् वृषभदेव जब परम निःस्पृह होकर विराजमान थे

तब कच्छ महाकच्छ आदि राजाओं के धैर्य में बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न होने लगा । उनका धैर्य छूटने लगा ।

दीक्षा धारण किये हुए दो तीन माह भी नहीं हुए थे कि इतने में ही अपने को मुनि मानने वाले उन राजाओं ने परीषह रूपी वायु से भग्न होकर शीघ्र ही धैर्य छोड़ दिया था ।

गुरुदेव भगवान् वृषभदेव के अत्यन्त कठिन मार्ग पर चलने में असमर्थ हुए वे कल्पित मुनि अपना—अपना अभिमान छोड़कर परस्पर में जोर-जोर से इस प्रकार कहने लगे ।

अहो धैर्यमहो स्थैर्यमहो जड्याबलं प्रभो ।

को नामैवमिनं मुक्त्वा कुर्यात् साहसमीदूशम् ॥ 18 ॥

कि अहा ! आश्र्वय है ! भगवान् का कितना धैर्य है ! कितनी स्थिरता है ! और इनकी जंघाओं में कितना बल है ! इन्हें छोड़कर और दूसरा कौन हैं ऐसा साहस कर सके !

अब यह भगवान् इस तरह आलस्य रहित क्षुधा आदि से उत्पन्न हुई बाधाओं से सहते हुए निश्चल पर्वत की तरह और कितने समय तक खड़े रहेंगे ।

हम समझते थे कि भगवान् एक दिन, दो दिन अथवा ज्यादा से ज्यादा तीन चार दिन तक खड़े रहेंगे परन्तु यह भगवान् तो महीनों पर्यन्त खड़े रहकर हम लोगों को क्लेशित (दुःखी) कर रहे हैं ।

कामं तिष्ठतु वा भुक्त्वा पीत्वा निर्वाप्य नः पुनः ।

अनाश्वर्वानिष्ठतीकारः तिष्ठन्तिष्ठा करोति नः ॥ 21 ॥

अथवा यदि स्वयं भोजन पान कर और हम लोगों को भी भोजन पान आदि से सन्तुष्ट कर फिर खड़े रहते तो अच्छी तरह खड़े रहते, कोई हानि नहीं थी परन्तु यह तो बिल्कुल ही उपवास धारण कर भूख-प्यास आदि का कुछ भी प्रतीकार नहीं करते और इस प्रकार खड़े रहकर हम लोगों का नाश कर रहे हैं ।

मिथ्या कारयते योगं गुरु रस्मासु निर्दयः ।

स्पर्धा कृत्वा सहैतेन मर्तव्यं किमशक्तकैः ॥ 31 ॥

मालूम होता है कि भगवान् हम पर निर्दय हैं— कुछ भी दया नहीं करते, वे हमसे झूठ-मूठ ही तपस्या कराते हैं, इनके साथ बराबरी की स्पर्धा कर क्या हम असमर्थ लोगों को मर जाना चाहिए ।

83

पादयोः पतिताः केचित् परित्रायस्वः नः प्रभोः ।

क्षुलक्ष्माङ्गन् क्षमस्वेति ब्रुवन्तोऽन्तर्हिता गुरोः ॥ 48 ॥

कितने ही लोग भगवान् के चरणों पर पड़कर कह रहे थे कि “हे प्रभो ! हमारी रक्षा कीजिए, हम लोगों का शरीर भूख से बहुत ही कृश हो गया है अतः अब हमें क्षमा कीजिए” इस प्रकार कहते हुए वहाँ से अन्तर्हित हो गये थे—अन्यत्र चले गये थे।

अहो किमृष्यो भग्ना महर्वैर्गन्तुमक्षमाः ।

पदवीं तामनालीढामन्यैः सामान्यमर्त्यकैः ॥ 49 ॥

किं महादन्तिनो भारं निर्वोद्धुं कलभाः क्षमाः ।

पुंगवैर्वा भरं कृष्टुं कर्पेयुः किमु दम्यकाः ॥ 50 ॥

खेद है कि जिसे अन्य साधारण मनुष्य स्पर्श भी नहीं कर सकते ऐसे भगवान् के उस मार्ग पर चलने के लिए असमर्थ होकर वे सब खोटे ऋषि तपस्या से भ्रष्ट हो गये सो ठीक ही है, क्योंकि बड़े हाथी के बोझ को क्या उसके बच्चे भी धारण कर सकते हैं ? अथवा बड़े बैलों द्वारा खींचे जाने योग्य बोझ को क्या छोटे बछड़े भी खींच सकते हैं ?

विचलित साधुओं का अप्रासुक आहार ग्रहण

ततः परीष्वैर्भग्नाः फलान्याहर्तुमच्छवः ।

प्रसन्नुर्वन्नषण्डेषु सरस्मुच पिपासिताः ॥ 51 ॥

तदनन्तर परीष्वहों से पीड़ित हुए वे लोग फल लाने की इच्छा से वन खण्डों में फैलने लगे और प्यास से पीड़ित होकर तालाबों पर जाने लगे ।

विचलित साधुओं को देवताओं का ताड़न

फलेग्रहीनिमान् दृष्ट्वा पिपासूश्च स्वयं ग्रहैः ।

न्येषधनै वमीहध्वमिति तान् वनदेवताः ॥ 52 ॥

इदं रूपमदीनानानामर्हतां चक्रिणामपि ।

निषेव्यं कातरत्वस्य पदं माकार्ष्ट बालिशाः ॥ 53 ॥

उन लोगों को अपने ही हाथ से फल ग्रहण करते और पानी पीते हुए देखकर वन देवताओं ने उन्हें मना किया और कहा कि ऐसा मत करो । हे

मूर्खो ! यह दिग्म्बर रूप सर्वश्रेष्ठ अरहन्त तथा चक्रवर्ती आदि के द्वारा भी धारण करने योग्य है इसे तुम लोग कातर का स्थान मत बनाओ । अर्थात् इस उक्त वेष को धारण कर दीनों की तरह अपने हाथ से फल मत तोड़ो और न तालाब आदि का अप्रासुक पानी पीओ ।

विभिन्न पारखण्डी एवं पारखण्डी मतों का प्रारम्भ

वन देवताओं के ऐसे वचन सुनकर वे लोग दिग्म्बर वेष में वैसा करने से डर गये इसलिये उन दीन चेष्टा वाले भ्रष्ट तपस्वियों ने नीचे लिखे हुए अनेक वेष धारण कर लिये ।

उनमें से कितने ही लोग वृक्षों के बल्कल धारण कर फल खाने लगे और पानी पीने लगे और कितने ही लोग जीर्ण-शीर्ण लंगोटी पहनकर अपनी इच्छानुसार कार्य करने लगे ।

कितने ही लोग शरीर को भस्म से लपेटकर जटाधारी हो गये, कितने ही एक दण्ड को धारण करने वाले और कितने ही तीन दण्ड को धारण करने वाले साधु बन गये थे ।

इस प्रकार प्राणों से पीड़ित हुए वे लोग उस समय ऊपर लिखे अनुसार अनेक वेष धारण कर वन में होने वाले वृक्षों की छाल रूप वस्त्र, स्वच्छ जल और कन्द-मूल आदि के द्वारा बहुत समय तक अपनी वृत्ति (जीवन-निर्वाह) करते रहे ।

वे लोग भरत महाराज से डरते थे इसलिये उनका देश त्याग अपने आप ही हो गया था अर्थात् वे भरत के डर से अपने—अपने नगरों में नहीं गये थे किन्तु झोंपड़े बनाकर उसी वन में रहने लगे थे ।

वे लोग पारखण्डी तपस्वी तो पहले से ही थे परन्तु उस समय कितने ही परिव्राजक हो गये थे और मोहोदय से दूषित होकर पारखण्डियों में मुख्य हो गये थे ।

पुष्पोहारैः सजलैर्भर्तुः पादावयक्षत ।

न देवतानन्तरं तेषामासीन्मुक्त्वा स्वयंभुवम् ॥ 60 ॥

वे लोग जल और फूलों के उपहार से भगवान् के चरणों की पूजा करते थे। स्वयंभू भगवान् वृषभदेव को छोड़कर उनके अन्य कोई देवता नहीं था ।

मरीचिश्च गुरोर्नसा परिव्राद्भूयमास्थितः ।

मिथ्यात्ववृद्धिमकरोदपसिद्धान्तभाषितैः ॥ 61 ॥

युग निर्माता : ऋषभदेव

भगवान् वृषभदेव का नाती मरीचि कुमार भी परिव्राजक हो गया था और उसने मिथ्या शास्त्रों के उपदेश से मिथ्यात्व की वृद्धि की थी।

तदुपज्ञमभूद् योगशास्त्रं तन्नं च कापिलम् ।

येनायं मोहितो लोकः सम्यग्ज्ञानं पराङ्मुखः ॥ 62 ॥

योग शास्त्र और सांख्य शास्त्र प्रारम्भ में उसी के द्वारा कहे गये थे, जिनसे मोहिता हुआ यह जीव सम्यग्ज्ञान से पराङ्मुख हो जाता है।

ध्यानरत ऋषभदेव

इस प्रकार जबकि वे द्रव्य लिङ्गी मुनि ऊपर कही हुई अनेक प्रकार की प्रवृत्ति को प्राप्त हो गये तब भी बुद्धिबल से सहित महामुनि भगवान् वृषभदेव उसी प्रकार तपस्या करते हुए विद्यमान रहे थे।

वे प्रभु मेरु पर्वत के समान निष्कम्प थे, समुद्र के समान क्षोभ रहित थे, वायु के समान परिग्रह रहित थे और आकाश के समान निर्लेप थे।

यद्यपि भगवान् ने छह महीने का महोपवास तप किया था तथापि उनके शरीर का उपचय पहले की तरह ही दैदीप्यमान बना रहा था। इरासे कहना पड़ता है कि उनकी धीरता बड़ी ही आश्चर्यजनक थी।

नानाशुषोऽप्यभूद् भर्तुः स्वल्पोऽप्यद्गे परिश्रमः ।

निर्माणातिशयः कोऽपिदिव्यः स हि महात्मनः ॥ 74 ॥

यद्यपि भगवान् बिल्कुल ही आहार नहीं लेते थे तथापि उनके शरीर में रंचमात्र भी परिश्रम नहीं होता था। वास्तव में भगवान् वृषभदेव की शरीर रचना अथवा उनके निर्माण नामकर्म का ही वह कोई दिव्य अतिशय था।

संस्कारविरहात् केशा जटीभूतास्तदा विभोः ।

नूनं तेऽपि तपः क्लेशमनुसोद्धुं तथा स्थिताः ॥ 75 ॥

उस समय भगवान् के केश संस्कार रहित होने के कारण जटाओं के समान हो गये थे, और वे ऐसे मालूम होते थे मानों ध्यानरूपी अग्नि से तपाये हुए जीवरूपी स्वर्ण से निकली हुई कालिमा ही हो।

मुनेर्मूच्छि जटा दूरं प्रसस्तुः पवनोद्धताः ।

ध्यानाग्निनेव तस्य जीवस्वर्णस्य कालिकाः ॥ 76 ॥

वे जटाएँ वायु से उड़कर महामुनि भगवान् वृषभदेव के मस्तक पर दूर

युग निर्माता : ऋषभदेव

तक फैल गयी थीं, सो ऐसी जान पड़ती थीं मानों ध्यानरूपी अग्नि से तपाये हुए जीवरूपी स्वर्ण से निकली हुई कालिमा ही हो।

तपश्चरण का प्रकृति पर प्रभाव

ततपोऽतिशयात्तस्मिन् कानने भूत परा द्युतिः ।

नक्तं दिवा च बालाक्तेजसेवात्तान्तिके ॥ 77 ॥

भगवान् के तपश्चरण के अतिशय से उस विस्तृत वन में रात-दिन ऐसी उत्तम कान्ति रहती थी जैसी कि प्रातःकाल के सूर्य के तेज से होती है।

मृगशावा: पदोपान्तं स्वैसाध्यासिता मुनेः ।

तदाश्रमस्य शान्तत्वमाच्युः साभिनिद्रिताः ॥ 81 ॥

भगवान् के चरणों के समीप ही अपनी इच्छानुसार कुछ-कुछ निद्रा लेते हुए जो हरिणों के बच्चे बैठे हुए थे – वे उनके आश्रम की शान्तता बतला रहे थे।

मृगरित्वं समुत्सृज्य सिंहाः संहतवृत्तयः ।

बभूबुर्गज्यूथेन माहात्म्यं वद्धि योगजम् ॥ 82 ॥

सिंह हरिण आदि जन्तुओं के साथ बैर भाव छोड़कर हाथियों के झुण्ड के साथ मिलकर स्थने लगे थे सो यह सब भगवान् के ध्यान से उत्पन्न हुई महिमा ही थी।

कष्टकालगनबालायाश्चमरीश्च मरीमृजाः ।

नखरैः स्वैरहो व्याघ्राः सानुकम्पं व्यमोचयन् ॥ 83 ॥

अहा ! कैसा आश्चर्य था कि जिनके बालों के अग्रभाग काँटों में उलझ गये थे और जो उन्हें बार-बार सुलझाने का प्रयत्न करती थीं ऐसी चमरी गायों को बाघ बड़ी दया के साथ अपने नखों से छुड़ा रहे थे अर्थात् उनके बाल सुलझा कर उन्हें जहाँ-तहाँ जाने के लिए स्वतंत्र कर रहे थे।

प्रस्तुवाना महाव्याघ्रीस्तपेत्य मृगशावकाः ।

स्वजनन्यास्थया स्वैरं पीत्वा स्म सुखमासते ॥ 84 ॥

हरिणों के बच्चे दूध देती हुई बाघनियों के पास जाकर और उन्हें अपनी माता समझ इच्छानुसार दूध पीकर सुखी होते थे।

पदयोरस्य वन्येभाः समुत्फुल्लं सरोरुहम् ।

ढोकयामासुरानीय तपःशक्तिरहो परा ॥ 85 ॥

अहा ! भगवान् के तपश्चरण की शक्ति बड़ी ही आश्चर्य कारक थी कि

वनके हाथी भी फूले हुए कमल लाकर उनके चरणों में चढ़ाते थे।

बभौ राजीवमारकं करिणां पुष्करश्रितम् ।

पुष्करश्रियमाम्रेडी कुर्वद्भर्तुरूपासने ॥ 86 ॥

जिस समय वे हाथी फूले हुए कमलों द्वारा भगवान् की उपासना करते थे उस समय उनके सूँड के अग्रभाग में स्थित लाल कमल ऐसे सुशोभित होते थे मानों उनके पुष्कर अर्थात् सूँड के अग्रभाग की शोभा को ढूनी कर रहे हों।

प्रशस्य विभोरङ्गात् विसर्यन्त इवांशकाः ।

प्रसह्य वशमानिन्युरवशानपि तान् मृगान् ॥ 87 ॥

भगवान् के शरीर से फैलती हुई शान्ति की किरणों ने कभी किसी के वश न होने वाले सिंह आदि पशुओं को भी हठात वश में कर लिया था।

अनाशुषोऽपि नास्यासीत् क्षुद्रबाधा भुवनेशिनः ।

संतोषधावनोत्कर्षाञ्जयदगृद्धि मगृध्नुता ॥ 88 ॥

यद्यपि त्रिलोकीनाथ भगवान् उपवास कर रहे थे— कुछ भी आहार नहीं लेते थे तथापि उन्हे भूख की बाधा नहीं होती थी, सो ठीक ही है, क्योंकि सन्तोष रूप भावना के उत्कर्ष से जो अनिच्छा उत्पन्न होती है वह हर एक प्रकार की इच्छाओं (लम्पटता) को जीत लेती है।

चलन्ति स्म तदेन्द्राणामासनान्यस्य योगतः ।

चित्रं हि महतां धैर्यं जगदाकम्पकारणम् ॥ 89 ॥

उस समय भगवान् के ध्यान के प्रताप से इन्द्रों के आसन भी कम्पायमान हो गये थे। वारत्व में यह भी एक बड़ा आश्रय है कि महापुरुषों का धैर्य भी जगत् के कम्पन के कारण हो जाता है।

इति षण्मासनि वर्त्स्यत्प्रतिमायोगमापुषः ।

स कालः क्षणवद्भर्तुरगमद् धैर्यशालिनः ॥ 90 ॥

इस तरह छह महीने में समाप्त होने वाले प्रतिमायोग को प्राप्त हुए और धैर्य से शोभायमान रहने वाले भगवान् का वह लम्बा समय भी क्षण भर के समान व्यतीत हो गया।

आहार, शरीर एवं धर्म समन्वय

जिनका माहात्म्य अचिन्त्य है और जो मेरु पर्वत के समान अचल स्थिति

को धारण करने वाले हैं ऐसे जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव को योगधारण किये हुए जब छह माह पूर्ण हो गये।

ततोऽस्य मतिरित्यासीद् यतिचर्याप्रिवोधने ।

कायस्थित्यर्थनिर्दोषविष्वाणान्वेषणं प्रति ॥ 2 ॥

तब यतियों की चर्या अर्थात् आहार लेने की विधि बतलाने के उद्देश्य से शरीर की स्थिति के अर्थ निर्दोष आहार ढूँढ़ने के लिए उनकी इस प्रकार बुद्धि उत्पन्न हुई— वे ऐसा विचार करने लगे। कि बड़े दुःख की बात है कि बड़े-बड़े वंशों में उत्पन्न हुए ये नव दीक्षित साधु समीचीन मार्ग का परिज्ञान न होने के कारण इन क्षुधा आदि परीषहों से शीघ्र ही भ्रष्ट हो गये।

मार्ग प्रबोधनार्थं च मुक्तेश्च सुखसिद्धये ।

कायस्थित्यर्थमाहारं दर्शयामस्तोऽधुना ॥ 4 ॥

इसलिए अब मोक्ष का मार्ग बतलाने के लिए और सुखपूर्वक मोक्ष की सिद्धि के लिए शरीर की स्थिति अर्थ आहार लेने की विधि दिखलाता हूँ।

न केवलमयं कायः कर्शनीयो मुमुक्षुभिः ।

नाप्युत्कटरसैः पोष्यो मृष्टैरिष्टैश्च वल्मनैः ॥ 5 ॥

मोक्षाभिलाषी मुनियों को यह शरीर न तो केवल कृश ही करना चाहिए और न रसीले तथा मधुर मन चाहे भोजनों से इसे पुष्ट ही करना चाहिये।

वशे यथा स्युरक्षाणि नोत धावन्त्यन्त्यथम् ।

तथा प्रयतितव्यं स्याद् वृत्तिमाश्रित्य मध्यमाम् ॥ 6 ॥

किन्तु जिस प्रकार ये इन्द्रियाँ अपने वश में रहें और कुर्मार्ग की ओर न दौड़ें उस प्रकार मध्यम वृत्ति का आश्रय लेकर प्रयत्न करना चाहिये।

दोषनिर्हरणायेष्टा उपवासाद्युपक्रमाः ।

प्राणसन्धारणायायमहारः सूत्रदर्शितः ॥ 7 ॥

वात, पित्त और कफ आदि दोष दूर करने के लिए उपवास आदि करना चाहिए तथा प्राण धारण करने के लिए आहार ग्रहण करना भी जैन शास्त्रों में दिखलाया गया है।

कायक्लेशो मतस्तापनं संक्लेशोऽस्ति यावता ।

संक्लेशो ह्यसमाधानं मार्गात् प्रच्युतिरेव च ॥ 8 ॥

कायकलेश उतना ही करना चाहिए जितने से संकलेश न हो । क्योंकि संकलेश हो जाने पर चित्त चंचल हो जाता है और मार्ग से च्युत होना पड़ता है ।

सिद्ध्यै संयमयात्राया स्ततनुस्थितिमिच्छुभिः ।

ग्राहो निर्दोष आहारो रसासंगाद् विनर्षिभिः ॥ 9 ॥

इसलिए संयम रूपी यात्रा की सिद्धि के लिए शरीर की स्थिति चाहने वाले मुनियों को रसों में आसक्त न होकर निर्दोष आहार ग्रहण करना चाहिये ।

ऋषभदेव की आहारचर्या

इस प्रकार निश्चय करने वाले धीर वीर भगवान् वृषभदेव योग समाप्त कर अपने चरण निक्षेपों (डगों) के द्वारा मानो समस्त पृथ्वी को कम्पायमान करते हुए विहार करने लगे ।

जिस समय महामेरु के समान उन्नत भगवान् वृषभदेव विहार कर रहे थे उस समय कम्पायमान हुई वह पृथिवी उनके चरण कमलों के निक्षेप को स्वीकृत कर रही थी ।

चलते हुए पर्वत के समान उन्नत और शोभायमान भगवान् वृषभदेव ने अनेक नगर, ग्राम, मठम्ब, खर्वट और खेटों में विहार किया था ।

मुनियों की चर्या को धारण करने वाले भगवान् जिस-जिस ओर कदम रखते थे अर्थात् जहाँ-तहाँ जाते थे वहाँ-वहाँ के लोग प्रसन्न होकर और बड़े संभ्रम के साथ आकर उन्हें प्रणाम करते थे ।

अनभिज्ञ जनों से आहार विधि

उनमें से कितने ही लोग कहने लगते थे कि हे देव ! प्रसन्न होइए और कहिए कि क्या काम है तथा कितने ही लोग चुपचाप जाते हुए भगवान् के पीछे-पीछे जाने लगते थे । अन्य कितने ही लोग बहुमूल्य रत्न लाकर भगवान् के सामने रखते थे और कहते थे कि देव ! प्रसन्न होइए और हमारी इस पूजा को स्वीकृत कीजिए । जितने ही लोग करोड़ों पदार्थ और करोड़ों प्रकार की सवारियाँ भगवान् के समीप लाते थे परन्तु भगवान् को उन सबसे कुछ भी प्रयोजन नहीं था, इसलिए वे चुपचाप आगे विहार कर जाते थे । कितने ही लोग माला, वस्त्र, गंध और आभूषणों के समूह आदर पूर्वक भगवान् के समीप लाते थे और यौवन से शोभायमान कन्याओं को लाकर भगवान् के साथ विवाह कराने के लिए तैयार हुए थे सो ऐसी

मूर्खता को धिक्कार हो । कितने ही लोग स्नान करने की सामग्री लेकर भगवान् को घेर लेते थे और कितने ही लोग भोजन की सामग्री सामने रखकर प्रार्थना करते थे कि विभो ! मैं स्नान की सामग्री के साथ-साथ भोजन लाया हूँ, प्रसन्न होइए, इस आसन पर बैठिए और स्नान तथा भोजन कीजिए । चर्या की विधि को नहीं जानने वाले कितने ही मूर्ख लोग भगवान् से ऐसी प्रार्थना करते थे कि हे भगवान् ! हम लोग दोनों हाथ जोड़ते हैं, प्रसन्न होइए और हमें अनुग्रहीत कीजिए । कितने ही लोग भगवान् के चरण-कमलों को पाकर और उनकी धूलि के स्पर्श से पवित्र हुए अपने मस्तक झुकाकर भोजन करने के लिए उनसे बार-बार प्रार्थना करते थे । और कहते थे कि हे भगवन् ! यह खाद्य पदार्थ है, यह स्वाद्य पदार्थ है, यह जुदा रखा हुआ भोज्य पदार्थ है और यह शरीर को सन्तुष्ट करने वाला, अतिशय मनोहर बार-बार पीने योग्य पेय पदार्थ है, इस प्रकार संभ्रान्त हुए कितने ही अज्ञानी लोग भगवान् से बार-बार प्रार्थना करते थे परन्तु “ऐसा करना उचित नहीं है” यही मानते हुए भगवान् चुपचाप वहाँ से आगे चले जाते थे । जिनकी चर्या की विधि अतिशय गुप्त है ऐसे भगवान् के अभिप्राय को जानने के लिए असमर्थ हुए कितने ही लोग क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए इस विषय में मूँढ होकर चित्रलिखित के समान निश्चल ही खड़े रह जाते थे । अन्य कितने ही लोग आँखों से आँसू डालते हुए अपने पुत्र तथा स्त्रियों सहित भगवान् के चरणों में आ लगते थे जिससे क्षण-भर के लिए भगवान् की चर्या में विघ्न पड़ जाता था, परन्तु विघ्न दूर होते ही वे फिर आगे के लिए विहार कर जाते थे ।

आहार नहीं मिलने की अवधि

इत्यस्य परमां चर्या चरतोऽज्ञातचर्यया ।

जगदाश्चर्यकारिण्या मासाः षडपरे ययुः ॥ 28 ॥

इस प्रकार जगत् को आश्चर्य करने वाली गूँड़ चर्या से उत्कृष्ट चर्या धारण करने वाले भगवान् के छह महीने और व्यतीत हो गये ।

ततः संवत्सरे पूर्णे पुरं हास्तिनसाह्यम् ।

कुरुजाङ्गलदेशस्य ललामे वाससाद् सः ॥ 29 ॥

इस तरह एक वर्ष पूर्ण होने पर भगवान् वृषभदेव कुरुजांगल देश के आभूषण के समान सुशोभित हस्तिनापुर नगर में पहुँचे ।

विधिपूर्वक पहला आहार ग्रहण

उस समय उस नगर के रक्षक राजा सोमप्रभ थे। राजा सोमप्रभ कुरुवंश के शिखामणि के समान थे, उनका अन्तःकरण अतिशय प्रसन्न था और मुख चन्द्रमा के समान सौम्य था।

तस्यानुजः कुमारोऽच्भूच्छ्रेयान् श्रेयान् गुणोदयैः।

रूपेण ममन्थः कान्त्या शशी दीप्त्या स भानुमान् ॥ 31 ॥

उनका एक छोटा भाई था जिसका नाम श्रेयांस कुमार था। वह श्रेयांस कुमार गुणों की वृद्धि से श्रेष्ठ था, रूप से कामदेव के समान था, कान्ति से चन्द्रमा के समान था, और दीप्ति से सूर्य के समान था।

जो पहले धनदेव था और फिर अहमिन्द्र हुआ था, वह स्वर्ग से चय कर प्रजा का कल्याण करने वाला और स्वयं कल्याणों की निधि स्वरूप श्रेयांस कुमार हुआ था। जब भगवान् इस हस्तिनापुर नगर के समीप आने को हुए तब श्रेयांस कुमार ने रात्रि के पिछले प्रहर में नीचे लिखे स्वन देखे। प्रथम ही सुवर्णमय महा शरीर को धारण करने वाला और अतिशय ऊँचा सुमेरु पर्वत देखा, दूसरे स्वन में शाखाओं के अग्र भाग पर लटकते हुए आभूषणों से सुशोभित कल्पवृक्ष देखा, तीसरे स्वन में प्रलयकाल सम्बन्धी संध्या काल मेघों के समान पीली-पीली अयाल से जिसकी ग्रीवा ऊँची हो रही है ऐसा सिंह देखा, चौथे स्वन में जिसके सींग के अग्रभाग पर मिट्टी लगी हुई है ऐसा किनारा उद्याइता हुआ बैल देखा, पाँचवे स्वन में जिनकी कान्ति अतिशय दैदीयमान हो रही है और जो जगत् के नेत्रों के समान है, ऐसे सूर्य और चन्द्रमा देखे, छठे स्वन में जिसका जल बहुत ऊँची-उठती हुई लहरों और रत्नों से सुशोभित हो रहा है ऐसा समुद्र देखा तथा सातवें स्वन में अष्ट मंगल द्रव्य धारण कर सामने खड़ी हुई भूत जाति की व्यन्तर देवों की मूर्तियाँ देखीं।

इस प्रकार भगवान् के चरण-कर्मलों का दर्शन ही जिनका मुख्य फल है ऐसे ये ऊपर लिखे हुए सात स्वन श्रेयांस कुमार ने देखे। तदनन्तर जिसका चित्त अतिशय प्रसन्न हो रहा है ऐसे श्रेयांस कुमार ने प्रातःकाल के समय विनय सहित राजा सोमप्रभ के पास जाकर उनसे रात्रि के समय देखे हुए वे सब स्वन ज्यों के त्यों कहे। तदनन्तर जिसकी फैलती हुई दाँतों की किरणों से सब दिशाएँ

अतिशय स्वच्छ हो गयी हैं ऐसे पुरोहित ने उन सपनों का कल्याण करने वाला फल कहा। वह कहने लगा कि – हे राजकुमार ! स्वन में मेरु पर्वत देखने से यह प्रगट होता है कि जो मेरु पर्वत के समान अतिशय उत्तर(ऊंचा अथवा उदार) है और मेरु पर्वत पर जिसका अभिषेक हुआ है ऐसा कोई देव आज अवश्य ही अपने घर आयेगा और ये अन्य स्वन भी उन्हीं के गुणों की उन्नति को सूचित करते हैं। आज उन भगवान् के योग्य की हुई विनय के द्वारा हम लोगों के बड़े भारी पुण्य का उदय होगा। आज हम लोग जगत् में बड़ी भारी प्रशंसा, प्रसिद्धि और लाभ संपदा को प्राप्त होंगे– इस विषय में कुछ भी सन्देह नहीं है और कुमार श्रेयान्स भी स्वयं स्वनों के रहस्य को जानने वाले हैं। इसप्रकार पुरोहित के वचनों से प्रसन्न हुए वे दोनों भाई स्वन अथवा भगवान् की कथा कहते हुए बैठे ही थे कि इतने में ही योगिराज भगवान् वृषभदेव ने हस्तिनापुर में प्रवेश किया, उस समय भगवान् के दर्शनों की इच्छा से जहाँ तहाँ से आकर इकट्ठे हुए नगर निवासी लोगों के मुख से निकला हुआ बड़ा भारी कोलाहल हो रहा था।

तदनन्तर सिद्धार्थ नाम के द्वारपाल ने शीघ्र ही जाकर अपने छोटे भाई श्रेयांस कुमार के साथ बैठे हुए राजा सोमप्रभ के लिए भगवान् के समीप आने के समाचार कहे।

सुनते ही राजा सोमप्रभ और तरुण राजकुमार श्रेयांस दोनों ही अन्तःपुर, सेनापति और मंत्रियों के साथ शीघ्र ही उठे। उठकर वे दोनों भाई राजमहल के आंगन तक बाहर आये और दोनों ने ही दूर से नम्रीभूत होकर भक्ति पूर्वक भगवान् के चरणों को नमस्कार किया।

सार्थ्यं पाद्यं निवेद्याद्घ्ययोः परीत्य च जगद्गुरुम् ।

तौ परं जग्मतुस्तोषं निधाविव गृहागते ॥ 72 ॥

उन्होंने भगवान् के चरण कर्मलों में अर्ध सहित जल समर्पित किया अर्थात् जल से पैर धोकर अर्ध चढ़ाया, जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव की प्रदक्षिणा दी और यह सब कर वे दोनों ही इतने संतुष्ट हुए मानों उनके घर निधि ही आयी हो।

जिस प्रकार मलयानिल के स्पर्श से वृक्ष अपने शरीर पर अंकुर धारण

करने लगते हैं उसी प्रकार भगवान् के दर्शन से हर्षित हुए वे दोनों भाई अपने शरीर पर रोमाञ्च धारण कर रहे थे।

भगवान् का मुख देखकर जिनके मुखकमल विकसित हो उठे हैं ऐसे वे दोनों भाई ऐसे जान पड़ते थे मानों जिनमें कमल फूल रहे हों ऐसे प्रातः काल के दो सरोवर ही हों।

उस समय वे दोनों हर्ष से भरे हुए थे और भक्ति के भार से दोनों के मस्तक नीचे की ओर झुक रहे थे इसलिए ऐसे सुशोभित होते थे मानों मूर्तिधारी विनय और शांति ही हों।

भगवान् के चरणों के समीप वे दोनों ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों भगवान् के दर्शन करने के लिए आये हुए सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के इन्द्र हों।

दोनों ओर खड़े हुए सोमप्रभ और श्रेयांस कुमार के बीच में स्थित भगवान् वृषभदेव ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों निषध और नील पर्वत के बीच में खड़ा हुआ सुमेरु पर्वत ही हो।

संप्रेक्ष्य भगवद्गूपं श्रेयाङ्गातिस्मरोऽभवत् ।

ततो दाने मतिं चक्रे संस्कारैः प्राक्तनैर्युतः ॥ 78 ॥

भगवान् का रूप देखकर श्रेयांस को जाति स्मरण हो गया जिससे उसने अपने पूर्व पर्याय सम्बन्धी संस्कारों से भगवान् के लिये आहार देने की बुद्धि की।

श्रीमति वज्रजंड्हादिवृत्तान्तं सर्वमेव तत् ।

तदाचरणयुग्माय दत्तं दानं च सोत्थ्यगात् ॥ 79 ॥

उसे श्रीमती और वज्रजंघ आदि का वह समस्त वृत्तान्त याद हो गया तथा उसी भव में उन्होंने जो चारण ऋद्धिधारी दो मुनियों के लिये आहार दिया था उसका भी उसे स्मरण हो गया।

यह मुनियों के लिए दान देने योग्य प्रातःकाल का उत्तम समय है ऐसा निश्चय कर पवित्र बुद्धि वाले श्रेयांस कुमार ने भगवान् के लिए आहार दान दिया।

दानतीर्थ प्रवर्तक राजा श्रेयांस

श्रद्धादिगुणसम्पन्नः पुण्यैर्नवभिरन्वितः ।

प्रादाद्वगवते दानं श्रेयान् दानादि तीर्थकृत ॥ 81 ॥

दान के आदि तीर्थ की प्रवृत्ति करने वाले श्रेयांसकुमार ने श्रद्धा आदि सातों गुणों सहित और पुण्यवर्धक नवधा भक्तियों से सहित होकर भगवान् के लिए दान दिया था।

धर्मतीर्थ प्रवर्तक को दानतीर्थ प्रवर्तक का दान

जो संयम रूप किया से सब प्राणियों के लिये अभयदान देने वाले थे, सबका हित करने वाले थे, सर्वहितकारी ज्ञान दान देने में समर्थ थे, जो आहारदान देने वाले को शीघ्र ही संसार सागर से पार करने वाले थे, तीनों लोकों के समस्त जीवों का हित करने के लिए मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले थे और जिन्होंने अपने दोनों हाथ उत्तान किये थे अर्थात् दोनों हाथों को सीधा मिलाकर अंजुलि (खोवा) बनायी थी ऐसे भगवान् वृषभदेव के लिये श्रेयांसकुमार ने राजा सोमप्रभ और रानी लक्ष्मीमति के साथ-साथ आदरपूर्वक इख के प्राप्तुक रस का आहार दिया था।

वह राजकुमार श्रेयांस भगवान् के पाणिपात्र में पुण्यधारा के समान उज्ज्वल पौँडे और इख के रस की धारा छोड़ता हुआ बहुत अच्छा सुशोभित हो रहा था।

दानमाहात्म्यः पंचाश्चर्य

तदनन्तर आकाश से महादान के फल की परम्परा के समान देवों के हाथ से छोड़ी हुई रलों की वर्षा होने लगी। उसी समय देवों के हाथों से छोड़ी हुई और भ्रमरों के समूह से व्यास फूलों की वर्षा-आकाश से होने लगी। वह फूलों की वर्षा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों देवों के नेत्रों की माला ही हो। उसी समय समस्त लोक को बधिर करने वाले देवों के नगाड़े गम्भीर शब्द करने लगे और मन्द-मन्द गमन करने से शीतल तथा सुगन्धित वायु चलने लगी। उसी समय प्रीति को प्राप्त हुए देवों का “धन्य यह दान ! धन्य यह पात्र ! और धन्य यह दाता !” इस प्रकार बड़ा भारी शब्द आकाश रूपी आंगन में हो रहा था। उस समय उन दोनों भाईयों ने अपने आपको बहुत ही कृतकृत्य माना था क्योंकि कृतकृत्य हुए भगवान् वृषभदेव ने स्वयं उनके घर में आंगन को पवित्र किया था उस दान की अनुमोदना करने से और भी लोग परम-पुण्य को प्राप्त हुए थे सो ठीक ही है क्योंकि स्फटिक मणि किसी अन्य उत्कृष्ट रत्न को पाकर उसकी कांति को प्राप्त होती ही है।

ऋषि ऋषभदेव का वनगमन

संसार से सभी लोग उत्तम प्रकार से जिनके बड़े भारी अभ्युदय की प्रशंसा करते हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव पारणा करके वन को चले गए।

दानी की पूजा

अहो श्रेय इति श्रेयस्तच्छेत्यश्चेत्यभूत्तदा ।

श्रेयो यशोमयं विश्वं सद्वानं हि यशः प्रदम् ॥ 122 ॥

उस समय अहो कल्याण ! ऐसा कल्याण ! और उस प्रकार का कल्याण ! इस तरह समस्त संसार राजकुमार श्रेयांस के यश से भर गया था सो ठीक ही है क्योंकि उत्तमदान यश को देने वाला होता ही है।

तदादि तदुपज्ञं तद्वानं जगति पप्रथे ।

ततो विस्मयमासेदुः भरताद्या नरेश्वराः ॥ 123 ॥

संसार में दान देने की प्रथा उसी समय से प्रचलित हुई और दान देने की विधि भी सबसे पहले राजकुमार श्रेयांस ने ही जान पायी थी। दान की इस विधि से भरत आदि राजाओं को बड़ा आर्थर्य हुआ था।

महाराज भरत अपने मन में यही सोचते हुए आर्थर्य कर रहे थे कि इसने मौन धारण करने वाले भगवान् का अभिप्राय कैसे जान लिया।

देवों को भी उससे बड़ा आर्थर्य हुआ था, जिन्हें श्रेयांस पर बड़ा भारी विश्वास उत्पन्न हुआ था ऐसे उन देवों ने एक साथ आकर बड़े आदर से उसकी पूजा की थी।

अतिशय प्रसन्न हुए महाराज भरत ने राजा सोमप्रभ और श्रेयांस कुमार का खूब सम्मान किया, उन पर बड़ा स्नेह प्रकट किया और फिर गुरुदेव वृषभनाथ के गुणों का चिंतवन करते हुए अपने घर के लिए वापस गये।

बोधि के लिए तपश्चर्या

भगवान्थ संजात बलवीर्यो महाधृति ।

भेजे परं तपोयोगं योगविज्जैन कल्पितम् ॥ 154 ॥

अथानन्तर आहारग्रहण करने से जिनके बल और वीर्य की उत्पत्ति हुई है जो महाधीर, वीर और योग विद्या के जानने वाले हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव,

जिनेन्द्र देव के द्वारा कहे हुए उत्कृष्ट तपोयोग को धारण करने लगे।

मोहान्धमसंध्वं सकल्पा सन्मार्ग दर्शनी ।

दिदीपेऽस्य मनोऽगारे समिद्वा बोधदीपिका ॥ 155 ॥

इनके मनरूपी मन्दिर में मोहरूपी सघन अन्धकार को नष्ट करने वाला, समीचीन मार्ग दिखाने वाला और अतिशय दैवीष्यमान ज्ञानरूपी दीपक प्रकाशमान हो रहा था।

अतिशय बुद्धिमान भगवान् ऋषभदेव ने पापरूपी योगों से पूर्ण विरक्ति धारण की थी तथा उसके भेद से जो कि व्रत कहलाते हैं उनका भी वे पालन करते थे।

दयाङ्गानापरिष्वङ्ग सत्ये नित्यानुरक्तता ।

अस्ते यद्वत्तात्पर्य ब्रह्मचर्यैकतानता ॥ 159 ॥

परिग्रहेष्वना संगो विकाला शनवर्जनम् ।

ब्रतान्यमूनि तत्सिद्ध्यै भावयामास भावनाः ॥ 160 ॥

दयारूपी श्री का आलिंगन करना, सत्यव्रत में सदा अनुरक्त रहना, अचौर्यव्रत में तप्तपर रहना, ब्रह्मचर्य को ही अपना सर्वस्व समझना, परिग्रह में आसक्त नहीं होना और असमय में भोजन का परित्याग करना, भगवान् इन व्रतों को धारण करते थे और उनकी सिद्धि के लिए निरन्तर उत्तम भावनाओं का चिन्तवन करते थे।

अप्रतिक्रमणे धर्मे जिनाः सामायिकाह्ये ।

चरन्त्येकयमे प्रायश्चतुर्ज्ञानविलोचनाः ॥ 171 ॥

मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इस प्रकार चार ज्ञानरूपी नेत्रों को धारण करने वाले तीर्थकर परमदेव प्रायः प्रतिक्रमण रहित एक सामायिक नाम के चारित्र में ही रत रहते हैं।

तदनन्तर ज्ञान, धैर्य और बल से सहित परम पुरुष भगवान् वृषभदेव ने संयम की सिद्धि के लिए बारह प्रकार का तपश्चरण किया था। अतिशय उग्र तपश्चरण को धारण करने वाले वे वृषभदेव मुनिराज अनशन नाम का अत्यन्त कठिन तप तपते थे और एक सीथ(कण) आदि का नियम लेकर अवमौदर्य (ऊनोदर) नामक तपश्चरण करते थे। वे भगवान् कभी अत्यन्त कठिन

वृत्तिपरिसंख्यान नाम का तप तपते थे जिसके कि वीथी, चर्या आदि अनेक भेद हैं। इसके सिवाय वे आदिपुरुष आलख्य रहित हो दृध, धी, गुड़ आदि रसों का परित्याग कर नित्य ही रस परित्याग नाम का धोर तपश्चरण करते थे। वे योगीराज वर्षा, शीत और ग्रीष्म इस प्रकार तीनों कालों में शरीर को क्लेश देते थे अर्थात् कायक्लेश नाम का तप तपते थे। वास्तव में गणधर देव ने शरीर के निग्रह करने अर्थात् कायक्लेश करने को ही उत्कृष्ट और कठिन तप कहा है।

गर्भात् प्रभृत्यसौ देवो ज्ञानत्रितयमुद्धृहन् ।

दीक्षानन्तरमेवास्मनः पर्ययबोधनः ॥ 181 ॥

तथात्युग्रं तपोऽत्तम सेद्धव्ये ध्रुवभाविनि ।

स ज्ञानलोचनो धीरः सहस्रं वार्षिकं परम् ॥ 182 ॥

तेनाभीष्टं मुनीन्द्राणां कायक्लेशबाह्यं तपः ।

तपोऽङ्गेषु प्रधानाङ्गमुत्तमाङ्गमिवामङ्गिनाम् ॥ 183 ॥

यद्यपि वे भगवान् वृषभदेव, मति, श्रुति, और अवधि इन तीन ज्ञानों को गर्भ से ही धारण करते थे और मनःपर्यय ज्ञान उन्हें दीक्षा के बाद प्राप्त हो गया था। इसके सिवाय सिद्धत्व पद उन्हें अवश्य ही प्राप्त होने वाला था तथापि सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रों को धारण करने वाले धीर-वीर भगवान् ने हजार वर्ष तक अतिशय उत्कृष्ट और उग्र तप तपा था। इससे मालूम होता है कि महामुनियों को कायक्लेश नाम का तप अतिशय अभीष्ट है— उसे वे अवश्य करते हैं। जिस प्रकार प्राणियों के शरीर में मस्तक प्रधान होता है उसी प्रकार कायक्लेश का तप समस्त बाह्य तपश्चरणों में प्रधान होता है।

तत्तदात्तम योगीन्द्रः सोढाशेषपरीषहः ।

तपस्मुदुस्सहतरं परं निर्वाणसाधनम् ॥ 184 ॥

इसलिए उन समस्त परिषहों को सहन करने वाले योगीराज भगवान् वृषभदेव मोक्ष का उत्तम साधन और अतिशय कठिन कायक्लेश नाम का तप तपते थे।

तपरूपी अग्नि से कर्मरूपी ईंधन को जलाने के लिए तैयार हुए वे धीर-वीर भगवान् प्रञ्चलित हुई अग्नि के समान अत्यन्त देदीप्यमान हो रहे थे।

उस समय वे असंख्यत गुणत्रेणी निर्जरा के द्वारा कर्मरूपी गाढ़ अन्धकार को नष्ट कर रहे थे और उनका शरीर तपश्चरण की कान्ति से अतिशय दैदीप्यमान हो रहा था इसलिए वे ठीक सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे।

सदा जाग्रत रहने वाले इन योगीराज की शय्या निर्जन एकान्त स्थान में ही होती थी और जब कभी आसन भी पवित्र तथा निर्जीव स्थान में ही होता था। सदा जाग्रत रहने वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले वे भगवान् न तो कभी सोते थे औ न एक स्थान पर बहुत बैठते ही थे किन्तु भोगोपभोग का त्याग कर प्रयत्नपूर्वक अर्थात् ईर्या समिति का पालन करते हुए समस्त पृथ्वी में विहार करते रहते थे।

ध्यानाभ्यासं ततः कुर्वन् योगी सुनिवृतो भवेत् ।

शेषः परिकरः सर्वो ध्यानमेवोत्तमं तपः ॥ 203 ॥

योगीराज वृषभदेव ध्यानाभ्यासरूप तपश्चरण करते हुए ही कृतकृत्य हुए थे क्योंकि ध्यान ही उत्तम तप कहलाता है। उसके सिवाय बाकी सब उसी के साधन कहलाते हैं।

ततो दिध्यासुनानेन योग्या देशाः सिषेविरे ।

विविक्ता रमणीया ये विमुक्ता रागकारणैः ॥ 207 ॥

तदनन्तर ध्यान धारण करने की इच्छा करने वाले भगवान् ध्यान के योग्य उन-उन प्रदेशों में निवास करते थे जो कि एकान्त थे, मनोहर थे और राग-द्वेष उत्पन्न करने वाली सामग्री से रहित थे।

गुहापुलिनगिर्य ग्रजीर्णोद्यानवनादयः ।

नात्युष्णशीतसम्पाता देशाः साधारणाश्च ये ॥ 208 ॥

कालश्च नातिशीतोष्ण भूयिष्ठो जनतासुखः ।

भावश्च ज्ञानवैराग्य धृतिक्षान्त्यादि लक्षणः ॥ 209 ॥

द्रव्याण्यप्यनुकूलानि यानि संक्लेशहानये ।

प्रभविष्णूनि तानीशः सिषेवे ध्यानसिद्धये ॥ 210 ॥

जहाँ न अधिक गर्मी पड़ती हो और न अधिक शीत ही होती हो जहाँ साधारण गर्मी-सर्दी रहती हो अथवा जहाँ समानरूप से सभी आ जा सकते हैं ऐसी गुफा नदियों के किनारे, पर्वत के शिखर, जीर्ण उद्यान और वन आदि प्रदेश ध्यान के योग्य क्षेत्र कहलाते हैं। इसी प्रकार जिसमें न बहुत गर्मी पड़ती हो और न बहुत सर्दी पड़ती हो तथा जो प्राणियों को दुःखदायी भी न हो ऐसा काल ध्यान के योग्य काल कहलाता है। ज्ञान, वैराग्य, धैर्य और क्षमा आदि भाव

ध्यान के योग्य द्रव्य कहलाता है। स्वामी वृषभदेव ध्यान की सिद्धि के लिए अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का ही सेवन करते थे।

अध्यात्म तत्व को जानने वाले वे भगवान् कभी तो पर्वत पर के लताग्रहों में, कभी पर्वत की गुफाओं में और कभी पर्वत के शिखरों पर ध्यान लगाते थे।

वे भगवान् अध्यात्म की शुद्धि के लिए कभी तो ऐसे-ऐसे सुन्दर पहाड़ों के शिखरों पर पड़े हुए शिलातलों पर आरुङ् होते थे कि जिनके समीप भाग मूरों के शब्दों से बड़े ही मोहर हो रहे थे।

कभी-कभी समाधि (ध्यान) लगाने के लिए वे भगवान् जहाँ गायों के खुरों तक के चिन्ह नहीं थे ऐसे अगम्य वनों में उपद्रवशून्य, जीवरहित और एकान्त विषय भूमि पर विराजमान होते थे।

कभी-कभी पानी के छीटे उड़ाते हुए समीप में बहने वाले निझरनों से जहाँ बहुत ठंड पड़ रही थी ऐसे पर्वत के ऊपरी भाग पर वे ध्यान में तल्लीनता को प्राप्त होते थे।

कभी-कभी रात के समय जहाँ अनेक राक्षस अपनी इच्छानुसार नृत्य किया करते थे ऐसी शमशान भूमि में वे भगवान् ध्यान करते हुए विराजमान होते थे।

कभी शुक्ल अथवा पवित्र बालू से सुन्दर नदीं के किनारे पर, कभी सरोवर के किनारे, कभी मनोहर वन के प्रदेश में और कभी मन की व्याकुलता न करने वाले अन्य कितने ही देशों में ध्यान का अभ्यास करते हुए उन क्षमाधारी भगवान् ने इस समस्त पृथ्वी में विहार किया था।

आत्मना जपिना तैन यो धर्मधा प्रदर्शितः।

तं नियं येऽनुगच्छन्ति ते नूनं दीर्घजीविनः ॥

जो लोग उस परम जितेन्द्रिय पुरुष के दिखाये धर्ममार्ग का अनुसरण करते हैं वे विरजीवी अर्थात् अजर-अमर वन सकेंगे।

अध्याय 6

ऋषि-ऋषभदेव बने भगवान्

मौनी, ध्यानी और मान से रहित वे अतिशय बुद्धिमान भगवान् धीरे-धीरे अनेक देशों में विहार करते हुये किसी दिन पुरिमताल नाम के नगर के समीप आ पहुँचे।

उसी नगर के समीप एक शकट नाम का उद्यान था जो कि उस नगर से न तो अधिक समीप था और न तो अधिक दूर था। उसी पवित्र, आकुलता रहित, रमणीय, एकांत और जीवरहित वन में भगवान् ठहर गये।

शुद्ध बुद्धिवाले भगवान् ने वहाँ ध्यान की सिद्धि के लिये वटवृक्ष के नीचे एक पवित्र तथा लम्बी, चौड़ी शिलापट पर विराजमान होकर चित्त की एकाग्रता धारण की।

वहाँ पूर्व दिशा की ओर मुख कर पद्मासन से बैठे हुये तथा लेश्याओं की उत्कृष्ट शुद्धि को धारण करते हुए भगवान् ने ध्यान में अपना चित्त लगाया।

अतिशय विशुद्ध बुद्धि को धारण करने वाले भगवान् वृषभदेव ने सबसे पहले सर्वश्रेष्ठ मोक्षपद में अपना चित्त लगाया और सिद्ध परमेष्ठी के आठ गुणों का चिन्तवन किया।

पश्चात् उत्तम धर्मध्यान की इच्छा करने वाले भगवान् ने अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन किया क्योंकि शुभ बारह अनुप्रेक्षाएँ ध्यान की परिवार अवस्था को ही प्राप्त हैं अर्थात् ध्यान का ही अंग कहलाती है।

उस समय दैदीप्यमान हुई भगवान् की ध्यानरूपी शक्ति ऐसी दिखाई देती थी मानों मोहरूपी शत्रु के नाश को सूचित करने वाली बढ़ी हुई बड़ी भारी उल्का ही हो।

उस समय क्षपकश्रेणी रूपी रंगभूमि में मोहरूपी शत्रु के नष्ट हो जाने से अतिशय दैदीप्यमान होते हुए मुनिराज वृषभदेव ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे किसी कुश्ती के मैदान से प्रतिमल्ल (विरोधीमल्ल) के भाग जाने पर विजयीमल्ल सुशोभित होता है।

तदनन्तर अविनाशी गुणों का संग्रह करने वाले भगवान् क्षीणकषाय नाम के बारहवें गुणस्थान को प्राप्त हुये। वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण मोहनीय कर्म की धूलि उड़ा दी अर्थात् उसे बिल्कुल ही नष्ट कर दिया और स्वयं स्नातक अवस्था को प्राप्त हो गये।

तदनन्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय कर्म की जो कुछ उन्दृत प्रकृतियाँ थीं उन सबको उन्होंने एकत्वावितर्क नाम के दूसरे शुक्लध्यान से नष्ट कर डाला और उस प्रकार वे मुनिराज ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा अतिशय दुःखदायी चारों धातिया कर्मों को जलाकर केवलज्ञानी होकर लोका-लोक के देखने वाले सर्वज्ञ हो गये।

**अनन्तज्ञानदृग्वीर्यविरतिः शुद्धदर्शनम् ।
दानलाभौ च भोगोपभोगावानन्त्यमाश्रिताः ॥ 265 ॥
नवकेवललब्धीस्ता जिन भास्वान् द्युतीरिव ।
स भेजे जगदुद्भासी भव्याम्भोजानि बोधयन् ॥ 266 ॥**

इस प्रकार समस्त जगत् को प्रकाशित् करते हुये और भव्य जीवरूपी कमलों को प्रफुल्लित करते हुए वे वृषभ-जिनेन्द्ररूपी सूर्य किरणों के समान अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य, चरित्र, शुद्ध सम्यक्त्व, दान, लाभ, भोग और उपभोग इन अनन्त नौ लब्धियों को प्राप्त हुये।

इस प्रकार जिन्होंने ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा कर्मरूपी ईर्धन के समूह को जला दिया है, जिनके केवलज्ञान रूपी विभूति उत्पन्न हुई है और जिन्हें समवशरण का वैभव प्राप्त हुआ है, ऐसे वे जिनेन्द्र भगवान् बहुत ही सुशोभित हो रहे हैं।

ज्ञान कल्पण दिन

**फालुने मासि तामिस्तपक्षस्यैकादशीतिथौ ।
उत्तराषाढ़नक्षत्रै कैवल्यमुद्भूद् विभौः ॥ 268 ॥**

फागुन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था।

तीर्थकरत्व का माहात्म्य

मोहनीय कर्म को जीतने वाले भगवान् वृषभदेव ज्यों ही केवल ज्ञानरूपी लक्ष्मी से दैदीप्यमान हुए त्यों ही समस्त देवों के इन्द्र भक्ति के भार से नप्रीभूत हो

गये अर्थात् उन्होंने भगवान् को सिर झुकाकर नमस्कार किया, आकाश में सभी और जय-जय शब्द बढ़ने लगे और आकाश का बिवर देवों के नगाड़े के शब्दों से व्याप्त हो गया। उसी समय भ्रमरों के शब्दों से आकाश को शब्दायमान करती हुई तथा दिशाओं के अन्त को संकुचित करती हुई कल्पवृक्ष के पुष्पों की वर्षा बड़े ऊँचे से होने लगी और बिरल-बिरल रूप से उत्तरते हुए देवों के विमानों से आकाश रूपी समुद्र ऐसा हो गया मानों उसमें चारों ओर नौकाएँ ही तैर रही हों। उसी समय मद से मनोहर शब्द करने वाले भ्रमरों से सहित, गंगा नदी की अत्यन्त शीतल तरङ्गों का स्पर्श करता हुआ और हिलते हुये सुगन्धित वन के मध्य भाग में स्थित कमलों की पराग से भरा हुआ वायु चारों ओर धीरे-धीरे बहता हुआ दिशाओं में व्याप्त हो रहा था। जिस समय यह सब हो रहा था उसी समय आकाश से बादल के बिना ही होने वाली मन्द-मन्द वृष्टि लोकनाड़ी के आँगन को धूल रहित कर रही थी। उस वृष्टि की बैंदे चारों ओर फैल रही थीं जिससे ऐसी जान पड़ती थी मानो जगत् के स्वामी वृषभ जिनेन्द्र के समवसरण की भूमि को शुद्ध करने के लिए ही फैल रही हों। इस प्रकार उस समय भगवान् वृषभदेव रूपी उदायचल से उत्पन्न हुआ केवलज्ञान रूपी सूर्य जगत् के जीवों के हित के लिये हुआ था। यह केवलज्ञान रूपी सूर्य तीनों लोकों में आनन्द को विस्तृत कर रहा था, जिनेन्द्र भगवान् के आधिपत्य को प्रसिद्ध कर रहा था। और उनके तीर्थकरोचित प्रभाव को बतला रहा था।

बोधिलाभ-खबर का विश्वत्यापी प्रचार

अथानन्तर जब जिनेन्द्र भगवान् ने धातिया कर्मों पर विजय प्राप्त की तब समस्त संसार का सन्ताप नष्ट हो गया। सारे संसार में शान्ति छा गयी और केवलज्ञान की उत्पत्ति रूप वायु के समूह से तीनों लोकों में क्षोभ उत्पन्न हो गया। उस समय क्षोभ को प्राप्त हुये समुद्र की लहरों के शब्द का अनुकरण करता हुआ कल्पवासी देवों का घण्टा समस्त संसार को वाचालित कर रहा था, ज्योतिषी देवों के लोक में बड़ा भारी सिंहनाद हो रहा था, देवताओं के हाथी भी मद रहित अवस्था को प्राप्त हो गये थे। व्यन्तर देवों के घरों में नगाड़ों के ऐसे जोरदार शब्द हो रहे थे जो कि गरजते हुए मेघों के शब्दों को भी तिरस्कृत कर रहे थे। “भो भवनवासी देवों ! तुम भी आकाश में चलने वाले कल्पवासी देवों के साथ-साथ

भगवान् के दर्शन से उत्पन्न हुए सुख अथवा शान्ति को ग्रहण करने के लिए आओ” इस प्रकार जोर-जोर से घोषणा करता हुआ शंख भवनवासी देवों के भवनों में अपने आप शब्द करने लगा था। उसी समय समस्त इन्द्रों के आसन भी शीघ्र ही कम्पायमान हो गये थे। मानों जिनेन्द्र देव को धातिया कर्मों को जीत लेने से जो गर्व हुआ था उसे वे सहन करने के लिये असमर्थ होकर ही कम्पायमान होने लगे थे। जिन्होंने अपनी-अपनी सूँड़ों के अग्रभागों से पकड़कर कमलरूपी अर्ध ऊपर को उठाये हैं और जो पर्वतों के समान ऊँचे हैं ऐसे देवों के हाथी नृत्य कर रहे थे तथा वे ऐसे मालूम होते थे मानों बड़े-बड़े सर्पों रहित पर्वत ही नृत्य कर रहे हों। अपनी लम्बी-लम्बी शाखाओं रूपी हाथों से चारों और फूल बरसाते हुये कल्पवृक्ष ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों भगवान् के लिये पुष्पांजलि ही समर्पित कर रहे हों। समस्त दिशाएँ प्रसन्नता को प्राप्त हो रही थीं, आकाश में यों से रहित होकर सुशोभित हो रहा था और जिसने पृथ्वी लोक को धूलिरहित कर दिया है ऐसी ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी। इस प्रकार संसार के भीतर अकस्मात् आनन्द को विस्तृत करता हुआ केवलज्ञान रूपी पूर्ण चन्द्रमा संसार रूपी समुद्र को बढ़ा रहा था अर्थात् आनन्दित कर रहा था। अवधिज्ञानी इन्द्र ने इन सब चिन्हों से संसार में व्याप्त हुये और संसार को नष्ट करने वाले, भगवान् वृषभदेव के केवलज्ञान रूपी वैभव को शीघ्र ही जान लिया था।

विश्व धर्म सभा

अथानन्तर जिसमें देवरूपी कारीगरों ने सैकड़ों प्रकार की उत्तम-उत्तम रचनाएँ की हैं ऐसा भगवान् वृषभदेव का समोसरण देवों ने दूर से ही देखा।

**द्विष्ठड्योजनविस्तारमभूदास्थानमीशितुः ।
हरिनीलमहारत्नधटिं विलसत्तलम् ॥ 77 ॥**

जो बारह योजन विस्तार वाला है और जिसका तल भाग अतिशय दैदीयमान हो रहा है ऐसा इन्द्र नील मणियों से बना हुआ वह भगवान् का समवसरण बहुत ही सुशोभित हो रहा था।

**सुरेन्द्रनीलनिर्माणं समवृत्तं तदा बभौ ।
त्रिजगच्छ्रीमुखालोकमङ्गलदर्शविभ्रमम् ॥ 78 ॥**

इन्द्रनील मणियों से बना और चारों ओर से गोलाकार वह समवसरण

ऐसा जान पड़ता था मानों तीन जगत की लक्ष्मी का मुख देखने के लिये मंगल रूप एक दर्पण ही हो।

जिस समवसरण के बनाने में सब कामों में समर्थ इन्द्र स्वयं सूत्रधार था, ऐसे उस समवसरण की वास्तविक रचना का कौन वर्णन कर सकता था।

गन्धकुटी

जो अपनी कान्ति से सूर्यमण्डल के साथ स्पर्शा कर रहा था, बड़ी-बड़ी ऋषियों से युक्त था, और कहीं-कहीं पर आकाश गंगा के फेन के समान स्फटिक मणियों से जड़ा हुआ था, जो कहीं-कहीं पर पद्मराम की फैलती हुई किरणों से व्याप्त हो रहा था और उससे ऐसा जान पड़त था मानों जिनेन्द्र भगवान् के चरणतल की लाल-लाल कांति से ही अनुरक्त हो रहा हो, जो अतिशय पवित्र था, चिकना था, कोमल स्पर्श से सहित था और जिसके समीप में अनेक मंगल द्रव्यरूपी सम्पदाएँ रखी हुई थीं ऐसे उस तीन कट्टीदार तीसरे पीठ के विस्तृत मस्तक अर्थात् अग्रभाग पर कुबेर ने गन्धकुटी बनाई। वह गन्धकुटी बहुत ही विस्तृत थी, ऊँचे कोट से शोभायमान थी और अपनी शोभा से स्वर्ग के विमानों का भी उल्लंघन कर रही थी।

सिंहासन

उस गन्धकुटी के मध्य में धनपति ने एक सिंहासन बनाया था जो कि अनेक प्रकार के रत्नों के समूह से जड़ा हुआ था और मेरु पर्वत के शिखर को तिरस्कृत कर रहा था। प्रथम तीर्थकर भगवान् वृषभदेव उस सिंहासन को अलंकृत कर रहे थे। वे भगवान् अपने माहात्म्य से उस सिंहासन के तल से चार अंगुल ऊँचे अधर विराजमान थे, उन्होंने उस सिंहासन के तल भाग को छुआ ही नहीं था। उसी सिंहासन पर विराजमान हुये भगवान् की इन्द्र आदि देव भगवान् की बड़ी-बड़ी पूजाओं द्वारा परिचर्या कर रहे थे।

दिव्यध्वनि

भगवान् के मुखरूपी कमल से बादलों की गर्जना का अनुकरण करने वाली अतिशय युक्त महादिव्यध्वनि निकल रही थी और वह भव्य जीवों के मन में स्थित मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करती हुई सूर्य के समान सुशोभित हो रही

युग निर्माता : ऋषभदेव

थी। यद्यपि वह दिव्यधनि एक प्रकार की ही थी तथापि भगवान् के माहात्म्य से समस्त मनुष्यों की भाषाओं और अनेक कुभाषाओं को अपने अन्तर्भूत कर रही थी अर्थात् सर्व-भाषा रूप परिणमन कर रही थी और लोगों का अज्ञान दूर कर उन्हें तत्वों का बोध करा रही थी।

धर्म-चक्र प्रवर्तन के लिये इन्द्र का अनुरोध

इन्द्र ने चर और अचर जगत् के गुरु भगवान् वृषभदेव की स्तुति कर फिर तीर्थ विहार के लिये नीचे लिखी हुई प्रार्थना की। ‘हे भगवान् ! भव्यजीव रूपी धान्य पापरूपी अनावृष्टि से सूख रहे हैं सो हे विभो ! उन्हें धर्म रूपी अमृत से सींचकर उनके लिये आप ही शरण होइए। हे भव्य जीवों के समूह के स्वामी! हे फहराती हुई दयारूपी ध्वजा से सुशोभत जिनेन्द्र देव ! आपकी विजय के उद्योग को सिद्ध करने वाला यह धर्म चक्र तैयार है। हे भगवान् ! मोक्षमार्ग को रोकने वाली मोह की सेना को नष्ट कर चुकने के बाद अब आपका यह समीचीन मोक्षमार्ग के उपदेश देने का समय प्राप्त हुआ है।’ इस प्रकार जिन्होंने समस्त तत्वों का स्वरूप जान लिया हैं और जो स्वयं ही विहार करना चाहते हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव के सामने इन्द्र के वचन पुनरुक्त से प्रकट हुये थे।

मंगलमय का मंगल विहार

तदा हे माम्बुजैव्योम समन्तादाततं बभौ ।
सरोवरमिवोत्कुल्लपङ्कजं जिनदिग्जये ॥ 279 ॥

आ.पु. भा. , पृष्ठ 634

उस समय भगवान् के दिग्विजय के काल में सुवर्णमय कमलों से चारों ओर से व्याप्त हुआ आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों जिसमें कमल फूल रहे हैं ऐसा सरोवर ही हो।

प्रमोदमयमातन्वन्निति विश्वं जगत्पतिः ।

विजहार महीं कृत्स्नां प्रीणयन् स्ववचोऽमृतैः ॥ 280 ॥

इस प्रकार समस्त जगत् के स्वामी भगवान् वृषभदेव ने जगत् को आनन्दमय करते हुये तथा अपने वचनरूपी अमृत से सबको सन्तुष्ट करते हुए समस्त पृथ्वी पर विहार किया था।

युग निर्माता : ऋषभदेव

मिथ्यान्धकारघटनां विघटय्य वचोऽशुभिः ।

जगदद्योतयामास जिनार्को जनतार्तिहृत् ॥ 281 ॥

जन समूह की पीड़ा हरने वाले जिनेन्द्ररूपी सूर्य ने वचनरूपी किरणों के द्वारा मिथ्यारूपी अन्धकार के समूह को नष्ट कर समस्त जगत् प्रकाशित किया था।

यतो विजहे भगवान् हेमाब्जन्यस्तसल्कमः ।

धर्मामृताम्बुसंवर्धेस्ततो भव्या धृतिं दधुः ॥ 282 ॥

सुवर्णमय कमलों पर पैर रखने वाले भगवान् ने जहाँ-जहाँ से विहार किया वहाँ-वहाँ के भव्यों ने धर्मामृत रूप जल की वर्षा से परम सन्तोष धारण किया था।

जिने धन इवाभ्यर्णे धर्मवर्ष प्रवर्षति ।

जगत्सुखप्रवाहेण पुप्लुवे धृतनिर्वृतिः ॥ 283 ॥

जिस समय वे जिनेन्द्र रूपी मेघ समीप में धर्मरूपी अमृत की वर्षा करते थे उस समय सारा संसार संतोष धारण कर सुख के प्रवाह से लुप्त हो जाता था— सुख के प्रवाह में डूब जाता था।

धर्मवारि जिनाभोदात्पायं पायं कृतस्पृहाः ।

चिरं धृततृष्णो दधुस्तदानीं भव्यचातकाः ॥ 284 ॥

उस समय अत्यन्त लालायित हुये भव्य जीवरूपी चातक जिनेन्द्ररूपी मेघ से धर्मरूपी जल को बार-बार पी कर चिरकाल के लिए सन्तुष्ट हो गये थे।

इत्थं चराचरगुरुर्जगदुञ्जिहीर्षन् ।

संसारखञ्ज ननिमग्नमभग्नवृत्तिः ।

देवासुरैरनुगतो विजहार पृथ्वी ।

हे माब्जगर्भविनिवेशितपादपद्मः ॥ 285 ॥

इस प्रकार जो चर और अचर जीवों के स्वामी हैं, जो संसाररूपी गर्त में डूबे हुए जीवों का उद्धार करना चाहते हैं, जिनकी वृत्ति अखण्डित है, देव और असुर जिनके साथ हैं तथा जो सुवर्णमय कमलों के मध्य में चरण कमल रखते हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान् ने समस्त पृथ्वी में विहार किया।

तीव्रोजवञ्जवदवानलदह्यमान-

महादयन् भुवनकाननमस्ततापः ।

धर्मामृताम्बुपृष्टैः परिषिद्ध देवो -

रेजे घनागम इवेदितदिव्यनादः ॥ 286 ॥

उस समय संसाररूपी तीव्र दावानल से जलते हुये संसारी रूपी वन को धर्मामृत रूप जल के छीटों से सींचकर जिन्होंने सबका संताप दूर कर दिया है, जिनके दिव्य धनि प्रकट हो रही है ऐसे वे भगवान् वृषभदेव ठीक वर्षाक्रतु के समान सुशोभित हो रहे थे।

विभिन्न देशों में मंगल विहार

काशीमवन्तिकुरुकोसलसुह्यपुण्ड्रान्

चेद्यज्ञवङ्गमगधान्धकलिङ्गभद्रान् ।

पाञ्चालमालवदशार्णविदर्भदेशान्

सन्मार्गदेशनपरो विजहार धीरः ॥ 287 ॥

समीचीन मार्ग के उपदेश में तत्पर तथा धीर-वीर भगवान् ने काशी, अवन्ती, कुरु, कोशल, सुह्य, पुण्ड्र, चेदि, अंग, वंग, मगध, आन्ध्र, कलिंग, भद्र, पांचाल, मालव, दशार्ण और विदर्भ आदि देशों में विहार किया था।

महादेव ऋषभदेव का कैलाश गमन

इस प्रकार जिन का चरित्र अत्यन्त शान्त है, जिन्होंने अनेक भव्य जीवों को तत्त्वज्ञान प्राप्त कराया है, और जो तीनों लोकों के गुरु हैं ऐसे भगवान् वृषभदेव अनेक देशों में विहार कर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल, ऊँचे और अपना अनुकरण करने वाले कैलास पर्वत को प्राप्त हुये।

वहाँ उनके अग्रभाग पर देवों के द्वारा बनाये हुये सुन्दर पूर्वोक्त वर्णन से सहित और स्वर्ग की शोभा बढ़ाने वाले सभा मण्डप में विराजमान हुये। उस समय वे जिनेन्द्र देव अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी से सहित थे, आदर के साथ भक्ति से नम्रीभूत हुये बारह सभा के लोगों से घिरे हुये थे और उत्तमोत्तम आठप्रतिहायी से सुशोभित हो रहे थे।

आदिनाथ का विशाल धर्म संघ

आदितीर्थाधिनाथोऽपि मोक्षमार्गं प्रवर्तयन् ॥

चतुरुत्तरयाऽशीत्या विविधद्विविभूषितैः ।

चिरं वृषभसेनादिगणेशैः परिवेष्टिः ॥ 290 ॥

खपञ्चसप्तवारांशिमितपूर्वधरान्वितः ।

खपञ्चैकतुर्मेय शिक्षकैर्मुनिभिर्युतः ॥ 291 ॥

तृतीयज्ञानसन्नेत्रैः सहस्रैर्नवभिर्वृतः ।

के वलावगमैर्विशतिसहस्रैः समन्वितः ॥ 292 ॥

खद्वयर्तुखपक्षोरुविक्रियद्विविवर्द्धितः ।

खपञ्चसप्तपक्षैकमिततुर्यविदन्वितः ॥ 293 ॥

तावद्विर्वादिभिर्वद्योनिरस्तपरवादिभिः ।

चतुरष्टखवाद्वयष्टिमैः सर्वैश्च पिण्डतैः ॥ 294 ॥

संयमस्थानसंप्राप्तसंपद्धिस्सद्विरचितः ।

खचतुष्केन्द्रियानग्न्युक्तपूर्यब्राह्म्यार्थिकादिभिः ॥ 295 ॥

आर्थिकाभिरभिष्टयमाननानागुणोदयः ।

दृढव्रतादिभिर्लक्ष्मत्रयोक्तैः श्रावकैः श्रितः ॥ 296 ॥

श्राविकाभिः स्तुतः पञ्चलक्ष्माभिः सुव्रतादिभिः ।

भावनादिचतुर्भेददेवदेवीडितक्रमः ॥ 297 ॥

चतुष्पदादिभिस्तिर्यग्जातिभिश्चाभिषेवितः ।

चतुस्त्रिंशदतीशेष विशेषैर्लक्षितोदयः ॥ 298 ॥

आत्मोपाधिविशिष्टाबोधदृक् सुखवीर्यसद् ।

देहसौन्दर्यवासोक्त सप्तसंस्थानसंगतः ॥ 299 ॥

प्रातिहार्याष्टकोद्दिष्ट नष्ट घातिचतुष्टयः ।

वृषभाद्यन्वितार्थाष्टसहस्राह्यभाषितः ॥ 300 ॥

विकसितविनेयाम्बुजावलिर्वचनांशुभिः ॥

जो मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति चला रहे हैं, अनेक ऋद्धियों से सुशोभित वृषभसेन आदि 84 गणधरों से घिरे हुये हैं, 4,750 पूर्व ज्ञानियों से सहित हैं, 4,150 शिक्षक मुनियों से युक्त हैं, 9,000 अवधिज्ञानरूपी नेत्र को धारण

करने वाले मुनियों से सहित हैं, 20,000 केवल ज्ञानियों से युक्त हैं, 20,600 विक्रियाक्रद्धि के धारक मुनियों से वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं, 12,750 मनःपर्यज्ञानियों से अन्तित हैं, परवादियों को हटाने वाले 12,750 वादियों से चन्द्रनीय हैं, और इस प्रकार सब मिलाकर तपश्चरण रूपी सम्पदाओं को प्राप्त करने वाले 84,084 मुनिराज जिनकी निरन्तर पूजा करते हैं, ब्राह्मी आदि 3,50,000 आर्यिकाएँ जिनके गुणों का स्तवन कर रही हैं, दृढ़व्रत आदि 3,00,000 श्रावक जिनकी सेवा कर रहे हैं, तथा सुब्रता आदि 5,00,000 श्राविकाएँ जिनकी स्तुति कर रही हैं, भवनवासी आदि चार प्रकार के देव, देवियाँ जिनके चरणकमलों का स्तवन कर रही हैं, चौपाये आदि तिर्यज्यगति के जीव जिनकी सेवाएँ कर रहे हैं, 34 अतिशय विशेषों से जिनका अभ्युदय प्रकट हो रहा है, जो केवल आत्मा से उत्पन्न होने वाले विशिष्ट ज्ञान, विशिष्ट सुख, और विशिष्ट वीर्य को प्राप्त हो रहे हैं, जो शरीर की सुन्दरता से युक्त हैं, जो सज्जाति आदि सात परम स्थानों से संगत है, जो आठ प्रतिहार्यों से युक्त हैं, जिन्होंने चार धातियाँ कर्म नष्ट कर दिये हैं, जो वृषभ आदि एक हजार आठ नामों से कहे जाते हैं और जिन्होंने भव्यजीवरूपी कमलों के वन को प्रफुल्लित कर दिया है ऐसे भगवान् वृषभदेव थे।

कृष्णभद्रेव का विहार काल एवं मोक्ष

तीनों लोकों के स्वामी भगवान् आदिनाथ ने भी धर्म के योग्य क्षेत्रों में समीचीन धर्म का बीज बोकर उसे धर्म वृष्टि के द्वारा खूब ही सींचा ।

सतां सत्फलसंप्राप्त्यै विहरन् स्वर्गणे: समम् ।
चतुर्दशदिनोपेतसहस्राब्दोनपूर्वकम् ॥ 322 ॥
लक्ष्मं कैलासमासाद्य श्रीसिद्धशिखरान्तरे ।
पौर्णमासीदिने पौषे निरिच्छः समुपाविशत् ॥ 323 ॥

इस प्रकार सज्जनों को मोक्षरूपी उत्तम फल की प्राप्ति कराने के लिए भगवान् ने अपने गणधरों के साथ-साथ एक हजार वर्ष और 94 दिन कम 1 लाख पूर्व विहार किया और जब आयु के 14 दिन बाकी रह गये तब योगों का निरोध कर पौष मास की पूर्णमासी के दिन श्रीशिखर और सिद्धशिखर के बीच में कैलाश पर्वत पर जा विराजमान हुए ।

माघकृष्णाचतुर्दश्यां भगवान् भास्करोदये ।
मुहूर्तेऽभिजित प्राप्त पल्यङ्गो मुनिभिः समम् ॥ 338 ॥
प्रागिद्दमुखस्तृतीयेन शुक्लध्यानेन रुद्रवान् ।
योगत्रितयमन्त्येन ध्यानेनाधातिकर्मणाम् ॥ 339 ॥
पञ्चहस्व स्वरोच्चारणप्रमाणेन संक्षयम् ।
कालेन विदधत्प्रान्तगुणस्थानमधिष्ठितः ॥ 340 ॥
शरीरत्रितयापाये प्राप्य सिद्धत्वपर्ययम् ।
निजाष्टगुणसंपूर्णः क्षणासतनुवातकः ॥ 341 ॥
नित्यो निरञ्जनः किंचिद्दूनो देहादमूर्तिभाक् ।
स्थितः स्वसुखसादभुतः पश्यन्विश्वमनारतम् ॥ 342 ॥

माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन सूर्योदय के शुम मुहूर्त और अभिजित नक्षत्र में भगवान् कृष्णभद्रेव पूर्व दिशा की ओर मुँह कर अनेक मुनियों के साथ-साथ पर्याकासन से विराजमान हुए, उन्होंने तीसरे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नाम के शुक्लध्यान से तीनों योगों का निरोध किया और फिर अन्तिम गुणस्थान में ठहरकर पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण प्रमाण काल में चौथे व्युपरत क्रिया निवृत्ति नाम के शुक्ल ध्यान से अधातिया कर्मों का नाश किया । फिर औदारिक, तैजस और कार्मण इन तीनों शरीरों के नाश होने से सिद्धत्व पर्यय प्राप्तकर वे सम्यक्त्व आदि निज के 8 गुणों से युक्त हो क्षणभर में ही तनुवातवलय में जा पहुँचे तथा वहाँ पर नित्य निरञ्जन अपने निरंतर संसार को देखते विराजमान हुए ।

मोक्ष कल्याणक की पूजा

उसी सय मोक्ष कल्याणक की पूजा करने की इच्छा से सब देव लोग आये, उन्होंने “यह भगवान् का शरीर पवित्र उल्कृष्ट मोक्ष का साधक, स्वच्छ और निर्मल है” यह विचार कर उसे बहुमूल्य पालकी में विराजमान किया । तदनन्तर जो अग्निकुमार देवों के इन्द्र के रत्नों की कान्ति से दैदीप्यमान उन्नत मुकुट से उत्पन्न हुई है तथा चन्दन, अगुरु, कर्पूर, केशर आदि सुगन्धित पदार्थों और धी दूध आदि से बनाई गयी है ऐसी अग्नि से जगत की अभूतपूर्व सुगन्धि प्रकट कर उसका वर्तमान आकार नष्ट कर दिया और इस प्रकार उसे दूसरी पर्यय प्राप्त करा दी ।

तीन प्रकार की अग्नि की स्थापना

अभ्यर्चिताग्नि कुण्डस्य गथपुष्टादिभिस्तथा ।
तस्य दक्षिणभागेऽभूद गण भृत्संस्क्रियानलः ॥ 347 ॥
तस्या परस्मिन् दिग्भागे शेष केवलि कायगः ।
एवं वन्हित्रयं भूमा अवस्थाप्यामरेश्वराः ॥ 348 ॥

गन्ध पुष्ट आदि से जिसकी पूजा की गयी है ऐसे इस अग्नि कुण्ड के दाहिनी ओर गणधरों के शरीर का संस्कार करने वाली अग्नि स्थापित की और बाई और तीर्थकर तथा गणधरों के अतिरिक्त अन्य सामान्य केवलियों के शरीर का संस्कार करने वाली अग्नि स्थापित की, इस प्रकार इन्द्रों ने पृथ्वी पर तीन प्रकार की अग्नि स्थापित की ।

चिता भस्म धारण

ततोभस्मसमादय पञ्चकल्याण भागिनः ।
वयं चैवं भवामेति स्व ललाटे भुजद्वये ॥ 349 ॥
कण्ठे हृदय देशे च तेन संस्पृश्य भक्षितः ।
तत्पवित्रतमं मत्वा धर्मरागरसाहिताः ॥ 350 ॥

तदनन्तर उन्हीं इन्द्रों ने पंच कल्याणक को प्राप्त करने वाले श्री वृषभदेव के शरीर की भस्म उठाई और “हम लोग भी ऐसे ही हों” यही सोचकर बड़ी भक्ति से अपने ललाट पर दोनों भुजाओं में, गले में, वक्ष स्थल में लगाई । वे सब उस भस्म को अत्यन्त पवित्र मानकर धर्मानुराग के रस में तन्मय हो रहे थे ।

पवित्र धर्मात्मा महापुरुष धर्म की जीवन्त मूर्ति स्वरूप होते हैं । उनका साधन स्थल ही तीर्थ क्षेत्र है, उनका वचन ही धर्म ग्रन्थ है, उनकी प्रतिकृति ही मूर्ति है, उनका आचरण एवं मार्ग दर्शन ही परम्परा है ।

आदिनाथ भगवान् एक सर्वोक्तुष्ट आध्यात्मिक ज्योति स्वरूप हैं । उनके परिनिर्वाण के पश्चात् जो चिता भस्म निर्माण हुआ था वह भी पवित्र था, प्रेरणाप्रद था इसलिए देव लोग, भक्त लोग भगवान् के गुण स्मरण करते हुए, भगवत् अवस्था को प्राप्त करने के लिए उस पवित्र भस्म को अपने-अपने उत्तम अंग में लेप किये थे । तब से भस्म लेपन पन्द्रिति प्रारम्भ हुई एवं अभी तक वही

परम्परा चल रही है इस प्रकार कहने पर कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

आनन्द नाटक

तेषादसम्पदायामासुः सम्भूयानन्द नाटकम् ॥

भगवान् के मोक्ष जाने से सबने मिलकर बड़े सन्तोष से आनन्द नाम का नाटक किया ।

ऋषभदेव के पूर्व के 10 अवतार

जय वर्मा भवे पूर्वे द्वितीयेऽभून्महाबलः ।

तृतीये ललिताङ्गाख्यो वज्रजंडश्चतुर्थके ॥ 357 ॥

पंचमे भोगभूजोऽभूत षष्ठेऽयं श्री धरोऽमरः ।

सप्तमे सुविधिः क्षमाभृदष्टमेऽच्युतनायकः ॥ 358 ॥

नवमे वज्रनाभीशो दशमेऽनुत्तरान्त्यजः ।

ततोऽवतीर्य सर्वेन्द्र वन्दितो वृषभोऽभवत् ॥ 359 ॥

वृषभदेव का जीव पहले भव में जय वर्मा था, दूसरे भव में महाबल था, तीसरे भव में ललिताङ्ग देव और चौथे भव में राजा वज्रजंघ हुआ । पांचवें भव में भोगभूमि आर्य हुआ । छठवें भव में श्रीधर देव हुआ । सातवें में सुविधि राजा हुआ । आठवें भव में अच्युतेन्द्रदेव हुआ, नवें भव में राजा वज्रनाभि हुआ, दशवें भव में सर्वार्थ सिद्धि में अहमिन्द्र हुआ और वहाँ से आकार इन्द्रों के द्वारा बन्दनीय ऋषभदेव हुआ है ।

**धर्मसिन्धोमुनीशास्य लीना ये पदकंजयोः ।
त एव तटितुं शक्ताः क्षुब्धं तारुण्यवाटिधिम् ॥**

धन वैभव और इन्द्रिय सुख के तूफानी समुद्र को वे ही पार कर सकते हैं, जो उस धर्मसिन्धु मुनीश्वर के चरणों में लीन रहते हैं ।

अध्याय 7

हिन्दू धर्म (श्रीमद्भागवत) के अनुसार ऋषभदेव

ऋषभदेव का जन्म

श्री शुकदेव जी कहते हैं – राजन् ! आग्नीध के पुत्र नाभि के कोई सन्तान न थी, इसलिये उन्होंने अपनी भार्या मरुदेवी के सहित पुत्र की कामना से एकाग्रतापूर्वक भगवान् यज्ञ पुरुष का यजन किया ।

यद्यपि सुन्दर अङ्गोंवाले श्री भगवान् द्रव्य, देश, काल, मन्त्र, ऋत्विज, दक्षिणा और विधि– इन यज्ञ के साधनों से सहज में नहीं मिलते, तथापि वे भक्तों पर तो कृपा करते ही हैं । इसलिये जब महाराज नाभि ने त्रद्वापूर्वक विशुद्ध भाव से उनकी आराधना की, तब उनका चित्त अपने भक्त का अभीष्ट कार्य करने के लिए उत्सुक हो गया । यद्यपि उनका स्वरूप सर्वथा स्वतन्त्र है, तथापि उन्होंने प्रवर्ग्य कर्म का अनुष्ठान होते समय उसे मन और नयनों को आनन्द देने वाले अवयवों से युक्त अति सुन्दर हृदयाकर्षक मूर्ति में प्रकट किया ।

उनके श्री अङ्ग में रेशमी पीताम्बर था, वक्षः स्थल पर मनोहर श्री वत्सचिह्न सुशोभित था, भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा गले में वनमाला और कौस्तुभ मणि की शोभा थी । सम्पूर्ण शरीर अङ्ग–प्रत्यङ्ग की कान्ति को बढ़ाने वाले किरणजालमण्डित मणिमय मुकुट, कुण्डल, कङ्कण, करधनी, हार, बाजूबन्द और नूपुर आदि आभूषणों से विभूषित था । ऐसे परम तेजस्य चतुर्भुज मूर्ति पुरुष–विशेष को प्रकट हुआ देख ऋत्विज, सदस्य और यजमान आदि सभी लोग ऐसे आळादित हुए जैसे, निर्धन पुरुष अपार धनराशि पाकर फूला नहीं समाता । फिर सभी ने सिर झुकाकर अत्यन्त आदरपूर्वक प्रभु की अर्घ्य द्वारा पूजा की और ऋत्विजों ने उनकी स्तुति की ।

श्री शुकदेव जी कहते हैं – राजन ! वर्षाधिपति नाभि के पूज्य ऋत्विजों ने प्रभु के चरणों की वन्दना करते जब पूर्वोक्त स्तोत्र से स्तुति की, तब देव श्रेष्ठ श्री हरि ने करुणावश इस प्रकार कहा ।

श्री भगवान् ने कहा – ऋषियों ! बड़े असमंजस की बात है । आप सब सत्यवादी महात्मा हैं, आपने मुझसे यह बड़ा दुर्लभ वर माँगा है कि राजर्षि नाभि के मेरे समान पुत्र हों । मुनियों ! मेरे समान तो मैं ही हूँ क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ । तो भी ब्राह्मणों का वचन मिथ्या नहीं होना चाहिये, द्विजकुल मेरा ही तो मुख है ।

इसलिये मैं स्वयं ही अपनी अंशकला से आग्नीधनन्दन नाभि के यहाँ अवतार लूँगा, क्योंकि अपने समान मुझे कोई और दिखायी नहीं देता ।

ऋषभदेव का जन्म

श्री शुकदेव जी कहते हैं – महारानी मरुदेवी के सुनते हुए उसके पति से इस प्रकार कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये ।

बहिंषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्धमन्थिनां शुक्लया तनुवावततार ॥ 20 ॥

विष्णु दत्त परीक्षित ! उस यज्ञ में महर्षियों द्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जाने पर श्री भगवान् महाराज नाभि का प्रिय करने के लिए उनके निवास में महारानी मेरु देवी के गर्भ से दिग्म्बर सन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रकट करने के लिये शुद्ध सत्त्वमय विग्रह से प्रकट हुए ।

(तृतीयोऽध्याय 'श्रीमद्भागवत')

ऋषभदेव के गुण

अथ ह तमुत्पत्यैवाभिष्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्य-महाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावं प्रकृतयः प्रजा ब्राह्मणादेवताश्चा वनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥ 1 ॥

श्री शुकदेव जी कहते हैं – राजन ! नाभिनन्दन के अंग जन्म से ही भगवान् विष्णु के वज्र–अंकुश आदि चिह्नों से युक्त थे । समता, शान्ति, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि महाविभूतियों के कारण उनका प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता जाता था । यह देखकर मन्त्री आदि प्रकृति वर्ग, प्रजा, ब्राह्मण और देवताओं की यह उत्कृष्ट अभिलाषा होने लगी कि ये ही पृथ्वी का शासन करें ।

ऋषभदेव का नामकरण

तस्य ह वा इत्थं वर्षणा वरीयसा वृहच्छ्लोकेन चौजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्यम्भ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥ 2 ॥

उनके सुन्दर और सुडौल शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूर वीरता आदि गुणों के कारण महाराज नाभि ने उनका नाम ‘ऋषभ’ (त्रेष्ठ) रखा ।

तस्य हीन्द्रः स्वर्धमानो भगवान् वर्षे न वर्वर्ष तदपधार्य भगवानृष्टभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ॥ 3 ॥

एक बार भगवान् इन्द्र ने ईर्ष्या वश उनके राज्य में वर्षा नहीं की । तब योगेश्वर भगवान् ऋषभ ने इन्द्र की मूर्खता पर हँसते हुए अपनी योग माया के प्रभाव से अपने वर्ष अजनाभखण्ड में खूब जल बरसाया ।

महाराज नाभि अपनी इच्छा के अनुसार त्रेष्ठ पुत्र पाकर अत्यन्त आनन्दमग्न हो गये और अपनी ही इच्छा से मनुष्य शरीर धारण करने वाले पुराण पुरुष श्री हरि का सप्रेम लालन करते हुए, उन्हीं के लीला विलास से मुग्ध होकर वत्स ! तात ! ऐसा गद्गद वाणी से कहते हुए बड़ा सुख मानने लगे ।

ऋषभदेव का राज्याभिषेक

विदितानुरगमापौरप्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समय सेतुराक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्य भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ॥ 5 ॥

जब उन्होंने देखा कि मन्त्रिमण्डल, नागरिक और राष्ट्र की जनता ऋषभदेव से बहुत प्रेम करती है, जो उन्होंने उन्हें धर्ममर्यादा की रक्षा के लिये राज्याभिषेक करके ब्राह्मणों की देख-रेख में छोड़ दिया । आप अपनी पत्नी मेरुदेवी के सहित बदरिकाश्रम को चले गये । वहाँ अहिंसावृत्ति से, जिस से किसी को उद्गेग न हो ऐसी कौशलपूर्ण, तपस्या और समाधियोग के द्वारा भगवान् वासुदेव के नर-नारायण रूप की आराधना करते हुए समय आने पर उन्हीं के स्वरूप में लीन हो गये ।

ऋषभदेव की गृहस्थावस्था

अथ ह भगवानृष्टभदेवः स्ववर्ष कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शित गुरुकुलवामो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेघिनां धर्मानुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायागुभय-लक्षणं कर्म सभान्नायान्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥ 8 ॥

भगवान् ऋषभदेव ने अपने देश अजनाभखण्ड को कर्मभूमि मानकर लोकसंग्रह के लिये कुछ काल गुरुकुल में वास किया । गुरुदेव को यथोचित दक्षिणा देकर गृहस्थ में प्रवेश करने के लिए उनकी आज्ञा ली । फिर लोगों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा देने के लिये देवराज इन्द्र की दी हुई उनकी कन्या जयन्ती से विवाह किया तथा श्रौत-स्मार्त दोनों प्रकार के शास्त्रोपदिष्ट कर्मों का आचरण करते हुए उसके गर्भ से अपने ही समान गुण वाले सौ पुत्र उत्पन्न किये ।

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्ष भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥ 9 ॥

उनमें महायोगी भरतजी सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान् थे । उन्हीं के नाम से लोग इस अजनाभखण्ड को ‘भारतवर्ष’ कहने लगे ।

तमनु कुशावर्त इलावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इन्द्रस्पृग्विदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः ॥ 10 ॥

उनसे छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रेसन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट- ये नौ राजकुमार शेष नब्बे भाईयों से बड़े एवं श्रेष्ठ थे ।

कविर्हरित्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ।

आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ 11 ॥

इति भागवत धर्मदर्शना नव महाभागवतारतेषां सुचरितं भगवन्महिमोबृहितं वसुदेवनारद संपादमुपशमायनमुपरिष्टा-द्वर्णयिष्यामः ॥ 12 ॥

उनसे छोटे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन ये नौ राजकुमार भागवत धर्म का प्रचार करने वाले भगवद्गत्त थे । भगवान् की महिमा से महिमान्वित और परम शान्ति से पूर्ण इनका पवित्र चरित हम नारद वसुदेव संवाद के प्रसङ्ग से आगे (एकादश स्कन्ध में) कहेंगे ।

यवीयांस एकाशीतिर्जयन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया
यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा वभूः ॥ 13 ॥

इनसे छोटे जयन्ती के इक्यासी पुत्र पिता की आज्ञा का पालन करने वाले, अति विनीत, महान् वेदज्ञ और निरन्तर यज्ञ करने वाले थे। वे पुण्यकर्मों का अनुष्ठान करने से शुद्ध होकर ब्राह्मण हो गये थे।

ऋषभदेव द्वारा लोगों को शिक्षा दान

भगवानृषभसंज्ञ आत्मतन्त्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरम्परः केवलानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्मण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेऽपक्षियन्तद्विदां सम उपशान्तो भैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशः प्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥ 14 ॥

भगवान् वृषभदेव यद्यपि परम स्वतन्त्र होने के कारण स्वयं सर्वदा ही सब प्रकार की अनर्थ परम्परा से रहित केवल आनन्दानुभवस्वरूप और साक्षात् ईश्वर ही थे, तो भी अज्ञानियों के समान कर्म करते हुए उन्होंने काल के अनुसार प्राप्त धर्म का आचरण करके उसका तत्व न जानने वाले लोगों को उसकी शिक्षा दी। साथ ही सम, शान्त, सुहृद और कारुणिक रहकर धर्म, अर्थ, यश, सन्तान, भोग—सुख और मोक्ष का संग्रह करते हुए गृहस्थाश्रम में लोगों को नियमित किया।

यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥ 15 ॥

महापुरुष जैसा—जैसा आचरण करते हैं, दूसरे लोग उसी का अनुकरण करने लगते हैं।

यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपपायैर्जनतामनुशशास ॥ 16 ॥

यद्यपि वे सभी धर्मों के साररूप वेद के गूढ़ रहस्य को जानते थे, तो भी ब्राह्मणों की बतलाई हुई विधि से साम—दानादि नीति के अनुसार ही जनता का पालन करते थे।

द्रव्यदेशकालवयः श्रद्धत्विर्गिविधोद्देशोपचितैः सर्वेरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्वं इयाज ॥ 17 ॥

उन्होंने शास्त्र और ब्राह्मण के उपदेशानुसार भिन्न—भिन्न देवताओं के उद्देश्य से द्रव्य, देश, काल, आयु, श्रद्धा और ऋत्विज आदि से सुसम्पन्न सभी

प्रकार के सौ—सौ यज्ञ किये।

भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषो वाच्छात्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्त्यर्थनुसवनं विजृम्भित स्नेहातिशयमन्तरेण ॥ 18 ॥

भगवान् ऋषभदेव के शासनकाल में इस देश का कोई भी पुरुष अपने लिये किसी से भी अपने प्रभु के प्रति दिन—दिन बढ़ने वाले अनुराग के सिवा और किसी वस्तु की कभी इच्छा नहीं करता था। यही नहीं, आकाश—कुसुमादि अविद्यमान वस्तु की भाँति कोई किसी वस्तु की ओर दृष्टि पात भी नहीं करता था।

स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानपहितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्ति होवाच ॥ 19 ॥

एक बार भगवान् ऋषभदेव धूमते—धूमते ब्रह्मावर्त देश में पहुँचे। वहाँ बड़े—बड़े ब्रह्मर्षियों की सभा में उन्होंने प्रजा के सामने ही अपने समाहितचित्त तथा विनय और प्रेम के भार से सुसंयत पुत्रों को शिक्षा देने के लिये इस प्रकार कहा। (चतुर्थोऽध्याय श्रीमद्भागवत)

ऋषभनी का अपने पुत्रों को उपदेश देना और स्वयं अवधृति ग्रहण करना

ऋषभ उवाच—

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानहते विद्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्वं शुद्धयेद्यस्माद् ब्रह्मासौख्यं त्वनन्तम् ॥ 1 ॥

श्रीऋषभदेवजी ने कहा— पुत्रो ! इस मर्त्यलोक में यह मनुष्य शरीर दुःखमय विषयोग प्राप्त करने के लिए ही नहीं है। ये भोग तो विष्णुभोजी सूकरकूकरादि को भी मिलते ही हैं। इस शरीर से दिव्य तप ही करना चाहिये, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो, क्योंकि इसी से अनन्त ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है।

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्ग्निसङ्गम् ।

महान्तस्ते समचित्ता प्रशान्ताविमन्यवः सुहृदःसाधवो ये ॥ 2 ॥

शास्त्रों ने महापुरुषों की सेवा को मुक्ति का और स्त्री संगी कामियों के सङ्ग

को नरक का द्वार बताया है। महापुरुष वे ही हैं जो समानचित्त, परमशान्त, क्रोधहीन, सबके हितचिन्तक और सदाचार सम्पन्न हों।

ये पा मयीशो कृतसौहृदार्था जनेषु देहम्भखार्तिकेषु ।

गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥ 3 ॥

अथवा मुझे परमात्मा के प्रेम का ही जो एकमात्र पुरुषार्थ मानते हों, केवल विषयों की ही चर्चा करने वाले लोगों में तथा स्त्री, पुत्र और धन आदि सामग्रियों से सम्पन्न घरों में जिनकी असुचि हो और जो लौकिक कार्यों में केवल शरीर निर्वाह के लिये ही प्रवृत्त होते हों।

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।

न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥ 4 ॥

मनुष्य अवश्य प्रमादवश कुर्कर्म करने लगता है उसकी वह प्रवृत्ति इन्द्रियों को तृप्त करने के लिये ही होती है। मैं इसे अच्छा नहीं समझता, क्योंकि इसी के कारण आत्मा को यह असत् और दुःखदायक शरीर प्राप्त होता है।

पराभवरतावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ।

यावत्क्रिस्तावदिदं मनौ वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥ 5 ॥

जब तक जीव को आत्मतत्त्व की जिज्ञासा नहीं होती, तभी तक अज्ञान वश देहादि के द्वारा उसका स्वरूप छिपा रहता है। जब तक यह लौकिक-वैदिक कर्मों में फँसा रहता है, तब तक मन में कर्म की वासनाएँ भी बनी ही रहती हैं और इन्हीं से देह-बन्धन की प्राप्ति होती है।

एवं मनः कर्मवशं प्रयुद्धते अविद्याऽऽत्मन्युपधीयमाने ।

प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥ 6 ॥

इस प्रकार अविद्या के द्वारा आत्मस्वरूप के ढक जाने से कर्मवासनाओं के वशीभूत हुआ चित्त मनुष्य को फिर कर्मों में ही प्रवृत्त करता है। अतः जब तक उसको मुझ वासुदेव में प्रीति नहीं होती, तब तक वह देह बंधन से छूट नहीं सकता।

यदा न पश्यत्ययथा गुणेहां स्वार्थं प्रमतः सहसा विपक्षित् ।

गतस्मृतिर्विन्दत तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्जः ॥ 7 ॥

स्वार्थ में पागल जीव विवेक दृष्टि का आश्रय लेकर इन्द्रियों की चेष्टाओं को मिथ्या नहीं देखता, तब तक आत्मस्वरूप की सृति खो बैठने के कारण यह

अज्ञानवश विषयप्रधान गृह आदि में आसक्त रहता है और तरह-तरह के क्लेश उठाता रहता है।

इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्वं हि मे हृदयं यतर धर्मः ।

पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आशद् अतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥ 19 ॥

मेरे इस अवतार शरीर का रहस्य साधारण जनों के लिए बुद्धिगम्य नहीं है। शुद्ध सत्त्व ही मेरा हृदय है और उसी में धर्म की स्थिति है, मैंने अर्थम् को अपने से बहुत दूर पीछे की ओर ढकेल दिया है। इसी से सत्पुरुष मुझे ऋषभ कहते हैं।

मनतोऽप्यनन्तात्परतः परस्णात् स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किञ्चित् ।

येषां किमु स्यादितरेण तेषामकिञ्चनानांमयि भक्तिभाजाम् ॥ 25 ॥

मैं ब्रह्मादि से भी श्रेष्ठ और अनन्त हूँ तथा स्वर्ग मोक्ष आदि देने की भी सामर्थ्य रखता हूँ, किन्तु मेरे अकिञ्चन भक्त ऐसे निःपृह होते हैं कि वे मुझसे भी कभी कुछ नहीं चाहते, फिर राज्यादि अन्य वस्तुओं की तो वे इच्छा ही कैसे कर सकते हैं?

सर्वाणि मद्विष्यतया भवद्वि श्रराणि भूतानि सुता धुवाणि ।

सम्भावितव्यानि पदे पदे वो विविक्तदृग्भिस्तेदु हार्हणं मे ॥ 26 ॥

पुत्र ! तुम सम्पूर्ण चराचर भूतों को मेरा ही शरीर समझकर शुद्ध बुद्धि से पद-पद पर उनकी सेवा करो, यही मेरी सच्ची पूजा है।

मनोवचोदृक्करणोहितस्य साक्षात्कृतं मे परबर्हणं हि ।

विना पुमान् येन महाविमोहात् कृतान्तपाशान्त विभोक्तुमीशेत ॥ 27 ॥

मन, वचन, दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियों की चेष्टाओं का साक्षात् फल मेरा इस प्रकार का पूजन ही है। इसके बिना मनुष्य अपने को महामोहमय कालपाश से छुड़ा नहीं सकता।

स्वमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्गवानृषभोपदेश ।

श्री शुकदेव जी कहते हैं— राजन् ! ऋषभदेव जी के पुत्र यद्यपि स्वयं ही सब प्रकार सुशिक्षित है, तो भी लोगों को शिक्षा देने के उद्देश्य से महाप्रभावशाली परम सुहृद भगवान ऋषभ ने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया।

ऋषभदेव की दीक्षा

उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भवितज्ञान वैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपक्षिमाणः स्वतनय शतज्येष्टं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरित शरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवद्राज ॥ 28 ॥

ऋषभदेव जी के सौ पुत्रों में भरत सबसे बड़े थे। वे भगवान् के परमभक्त और भगवद्भक्तों के परायण थे। ऋषभदेव जी ने पृथ्वी का पालन करने के लिये उन्हें राजगद्वी पर बैठा दिया और स्वयं उपशमशील निवृत्तिपरायण महामुनियों के भक्ति, ज्ञान और वैराग्यरूप परमहंसोचित धर्मों की शिक्षा देने के लिए बिल्कुल विरक्त हो गये। केवल शरीर मात्र का परिग्रह रक्खा और सब कुछ घर पर रहते ही छोड़ दिया। अब वे वस्त्रों का भी त्याग करके सर्वथा दिगम्बर हो गये। उस समय उनके बाल बिखरे हुए थे। उन्मत्त का वेश था। इस रिथ्ति में वे आह्वनीय (अग्निहोत्र की) अग्नियों को अपने में ही लीन करके सन्यासी हो गये और ब्रह्मावर्त देश से बाहर निकल गये।

ऋषभदेव की तपश्चर्या

जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवृद्धूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां
गृहीत मौनवतस्तूष्णीं बभूव ॥ 29 ॥

वे सर्वथा मौन हो गये थे, कोई बात करना चाहता तो बोलते नहीं थे। जड़, अन्धे, बहरे, गृणे, पिशाच और पागलों की—सी चेष्टा करते हुए वे अवधूत बने जहाँ—तहाँ विचरने लगे।

कभी नगरों और गाँवों में चले जाते तो कभी खानों, किसानों की बसियों, बगीचों, पहाड़ी गाँवों, सेना की छावनियों, गोशालाओं, अहीरों की बसियों और यात्रियों के टिकने के स्थानों में रहते। कभी पहाड़ों, जंगलों, और आश्रम आदि में विचरते। वे किसी भी रास्ते से निकलते तो जिस प्रकार वन में विचरने वाली हाथी को मक्खियाँ सताती हैं, उसी प्रकार मूर्ख और दुष्टलोग उनके पीछे हो जाते और उन्हें तंग करते। कोई धर्मकी देते, कोई मारते, कोई पेशाब कर देते, कोई थूक देते, कोई ढेला मारते, कोई विष्टा और धूल फेंकते, कोई अधोवायु छोड़ते और कोई खरी—खोटी सुनाकर उनका तिरस्कार करते।

किन्तु वे इन सब बातों पर जरा भी ध्यान नहीं देते। इसका कारण यह था कि भ्रम से सत्य कहे जाने वाले इस मिथ्या शरीर में उनकी अहंता ममता तनिक भी नहीं थी। वे कार्य—कारणरूप सम्पूर्ण प्रपञ्च के साक्षी होकर अपने परमात्म स्वरूप में ही स्थित थे, इसलिये अखण्ड चित्तवृत्ति से अकेले ही पृथ्वी पर विचरते रहते थे।

अतिसुकुमारकरचरणोः स्थलविपुलवाह्वंसगलवदनाद्यवयविन्यासः प्रकृतिसुन्दरस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरतारारुणायतनयन—रूचिरः सदृशसुभागकपोलकर्णकण्ठनासो विगूढस्मितवनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासनमुपदधानः परागवलम्बमानकुटिलजटिलकपिशकेश—भूरिभारेऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यतं ॥ 31 ॥

यद्यपि उनके हाथ, पैर, छाती, लम्बी—लम्बी बाँहें, कंधे, गले और मुख आदि अङ्गों की बनावट बड़ी ही सुकुमार थी। उनका स्वभाव से ही सुन्दर मुख स्वाभाविक मधुर मुस्कान से और भी मनोहर जान पड़ता था, नेत्र नवीन कमल दल के समान बड़े ही सुहावने, विशाल एवं कुछ लाली लिये हुए थे, उनकी पुतिलयाँ शीतल एवं संतापहारिणी थीं। उन नेत्रों के कारण वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। कपोल, कान और नासिका छोटे—बड़े न होकर समान एवं सुन्दर थे, तथा उनके अस्फुट हास्य युक्त मनोहर मुखारविन्द की शोभा को देखकर पुरनारियों के चित्त में कामदेव का संचार हो जाता था, तथापि उनके मुख के आगे जो भूरे रंग की लंबी—लम्बी धुंधरावली लटें लटकी रहती थीं, उनके महान् भार और अवधूतों के समान धूलिधूसरित देह के कारण वे ग्रहग्रस्त मनुष्य के समान जान पड़ते थे।

यहि वाव स भगवान् लोकमिमं योगस्याद्वा प्रतीपमिवाच क्षाणस्तत्रतिक्रियाकर्म वीभत्सितमिति व्रतमाजगरमारिथितः।

जब भगवान् ऋषभदेव ने देखा कि यह जनता योग साधन में विघ्न रूप है, और इससे बचने का उपाय वीभत्सवृत्ति से रहना ही है, तब उन्होंने अजगरवृत्ति धारण कर ली।

एवं गोमृगकाकर्चर्यया व्रजस्तिष्ठन्नासीनः शायानः काकमृगगोचरितः पिबति खादव्यपमेहति स्म ।

इसी प्रकार गौ, मृग और काकादि की वृत्तियों को स्वीकार कर वे उन्हीं

युग निर्माता : ऋषभदेव

के समान कभी चलते हुए, कभी खड़े-खड़े, कभी बैठे हुए और कभी लेटे-लेटे ही खाने-पीने और मल-मूत्र का त्याग करने लगते थे।

इति नानायोगचर्याचरणे भगवान् कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरम-
महानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव
आत्मनोऽण्यवद्यानानन्तरोदरभावेन सिद्धसभरतार्थपरिपूर्णे ।

परम हंसों को त्याग के आदर्श की शिक्षा देने के लिये इस प्रकार मोक्षपति भगवान् ऋषभदेव ने कई तरह की योगचर्याओं का आचरण किया । वे निरन्तर सर्वश्रेष्ठ महान् आनन्द का अनुभव करते थे। उनकी दृष्टि में निरूपाधिकरूप से सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मा अपने आत्मस्वरूप भगवन् वासुदेव से किसी कदर का भेद नहीं था। इसलिये उनके सभी पुरुषार्थ पूर्ण हो चुके थे।

ऋषभदेव को ऋद्धि प्राप्ति

योगौश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धानपरकाप्रवेशदूरग्रहणादीनि
यदृच्छयोपगतानि नाज्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत ॥ 35 ॥

उनके पास आकाश गमन, मनोजवित्व (मन की गति के समान ही शरीर का भी इच्छा करते ही सर्वत्र पहुँच जाना), अन्तर्धान, परकाय प्रवेश (दूसरे के शरीर में प्रवेश करना), दूर की बातें सुन लेना और दूर के दृश्य देख लेना आदि सब प्रकार की सिद्धियाँ अपने आप ही सेवा करने को आयीं, परन्तु उनका मन से आदर वा ग्रहण नहीं किया ।

ऋषभदेव जी का देह त्याग (मुक्ति)

अथैवमखिललोक पालललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेष भाषा-
चरितैश्विलक्षित भगवत्प्रभावो योगिनां साम्परायविधिमनुशिक्षयन् स्वकलेवर
जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहि तमनर्थान्तर भावे नान्वीक्षमाण
उपरतानुवृत्तिरूपपरराम ॥ 6 ॥

इसी से भगवान् ऋषभदेव यद्यपि इन्द्रादि सभी लोकपालों को भी भूषण स्वरूप थे, तो भी वे जड़ पुरुषों की भाँति अवधूतों के से विविध वेष, भाषा और आचरण से अपने ईश्वरीय प्रभाव को छिपाये रहते थे। अन्त में उन्होंने योगियों को देहत्याग की विधि सिखाने के लिए अपना शरीर छोड़ना चाहा । वे अपने अन्तःकरण में अभेदरूप से स्थित परमात्मा को अभिन्नरूप से देखते हुए

युग निर्माता : ऋषभदेव

वासनाओं की अनुवृत्ति से छूटकर लिङ्गदेह के अभिमान से भी मुक्त होकर उपराम हो गये ।

तस्य वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत् ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन संक्रममाणः कोङ्कवेङ्ककुटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान् यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव विचार ॥ 7 ॥

इस प्रकार लिङ्गदेह के अभिमान से मुक्त भगवान् ऋषभदेवजी का शरीर योगमाया की वासना से केवल अभिमानाभास के आश्रय ही इस पृथ्वीतल पर विचरता रहा । वह दैववश कोङ्क, वेङ्क और दक्षिण आदि कुटक कर्णाटक के देशों में गया और मुँह में पत्थर का टुकड़ा डाले तथा बाल बिखरे उन्मत्त के समान दिगम्बर रूप से कुटकाचल के बन में घूमने लगा ।

अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोग्रदावानलस्त द्वन्मालेलिहानः सह तेन ददाह ॥ 8 ॥

इसी समय झंझावत से झकझोरे हुए बाँसों के घर्षण से प्रबल दावाग्नि धधक उठी और उसने सारे बन को अपनी लाल-लाल लपटोंमें लेकर ऋषभदेव जी के सहित भर्म कर दिया ।

कलियुग में ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित धर्म से भ्रष्ट लोग

यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोङ्कवेङ्ककुटकानां राजार्हन्नामोपशिक्ष्य कलावर्धम उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाखण्डमसमञ्जसं निजमनीषया मन्दः सम्पर्वत्यिष्ठते ॥ 9 ॥

राजन ! जिस समय कलियुग में अधर्म की वृद्धि होगी, उस समय कोङ्क, वेङ्क और कुटक देश का मन्दमति राजा अर्हत् वहाँ के लोगों से ऋषभदेव जी के आश्रमातीत आचरण का वृत्तान्त सुनकर तथा स्वयं उसे ग्रहण कर लोगों के पूर्वसञ्चित पापफलरूप होनहार के वशीभूत हो भय रहित स्वधर्म पथ का परित्याग करके अपनी बुद्धि से अनुचित और पाखण्डपूर्ण कुमार्ग का प्रचार करेगा ।

ऋषभदेव तथा उनके धर्म का महात्म्य

अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थः ॥ 12 ॥

भगवान् का अवतार रजोगुण से भरे हुए लोगों को मोक्षमार्ग की शिक्षा देने के लिये ही हुआ था ।

तस्यानुगुणान् श्लोकान् गायन्ति

अहो भुवः समसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ।

गायन्ति यत्रत्यजना मुरारे: कर्मणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥ 13 ॥

इसके गुणों का वर्णन करते हुए लोग इन वाक्यों को कहा करते हैं— अहो! सात समुद्रों वाली पृथ्वी के समस्त द्वीप और वर्षों में यह भारत वर्ष बड़ी ही पुण्य भूमि है, क्योंकि यहाँ के लोग श्रीहरि के मङ्गलमय अवतार चरित्रों का गान करते हैं ।

अहो नु वंशो यशसावदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान् पुराणः ।

कृतावतारः पुरुषः स आद्यः चचार धर्म यदकर्महेतुम् ॥ 14 ॥

अहो ! महाराज प्रियव्रत का वंश बड़ा ही उज्ज्वल एवं सुयशपूर्ण है, जिसमें पुराणपुरुष श्री आदिनारायण ने ऋषभावतार लेकर मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले परमहंसस्य धर्म का आचरण किया ।

को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ।

यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ॥ 15 ॥

अहो ! इन जन्मरहित भगवान् ऋषभदेव के मार्ग पर कोई दूसरा योगी मन से भी कैसे चल सकता है क्योंकि योगी जिन योगसिद्धियों के लिये लालायित होकर निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं, उन्हें इन्होंने अपने आप प्राप्त होने पर भी असत् समझकर त्याग दिया था ।

इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमीरितं पुसां समस्तदुश्चरिताभिहरणं परममहामङ्गलायनमिदमनु श्रद्धयोपचितयानुशृणोत्याश्रावयति वावहितो भगवति तस्मिन् वासुदेव एकान्ततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते ॥ 16 ॥

राजन् ! इस प्रकार सम्पूर्ण वेद, लोक, देवता, ब्राह्मण और गौओं के परमगुरु भगवान् ऋषभदेव का यह विशुद्ध चरित्र मैंने तुम्हें सुनाया । यह

मनुष्यों के समस्त पापों को हरने वाला है । जो मनुष्य इस परम मङ्गलमय पवित्र चरित्र को एकाग्रचित्त से श्रद्धापूर्वक निरन्तर सुनते या सुनाते हैं उन दोनों की ही भगवान् वासुदेव में अनन्य भक्ति हो जाती है ।

तरह-तरह के पापों से पूर्ण सांसारिक तापों से अत्यन्त तपे हुए अपने अन्तःकरण को पण्डितजन इस भक्ति सरिता में नित्य निरन्तर नहलाते रहते हैं । इससे उन्हें जो परम शान्ति मिलती है, वह इतनी आनन्दमयी होती है कि फिर वे लोग उसके सामने, अपने ही आप प्राप्त हुए मोक्षरूप परम पुरुषार्थ का भी आदर नहीं करते । भगवान् के निज जन हो जाने से ही उनके समस्त पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं ।

नित्यानु भूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः

श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुसबुद्धे ।

लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-

माख्यान्मो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥ 19 ॥

निरन्तर विषय-भोगों की अभिलाषा करने के कारण अपने वास्तविक श्रेय से चिरकाल तक बेसुध हुए लोगों को जिन्होंने करुणावश निर्भय आत्म लोक का उपदेश किया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव होने वाले आत्म स्वरूप की प्राप्ति से सब प्रकार की तृष्णाओं से मुक्त थे, उन भगवान् ऋषभदेव को नमस्कार है । (अथ षष्ठोऽध्यायः श्री भा. पुराणम् 1)

विभिन्न पुराणों में वर्णित ऋषभदेव

अग्नींधं सूनोर्नभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विजः ।

ऋषभाद् भरतो जसे वीरः पुत्र शताद्वरः ॥ 39 ॥

सोभिशिंच्वर्षभः पुत्रं महा प्रावान्य मास्थितः ।

तपस्तेये महाभागः पुलहान्य शंसयः ॥ 40 ॥

हिमाब्धं दक्षिणं वर्षभरताय पिता ददौ ।

तस्मात्तु भारतं वर्ष तस्य नामा महात्मनः ॥ 41 ॥

-मार्कण्डेय पुराण अध्याय 50 पृ. 150

हिमाव्यं तु यद्वृष्टं नामे रासीन्महात्मनाः ।

तस्यर्षभोऽभृत्युत्रो मेरु देव्या महा द्युति ॥ 36 ॥

युग निर्माता : ऋषभदेव

ऋषभाद् भरतो जसे वीरः पुत्रः शताग्रजः ।
सोऽभिशिंच्यर्षभः पुत्रं भरतं पृथिवीपतिः ॥ 38 ॥

-कूर्म पुराण अध्याय 41 पृ० 61

जरा मृत्युं भयं नास्ति धर्मा धर्मो युगादिकम् ।

नाधर्म मध्यमं हिमादेशातु नाभितः ॥ 10 ॥

ऋषभो मरुदेवयां च ऋषभात् भरतो भवत् ।

ऋषभोक्त श्री पुत्रे शाल्य ग्रामे हरि गतः ॥ 11 ॥

भरताद् भारतं वर्ष भरता सुमत्ति स्वभूत ॥ 12 ॥

-अग्नि पुराण अध्याय 10 पृ. 62

नाभि स्व जनयत्पुत्रं मरु देव्यां महाद्युतिः ।

ऋ, भं पार्थिव श्रेष्ठं सर्व क्षत्रस्य पूर्वजम् ॥ 50 ॥

ऋषभाद् भरतो जज्ञे परिः पुत्र शताग्रजः ।

सोऽभिशिंच्याप्य भरतं पुत्रं प्रावाज्यमास्थितः ॥ 51 ॥

हिमाहं दक्षिणं वर्ष भरतायन्य वेदयत् ।

तस्माद् भारतं वर्ष तस्य नामा विदुर्बुधाः ॥ 52 ॥

-वायु महापुराण पूर्वार्ध अध्याय 33 पृ. 61

नाभिस्त्वं जनयत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिम् ॥ 59 ॥

ऋषभं पार्थिवं श्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् ।

ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरं पुत्र शताग्रजाः ॥ 60 ॥

सोऽभिशिंच्यर्षभः पुत्रं महाप्रावाज्य मस्थितः ।

हिमावहं दक्षिणं पर्वतस्य नामा विदुर्बुधाः ॥ 61 ॥

-ब्रह्मण्ड पुराण पूर्वार्धं अनुषङ्ग पाद अध्याय 14 पृ. 24

नाभेषुरु देव्यां पुत्रमजनय ऋषभनामानं तस्य भरतो ।

पुत्रस्य तावदग्रजः तस्य भारतस्य पिता ऋषभः-

हिमाद्रेदक्षिणं वर्ष मदद भारतं नाम शशास ॥

-वराह पुराण अध्याय 74 पृ. 491

नाभोर्निसर्ग वदयामि हिमाकेस्मिन्ब बोधतः ।

नाभिस्त्वं जनयत्पुत्रं मरु देव्यां महामतिः ॥ 19 ॥

युग निर्माता : ऋषभदेव

ऋषभं पार्थिवः श्रेष्ठं सर्व क्षत्रस्य पूजितं ।

ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्र शताग्रजः ॥ 20 ॥

सोऽभिशिंच्याप्य ऋषभो भरतं पुत्र वत्सलः ।

ज्ञान वैराग्य माश्रित्य जितेन्द्रिय महोरगान ॥ 21 ॥

सर्वात्म नात्म निस्थाप्य परमात्मा नमीश्वरम् ।

नग्नो जटो निराहारो चोरी हवान्त गतो हिसः ॥ 22 ॥

निरारास्त्यक्त सन्देहः शैवमाप परं पदम् ।

हिमाद्रे दक्षिणं वर्ष भारतस्य न्यवेदत् ॥ 23 ॥

तस्मात् भारतं वर्ष तस्य नामा विदुर्बुधाः ।

-लिंग पुराण अध्याय 47 पृ. 68

नते स्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टु सुसवदा ।

हिमाव्हयं तुवै वर्ष नाभेरासीन्महात्मनः ॥ 27 ॥

तस्यर्षभो भवत् पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युतिः ।

ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्र शतस्य सः ॥ 28 ॥

-विष्णु पुराण द्वितीयांश अ. 1 पृ. 77, वेकंटेश्वर छापा बम्बई का

नाभे पुत्रश्च ऋषभः ऋषभाद् भरतो भवरत् ।

तस्य नामा पिहं वर्ष भारतं चेति कीर्त्यते ॥ 57 ॥

स्कंध पुराण माहेश्व खण्ड के कौभार ख. अ. 37

ऋषभं मा समनानां सपत्नानां विषासहिम् ।

हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गेपितं गवाम् ॥

अर्हन् विभर्षि सायकानि धन्वहिनिष्कं भजतं विश्वरूपं ।

अर्हनिदं दयसे विश्वमम्बं न घा ओ जीयोरुद्रत्वदस्ति ॥

-ऋग्वेद अ. 2 सू. 33 वर्ग 17

हे अर्हन् ! तुम वस्तु स्वरूप धर्मरूपी बाणों को, उपदेश रूपी धनुष को, तथा आत्म चतुर्थ्य रूप आभूषणों को धारण किये हो। हे अर्हन् ! आप संसार के सब प्राणियों पर दया करते हो और हे कामादिक को जलाने वाले ! आपके समान कोई रुद्र नहीं है ।

128 129

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

पुराणों के अनुसार इस समय ब्रह्मा जी की शतायु के पचास वर्ष (एक परार्ध) व्यतीत हो चुके हैं। सम्प्रति उनके इक्यावनवें वर्ष का श्वेत-वाराह-कल्प नामक प्रथम दिवस चल रहा है। (विष्णु. 1/3/28-)

द्वितीयस्य परार्धस्य वर्त्तमानस्य वै द्विज ।

वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकीर्तिः ॥

संकल्प वाक्यः

ॐ तत् सत् । अद्य ब्रह्माणो द्वितीयपरार्धं श्रीश्वेतवाराहकल्पे। इत्यादि)

इस दिवस के प्रारम्भ में उनके शरीर से स्वायम्भुव नामक प्रथम मनु उत्पन्न हुआ था। वह आद्य मानव अर्थात् प्रथम मनु इस कल्प के पहले मन्वन्तर का संस्थापक था। (विष्णु. 3/1/58-)

स्वायंभुवो मनुः पूर्वं।

स्वायंभुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं।

उसने मरीचि प्रमुख, अत्रि, अंगिरस, वशिष्ठ आदि सप्तरियों के साथ मिलकर इस भारत भूमि पर वेद यज्ञ धर्म की संस्थापना पहली बार की थी। वेदोन्नारक सप्तरियों ने विवाह, अग्निहोत्र तथा ऋग्यजुः सामवेद का त्रयीमय धर्म प्रवर्तित किया जबकि स्वायम्भुव मन के चार वर्णों की स्थापना करके चार आश्रम वाले लोक धर्म की स्थापना की थी, पुराणों में ऋषि प्रवर्तित धर्म श्रौत तथा मनु प्रवर्तित धर्म स्मार्त धर्म कहलाता है। (वायु. 5.7/39-41, 60)

तत्र त्रेतायुगस्यादौ मनुः समर्षयश्च ते ।

श्रौतं स्मार्तं च धर्मं च ब्रह्माणा च प्रचोदितम् ॥

दाराग्निहोत्रं संयोगमृग्यजुः सामरांज्ञितम् ।

इत्यादिलक्षणं श्रोतं धर्मं समर्षयोऽब्रुवन् ॥

परम्परागतं धर्मं स्मार्तं चाचारलक्षणम् ।

वर्णानां प्रविभागश्च त्रेतायां संप्रकीर्तिः ।

संहिताश्च ततो मन्त्रा ऋषिभर्बाह्यणैस्तुते ॥

इन स्वायम्भुव मनु के काल में ही यज्ञ धर्म का प्रवर्तन हुआ। तब यज्ञ का उद्देश्य वर्षा को प्राप्त करना था और वह यज्ञ दुर्घादि औषधियों से ही सम्पन्न

होता था। कालान्तर में जब सब लोग गृहस्थ धर्म में प्रतिष्ठित हो गये तब राजा वसु ने पशु हिंसा प्रधान अश्वमेध आदि यज्ञों का प्रवर्तन किया। पुराण कहते हैं कि हिंसा प्रधान इस अद्भुत यज्ञ-मार्ग के बलपूर्वक प्रवर्तन को देखकर कुछ ऋषियों ने उसका बहिष्कार किया और वे जैसे आए थे वैसे ही वापस चले गए।

(वायु. 5.7/61, 8.9, 9.2, 12.0)

यज्ञः प्रवर्त्तितश्चैव तदा ह्येवं तु दैवतैः ।

यामैः शुक्रे र्जपैश्चैव सर्वसंभारसंवृतैः ॥

यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत् प्रवर्तनम् ।

ओषधीषु च जातासु प्रकृते वृष्टिसर्जने ॥

प्रतिष्ठितायां वार्तायां गृहस्थाश्रममपुरेषु च ।

अथाश्वमेधे वितते समाजगमुर्महर्षयः ॥

यजन्ते पशुभिर्मेध्यैहु त्वा सर्वे समागताः ।

ततस्ते ऋषयो जृष्टवादभुतं वर्त्म बलेन तु ।

वसोर्वाक्यमनादूत्य जग्मुते वै यथागताः ॥)

लेकिन फिर भी यज्ञ हुआ और एक बार चल पड़ने पर वह रोका न जा सका।

जैन धर्म एवं संस्कृति के सूत्रधार भगवान् ऋषभदेव का जन्म भी इन्हीं परिस्थितियों में हुआ था। पुराणों के अनुसार वे आद्य मनु स्वायम्भुव के वंशज थे। उनकी वंश परम्परा देते हुए वहाँ बतलाया गया है कि मनु की चौथी पीढ़ी में प्रजापति के समान ओज वाले राजा नाभि से वृषभदेव उत्पन्न हुए। ऋषभ के पुत्र थे जिनके नाम पर यह देश भारतवर्ष कहलाया। (वायु. 3.315-52)

स्वायंभुवेऽन्नरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ।

प्रियव्रतस्य पुतैस्तैः पौत्रैः स्वायंभुवस्य तु ॥

अग्नीधश्च वपुष्मांश्च मेधा मेधातिथि विभुः ।

जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे अग्नीधं तु महाबलम् ॥

ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किंपुरुषोऽनुजः ।

नाभिस्त्वजनयंतु च मेरुदेव्यां महाद्युतिः ॥

ऋषभात् भरतो जज्ञे वीरं पुत्रशताग्रजः ।

सोऽभिषिद्याथ भरतः पुत्रं प्रावान्यमास्थितः ॥

हिमाह्वं दक्षिणां वर्षं भरताय न्यवेदयत् ।
तस्मात्तद् भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुः बुधाः ॥

—उद्धृत भारतीय सृष्टि विद्या, प्रथम खण्ड, लेखक—डॉ. प्रकाश

पुरातत्व (भूखनन) से सिद्ध ऋषभदेव

मोहंजे दड़ों (मुर्दों का टीला) की खुदाई में भी अनेक मोहरें आदि निकली हैं। इनमें से प्लेट नं. 2 की सील नं. 3, 4, 5 पर ध्यानावस्था की खड़गासन मूर्तियाँ हैं। इनके नीचे बैल का चिह्न है। ध्यान के मुख्य दोनों आसनों में पद्मासन का उल्लेख तो अन्य सम्प्रदाय के शास्त्रों में भी मिलता है, किन्तु खड़गासन के सम्बन्ध में यह बात नहीं देखी गई। खड़गासन का वर्णन तो खासतौर से जैन शास्त्रों में ही मिलता है। रायबहादुर प्रो. चन्दा ने भी इसको जैनियों का ही स्वीकार किया है—

"The Kayotsarga posture is peculiarly Jain. It is posture not of sitting but of standing. In the Adi Puran Book XVIII Kayotsarga posture is described in connection with the penances of Rishabha or Brashaba."

अर्थात्—कायोत्सर्ग आसन खासतौर से जैनों का है। यह बैठे हुए का आसन नहीं है, किन्तु खड़े का है। आदि पुराण अ. 18 में ऋषभ या वृषभ के सम्बन्ध में इसका उल्लेख मिलता है।

—Modern Review, August 1932

—प्रस्तुत सीलों में उल्लेखित ध्यानस्थ मूर्तियाँ जहाँ खड़गासन में हैं, वहीं इनके नीचे भगवान ऋषभदेव की अन्य मूर्तियों की तरह बैल का चिह्न भी है। यह बात यहीं तक नहीं है किन्तु सीलस्थ मूर्तियों की आकृति आदि अन्य बातें भी भगवान ऋषभदेव की कुशान कालीन मथुरावाली मूर्ति से मिलती हैं। प्रो. चन्दा ने इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित वाक्य लिखे हैं—

"A standing image of Jaina Rishaba in Kayotsarga posture steb showing four such images assignable to the second century A.D. in the Curzon museum of Archaeology Mathura, is reproduced in Fig 12.....Among the Egyptian sculptures of the time of the early dynasties, there are standing statuettes with arms haning on two sides. But though these early Egyptian statues & the archaic Greek Kourori show

nearly the same pose, they lack the feeling of abandon that characterizes the standing figures on the Indus seals and images of Jainas in the Kayotsarga posture. The name Rishaba means, bull and the bull is the emblem of 'Jina Rishaba.' The standing deity figured on seals three of five (Plate 11 E.G.H.) with a bull in the foreground may be the motto type of Rishaba. - Modern Review, Aug. 1932.

अर्थात्—ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी की मथुरा की ऋषभदेव की खड़गासन मूर्तिको, जो कि चार मूर्तियों के समान हैं जिनके दोनों हाथ लटक रहे हैं। इनिपश्यन की ये प्राचीन मूर्तियाँ हैं और ग्रीक की मूर्तियाँ एक जैसी हैं, किन्तु इनमें वैराग्य की दृष्टि का जो कि मोहंजो दड़ो और मथुरा की जैन मूर्तियों में पाची जाती हैं, शब्द 'ऋषभ' का अर्थ बैल है और यह ऋषभ—जिन का चिह्न है। प्लेट नं. 2 की तीन से पाँच न. तक की सीलों पर खड़ी हुई मूर्तियाँ जो कि बैल सहित हैं ऋषभ की नकल हैं। ऋग्वेद अष्ट. 8 अध्याय 7 वर्ग 24 में "मुनयोवात्वसनाः" ऐसा पाठ था। यह पाठ वैदिक साहित्य के विशेषज्ञ पाश्चात्य अनुसन्धानकर्ताओं ने स्वयं देखा है। डॉ. आल्बर्ट बेवट ने तो इसका अपनी कृतियों में उल्लेख भी किया है।

The Digambers appear to be the more ancient, or only in the Rik Samhita (136-2) is mentioned of—"wind Girdled Bachanters Munayah Vatavasanah" but they also appear to be referred to in the well Known accounts of Indian "Gem-no Sophists" of the time of Alexander the Great.

अर्थात्—दिगम्बर लोग (इवे. से) बहुत प्राचीन मालूम होते हैं, क्योंकि न केवल कृत्संहिता में इनका वर्णन — "मुनियों वात्वसनाः" अर्थात् पवन ही है वस्त्र जिनका, ऐसे मुनि—इस तरह आया है, बल्कि सिकन्दर के समय के हिन्दोरथान के जैन मुनियों का जो प्रसिद्ध इतिहास है, उससे भी यही प्रगट होता है।

It is impossible to find the begining of Jainism.

जैन धर्म के प्रारम्भ को जानना असंभव है। — फरलाँग साहब

'Concerning the antiquity of Jainism comparatively to Budhisam, the former is truly more ancient than the latter. There is very great ethical value in Jainism for men's improvement. Jainism is a very

original, independent and systematical doctrine."

जैन धर्म और बौद्ध धर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में मुकाबला करने पर जैन धर्म में वास्तव में बहुत प्राचीन है। मानव समाज की उन्नति के लिये जैन धर्म में सदाचार का बड़ा मूल्य है। जैन धर्म एक मौलिक, स्वतन्त्र और नियमित सिद्धान्त है।

— डॉ. ए. गिरनाट, फ्रेंच विद्वान्

The discoveries have to very large extent supplied corroboration to the written Jain tradition and they offer tangible and incontrovertible proof the antiquity of the Jain religion and of its early existence very much in its present form. The series of twenty four pontiffs (Tirthankaras) each in his distinctive emblem was evidently firmly believed in at the beginning of the Christian era.

—श्री विन्सेन्ट स्मिथ

आचार्य कल्प पण्डित टोडरमल जी ने अपने "मोक्षमार्ग प्रकाशक" में बताया है कि प्रथम तीर्थकर ऋषभ, द्वितीय अजित, सप्तम सुपर्श्व, 22 वें अरिष्ट नेमि और 24वें महावीर का उल्लेख यजुर्वेद में है। उन्होंने यजुर्वेद का निम्नलिखित मन्त्र उद्धृत किया है।

"ओं ऋषभ पवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परममाह संस्तुतं वरं शत्रुजंयं पशुरिन्द्रं माहुरिति स्वाहा । ओं त्रातारमिन्द्रं ऋषभं वदन्ति । अमृतारमिन्द्रं हवां सुगतं सुपार्श्वमिन्द्रं हवे शक्रमजितं तद्वद् धर्ममानं पुरुहूत माहुरिति स्वाहा । ओं नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मागर्भं सनातनं उपैभि वीरं पुरुषं महान्तमादित्यं वर्णं तप्तसः परस्तात् स्वाहा । ओं स्वरितं न इन्द्रो वृद्धश्च्रावाः, स्वरितं नः पूषा विश्ववेदाः स्वरितं नस्ताक्ष्यो अरिष्ट नेमिः स्वरितं नो बृहस्पतिर्दधातु दीर्घायु—स्त्वायुर्बलायुर्वा शुभजातायुः ओं रक्ष अरिष्ट नेमिः स्वाहा ।"

—उद्धृत आ. कल्प प. टोडरमल "मोक्षमार्ग प्रकाशक" पृ. 208

बाहृत और आहृत

वेदों में प्रयुक्त विषयों पर विचार करने से पता चलता है कि वैदिक काल के पूर्व से ही भारतीय संस्कृति में दो परम्पराएँ विद्यमान थीं, जो 'बाहृत' और 'आहृत' के नाम से प्रख्यात थीं। यज्ञ-योग संस्कृति को मानने वाली 'बाहृत' और कर्म प्रधान संस्कृति में श्रद्धा रखने वाली 'आहृत' थीं।

'बाहृत' किसी अलौकिक शक्ति में विश्वास रखते थे, जिनकी श्रद्धा थी कि कुछ भी दिखालाई पड़ता है, हो रहा है और होगा वह सब उस एक अलौकिक शक्ति का ही चमत्कार है। वह अलौकिक शक्ति 'ब्रह्म' अथवा ईश्वर है और द्रष्टव्य दृश्य सब उनके वंश अथवा ईश्वर है, और द्रष्टव्य ब्राह्मण संस्कृति के नाम से विश्रुत हुई।

वैदिक काल का 'भर्ग' ही परिवर्तित काल में पुरुष रूप में विवेचित है और आगे चलकर उसकी अभिनव व्याख्या 'पुरुष' और 'प्रकृति' के रूप में की गई है। ऋग्वेद में सब कर्मों का परिपाक करने वाले को भर्ग कहा गया है। जो 'ईश्वर' या 'देव' के रूप में प्रतिपादित है।

भर्गो ह नामोत यस्य देवाः स्वर्ण ये त्रिष्ठेस्ये निषेदुः ।

अग्निर्हं नामोत जातवेदाः श्रुधी नो होतर्झतस्य होताधुक् ॥

(ऋग्वेद 10,61, 14)

'ऋग्वेद' में वेद और ब्रह्म के उपासकों को 'बाहृत' और वेदवाणी को 'बृहती' कहते हैं। 'बृहती' की उपासना करने वाले को ब्रह्मचारी कहते हैं। ये इन्द्रियों का संयमन नियमन कर वीर्य की रक्षा करते हैं। ऐसे वेदोपासक ब्रह्मचारी को ही 'बाहृत' की संज्ञा दी गई है। ब्रह्म या ब्राह्मण संस्कृति के पुरस्कर्ता 'बाहृत' थे।

आच्छद्विधानैर्गुपुषितो बाहृतैः सोम रक्षितः ।

गाव्यामिच्छृण्वन् निष्ठुसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥

(ऋग्वेद 10.854)

'आहृत' आत्मवादी लोग थे। उनका सर्वमान्य सिद्धान्त था 'जे अप्पा से परमप्पा' अर्थात् आत्मा ही अपने शुद्ध स्वाभाविक रूप में परमात्मा है। उसके अशुद्ध एवं विकारी होने के कारण कर्म बन्धन है। आत्मा का कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाने का नाम मुक्ति है।

वैदिकाल के पूर्व से ही ब्राह्मण संस्कृति एवं सृष्टि-कर्तव्य विरोधी ब्रात्य या साध्यश्रेणी के लोग आहृत संस्कृति के प्रसारक थे। ये ईश्वर को सृष्टि का कर्ता नहीं मानते थे। उनका विश्वास था (और है) कि सृष्टि प्राकृतिक नियमों द्वारा ही निर्मित है। मनुष्य अनुपम शक्तिशाली है। सृष्टि की सर्वशक्तियों में महत्तम है प्रचलित है कि —

साध्यों ने सरस्वती और सिन्धु के संगम पर विज्ञान भवन स्थापित कर सूर्य का निर्माण किया था। (देवदत शास्त्री रचित 'चिन्तन के नए चरण' पृ. 98)। 'आर्हत' लोगों का कर्म बन्धन और उसकी निर्जरा में ही विश्वास था। आर्हत ही जैनों के पूर्वज हैं।

'आर्हत' प्रमुख रूप से क्षत्रिय थे। क्षत्रिय बौद्धिक जीवन में विशेष रुचि लेते थे। 'महाभारत व उपनिषदों' के अनेक आख्यान इस बात के प्रमाण हैं कि आत्म विद्या का रहस्य वैदिक ऋषियों के पास नहीं था, वह केवल क्षत्रियों के पास ही था और वैदिकों ने उनसे ही प्राप्त किया था। जैनों के चौबीसों तीर्थकर क्षत्रिय थे।

"रामायण" में जनक विदेह की उपाधि से विभूषित हैं, उनसे आत्म विद्या की शिक्षा ली जाती थी। क्षत्रियों की श्रेष्ठता उनकी रक्षात्मक शक्ति के कारण नहीं अपितु आत्म विद्या के धनी होने के कारण ही थी।

'महाभारत' के शान्ति पर्व (201-4) में महर्षि बृहस्पति ने प्रजापति से, छान्दोग्योपनिषद् (7-1) में नारद ने सनकुलमारों से, कठोपनिषद् में नचिकेता ने 'यम' से और 'असुर' राजाओं के पराजय होने पर आर्य नेता 'इन्द्र' ने दैत्यराज (असुर-राज) बलि, नमुचि और प्रह्लाद से आत्म विद्याका रहस्य पूछा है। इन्द्र का प्रश्न था-'असुर राज ! तुम्हारा राज्य छीन लिया गया, तुम शत्रु के हाथों में हो, फिर भी तुम्हारी आकृति पर कोई शोक-चिह्न नहीं है। यह कैसे ?' असुर राजाओं का उत्तर था-'यह आत्मविद्या का प्रभाव है।' बलि, नमुचि, प्रह्लाद राज्य च्युत होने पर भी जिस प्रकार से शोक मुक्त रहे यह उनकी अध्यात्म विद्या का ही प्रतिफल था। 'इन्द्र' उनके धैर्य को देख आश्रय से चकित रह गया।

(महाभारत, शान्तिपर्व 22/7/13)

उपर्युक्त उदाहरणों से इतना तो स्पष्ट है कि उपनिषद् काल तक वैदिक ऋषियों में आत्म तत्व के ज्ञान की प्रबल जिज्ञासा थी। इससे यह भी लक्षित होता है कि 'वैदिक ज्ञान' आत्म ज्ञान की तुलना में हीन था। न तो उसमें अमरत्व था और न अभ्यत्व ही। यह भी स्पष्ट है कि आत्म ज्ञान लेना ही पूर्ण ज्ञान नहीं था। किसी वस्तु को जान लेने मात्र से उसका गुण प्राप्त नहीं किया जा सकता। इन्द्र और नारद जैसों का आत्म ज्ञान के लिये लालायित होना उसकी उल्कृष्टता का प्रमाण है। ब्राह्मण काल में जो यज्ञ यागों की तूती बोलती थी, उपनिषद् काल में उसका स्थान 'आत्म विद्या' ने ग्रहण कर लिया था।

उपनिषदों में वैदिक यज्ञों का मूल्य न्यून हो गया है। मुण्डक (1/2/7)

के अनुसर यज्ञीय कर्मकाण्ड को श्रेयस्कर मानने वाले लोग मूढ़ हैं। वृहदारण्यक (1/4/10) में देवों को आहृति देने वाले व्यक्तियों की तुलना उन पशुओं से, की गई है, जो अपने स्वामी के लाभ के लिये कार्य करते हैं। ऐतरेय तथा आरण्यक (2/3/6) में कहा है कि किसलिए हम वेदों का अध्ययन करें ? किसलिए हम यज्ञ करें ? हम तो प्राण की वाक् में और वाक् की प्राण में आहृत देते हैं।

मुण्डोपनिषद् (1/1/2/3-3/2/6) में अध्ययन के सब विषयों को जैसे चार वेद, छ: वेदाङ्ग आदि को अपरा विधि के अन्तर्गत गिनाया गया है। 'परा-विद्या' शब्द सर्वोच्च ज्ञान अथवा आत्म ज्ञान के लिए ही सुरक्षित है। यही उपनिषद् का इष्ट विषय है। सब विद्याओं में यह श्रेष्ठ है, वेद का अन्त (वेदान्त) अर्थात् वैदिक विज्ञान का अन्तिम और सबसे ऊँचा ज्ञान माना गया है।

'आर्हत' धर्म के प्रवर्तक जैनों के प्रथम तीर्थकर श्री ऋषभदेव हैं। प्रथम होने के कारण इन्हें 'श्री आदिनाथ' भी कहा जाता है। श्रीमद्भागवत में योगेश्वर वातरशना एवं श्रमण ऋषियों में ऊर्ध्वगामी कहे गये हैं। "वातरशनानां श्रमणाना मृषीणामूर्ध्वमन्थिना शुक्ल्या तनुवावतार ॥" (भा. 5/3/20)। भागवत के ही अनुसार 'श्री वासुदेव' (नारायण) का आठवाँ अवतार श्री नाभिराजा की भार्या महारानी 'मरुदेवी' की कोख से 'श्री ऋषभदेव' के रूप में हुआ और उसने सब आश्रमों द्वारा नमस्कृत मार्ग दिखलाया।

अष्टमे मेरुदेव्या तु नाभेजति उरुक्रमः ।

दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ 1,3,13)

इसीलिए श्री ऋषभदेव को मोक्ष धर्म की विवक्षा से वासुदेवांश कहा गया है। (भा. 11/2/16)

श्री ऋषभदेव को योगेश्वर लिखा है (भा. 5/4/3)। श्री ऋषभदेव को एक सौ पुत्र थे, उनमें नौ आत्म विद्या-विशारद थे (भा 11/2/20)। ज्येष्ठ पुत्र भरत महायोगी थए (भा. 5/4/9)। महाभारत में 'हिरण्यगर्भ' ही योग का पुरातन विद्वान् है, दूसरा नहीं (शा. पर्व 349-65)। भगवान् ऋषभदेव का उल्लेख हिरण्यगर्भ के नाम से हुआ है। "यजुर्वेद" में कहा है कि "ऋषभ" धर्मप्रवतकों में ज्येष्ठ है।

'श्री ऋषभदेव' ने ही सर्वप्रथम यह घोष किया था कि - 'मनुष्य अपनी शक्ति का विकास कर आत्मा से परमात्मा बन सकता है। प्रत्येक आत्मा में

परमात्मा विद्यमान है। जो आत्म सांधना से अपने देवत्व को प्रकट कर लेता है, वही परमात्मा बन जाता है।' इस मान्यता की पुष्टि 'ऋग्वेद' (4/58-3) की निम्न ऋचा से होती है –

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षेसप्तहस्ता को अस्य ।
त्रिधा बद्धो 'वृषभो' रोरवीति
महो देवो मर्त्या आ विवेश ॥

अर्थात् जिसके चार शृंग (अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान, अनन्त चारित्र और अनन्त वीर्य) हैं, तीन पाद (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र) हैं, दो शीर्ष (केवल ज्ञान और मुक्ति) हैं और सात हाथ (सात व्रत) तथा मन, वचन और काय इन तीन योगों से बद्ध (संयत) है। उस वृषभ (श्री ऋषभदेव) ने घोषणा की है कि महादेव (परमात्मा) मनुष्य के भीतर ही आवास करता है।

अथर्ववेद (19/42/4) तथा यजुर्वेद में भी इस मान्यता के प्रमाण हैं।

(साभार – अर्हत् जैन टाइप्स)

निषिक्रयेन्द्रियसंकाशा मानवास्ते महीतले ।
पादद्वयं नमस्यन्ति ये नाष्टगुणधारिणः ॥
जो मनुष्य अहं गुणों से मणित परब्रह्म के आगे सिर नहीं झुकाता,
वह उस इन्द्रिय के समान है, जिसमें अपने गुणों को ग्रहण करने की शक्ति
नहीं है ।
जन्ममृत्युमहाम्योद्यः पारं गच्छन्ति ते जनाः ।
पावनौ शरणं दोषां योगीन्द्रियरणौ धुवम् ॥
जन्म-मरण के समुद्र को दी ही पार कर सकते हैं, जो प्रभु के वरणों की
शरण में आ जाते हैं। दूसरे लोग उसे तर ही नहीं सकते ।

अध्याय 8

आदिनाथ के विभिन्न रूप

1. जगत के कर्ता हर्ता –

जथापश्चदुच्चैर्ज्वलत्पीढ मूर्छिन स्थितं देवदेवं चतुर्वक्त्रशोभम् ।
सुरेन्द्रै नरेन्द्रै मुनीन्द्रैश्च वन्द्यं जगतसृष्टि संहारयोर्हेतुमादाम् ॥ 12 ॥

जो ऊँची और दैपीयमान पीठिका के ऊपर विराजमान थे, देवों के भी देव थे, चारों ओर दिखने वाले चारमुखों की शोभा से सहित थे, सुरेन्द्र, नरेन्द्र और मुनीन्द्रों के द्वारा वंदनीय थे। जगत की सृष्टि (मोक्ष मार्ग रूपी सृष्टि को उत्पन्न करने वाले) और संहारकर्ता (पापरूपी सृष्टि को संहार करने वाले) के मुख्य कारण थे।

2. स्वयंभू –

स्वयंभुवे नमस्तु भ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि ।
स्वात्मनैव तथोद्भुत वृत्तयेऽचिन्त्य वृत्तये ॥ 66 ॥

आदिपुराण पर्व-25

हे नाथ ! आप अपने आत्मा में अपने ही आत्मा के द्वारा, अपने आत्मा को उत्पन्न कर प्रकट हुए हैं, इसलिए आप स्वयंभू अर्थात् अपने आप उत्पन्न हुए कहलाते हैं। इसके सिवाय आपका माहात्म्य भी अचिन्त्य है, अतः आपको नमस्कार हो ।

3. विश्व के स्वामी –

नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्ते नमोऽस्तु ते ।
विदांवर नमस्तु भ्यं नमस्ते वदतां वरं ॥ 67 ॥

आप तीनों लोकों के स्वामी हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो और आप लक्ष्मी के भर्ता हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप विद्वानों में श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको नमस्कार हो और आप वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ।

4. अनंतजित् –

ध्यान द्रुघण निर्भिन्न धनधाति महातरुः ।
अनन्त भव सन्तान ज्यादासीदनन्त जित् ॥ 69 ॥

आपने ध्यानरूपी कुठार से अतिशय मजबूत घातिया कर्म रूपी बड़े भारी वृक्ष को काट डाला है तथा अनंत संसार की सन्तति को भी आपने जीत लिया है इसलिये आप अनन्तजित् कहलाते हैं ।

5. मृत्युंजय-

त्रैलोक्य निर्जया वासदुर्दर्थं मति दुर्जयम् ।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जनमृत्युञ्जयो भवान् ॥ 70 ॥

हे जिनेन्द्र देव ! तीनों लोकों को जीत लेने से जिसे भारी अहंकार उत्पन्न हुआ है और जो अत्यन्त दुर्जय है ऐसे मृत्युराज को भी आपने जीत लिया है, इसलिए आप मृत्युञ्जय कहलाते हैं ।

6. त्रिपुरारि -

विधुताशेष संसार बन्धनो भव्य बान्धवः ।
त्रिपुरारिस्त्वं मीशासि जन्ममृत्यु जरान्त कृत् ॥ 71 ॥

आपने संसाररूपी समस्त बन्धन नष्ट कर दिये हैं, आप भव्य जीवों के बन्धु हैं, आप जन्म, मरण और बुद्धापा तीनों का नाश करने वाले हैं इसलिए आप त्रिपुरारि कहलाते हैं ।

7. त्रिनेत्र -

त्रिकाल विषया शेष तत्व भेदात् त्रिधोत्थितम् ।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः ॥ 72 ॥

हे ईश्वर ! जो तीनों काल विषयक समस्त पदार्थों को जानने के कारण तीन प्रकार से उत्पन्न हुआ कहलाता है, ऐसे केवल ज्ञान नामक नेत्र को आप धारण कहते हैं इसलिये आप ही त्रिनेत्र कहलाते हैं ।

8. अन्धकान्तक -

त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुर मर्दनात् ।
अर्धं ते नारयो यस्मादर्थं नारीश्वरोऽस्यतः ॥ 73 ॥

आपने मोहरूपी अन्धासुर को नष्ट कर दिया है, इसलिए विद्वान् लोग आपको ही अन्धकान्तक कहते हैं ।

9. अर्धनारीश्वर - 8 कर्म रूपी शत्रुओं में से आपके आधे अर्थात् चार घातिया कर्मरूपी शत्रुओं को ईश्वर नहीं है इसलिए आप अर्धनारीश्वर

(अर्ध+न+अरि+ईश्वर=अर्धनारीश्वर) कहलाते हैं ।

10. शिव-

शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरितारि हरो हरः ।

शंकरः कृतशं लोके शंभवस्त्वं भवन्सुखे ॥ 74 ॥

आप शिव पद अर्थात् मोक्षस्थान में निवास करते हैं इसलिए शिव कहलाते हैं ।

11. हर- पाप रूपी शत्रुओं का नाश करने वाले हैं इसलिए हर कहलाते हैं ।

12. शङ्कर- लोक में शान्ति करने वाले हैं इसलिए शङ्कर कहलाते हैं ।

13. संभव- सुख से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए सम्भव कहलाते हैं ।

14. वृषभ- वृषभोऽसि जगन्न्येष्ठ पुरुः पुरुगुणोदयैः ।
नाभेयो नाभि संभूतेरिक्षाकु कुलनन्दनः ॥ 75 ॥

जगत में श्रेष्ठ हैं इसलिए 'वृषभ' कहलाते हैं ।

15. पुरु- अनेक उत्तम गुणों का उदय होने से पुरु कहलाते हैं ।

16. नाभेय- नाभिराज से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए नाभेय कहलाते हैं ।

17. इक्ष्वाकुकुलनन्दन- इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न हुए हैं, इसलिए इक्ष्वकुकुलनन्दन कहलाते हैं ।

18. सद्योजात- स्वर्गावतरणेतुभ्यं सद्योजातात्मने नमः ।
जन्माभिषेक रामाय वामदेव नमोऽस्तु ते ॥ 78 ॥

हे नाथ ! आप स्वर्गावतरण के समय सद्योजात् अर्थात् शीघ्र ही उत्पन्न होने वाले कहलाये थे, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

19. वामदेव- आप जन्माभिषेक के समय बहुत सुन्दर जान पड़ते थे, इसलिए हे वामदेव ! आपको नमस्कार हो ।

20. ईश्वर-

सन्निष्कान्तवधोराय परं प्रशमभीयुषे ।

केवल ज्ञान संसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते ॥ 79 ॥

दीक्षा कल्याणक के समय आप परम शान्ति को प्राप्त हुए और केवल ज्ञान के प्राप्त होने पर परम पद को प्राप्त हुए तथा ईश्वर कहलाये। इसलिए नमस्कार हो।

21. विभु-

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः ।

विश्वव्यापी विधिर्वेद्यः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥ 102 ॥

समस्त पदार्थों को देखने वाले हैं, इसलिए विश्वदृश्वा हैं। केवल ज्ञान की अपेक्षा सब जगह व्याप्त हैं अथवा सब जीवों को संसार से पार कराने में समर्थ हैं अथवा परमोत्कृष्ट विभूति से सहित हैं, इसलिए विभु हैं।

22. धाता- संसारी जीवों का उद्धार कर उन्हें मोक्षस्थान को धारण कराने वाले हैं, पहुँचाने वाले हैं अथवा मोक्ष मार्ग की सृष्टि करने वाले हैं, इसलिए धाता कहलाते हैं।

23. विश्वेश— समस्त जगत के ईश्वर हैं इसलिए विश्वेश कहलाते हैं।

24. विश्वलोचन— सब पदार्थों को देखने वाले हैं अथवा सबका हित सन्मार्ग का उपदेश देने के कारण सब जीवों के नेत्रों के समान हैं, इसलिए विश्वलोचन कहे जाते हैं।

25. विश्वव्यापी — संसार के समस्त पदार्थों को जानने के कारण आपका ज्ञान सब जगह व्याप्त है, इसलिए आप विश्वव्यापी कहलाते हैं।

26. विधि— आप समीचीन मोक्षमार्ग का विधान करने से विधि कहलाते हैं।

27. वेधा— धर्मरूप जगत की सृष्टि करने वाले हैं, इसलिए वेधा कहलाते हैं।

28. शाश्वत— सदा विद्यमान रहते हैं, इसलिए शाश्वत कहलाते हैं।

29. विश्वतोमुख— समवशरण में आपका मुख चारों दिशाओं में दिखता है अतः आप विश्वतोमुख अथवा जल की तरह पाप रूपी पंक को दूर करने वाले स्वच्छ तथा तृष्णा को नष्ट करने वाले हैं, इसलिए आप विश्वतोमुख कहे जाते हैं।

30. विश्वकर्मा —

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः ।

विश्वदृग् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥ 103 ॥

आपने कर्मभूमि की व्यवस्था करते समय लोगों की आजीविका के लिए असि, मसि आदि सभी कर्मों-कार्यों का उपदेश दिया था, इसलिए आप विश्वकर्मा कहलाते हैं।

31. जगज्ज्येष्ठ — आप जगत में सबसे ज्येष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ हैं, इस लिए जगज्ज्येष्ठ कहे जाते हैं।

32. विश्वमूर्ति — आप अत्यन्त गुणमय हैं अथवा समस्त पदार्थों के आकार आपके ज्ञान में प्रतिफलित हो रहे हैं, इसलिए आप विश्वमूर्ति हैं।

33. जिनेश्वर— कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाले सम्यग्दृष्टि आदि जीवों के आप ईश्वर हैं, इसलिए जिनेश्वर कहलाते हैं।

34. विश्वभूतेश — समस्त प्राणियों के ईश्वर हैं, इसलिये विश्वभूतेश कहे जाते हैं।

35. विश्वदृक् — आप संसार के समस्त पदार्थों का सामान्यावलोकन करते हैं, इसलिए विश्वदृक् कहलाते हैं।

36. विश्वज्योति — आपकी केवल ज्ञानरूपी ज्योति अद्वितीय संसार में व्याप्त है, इसलिए आप विश्वज्योति कहलाते हैं।

37. अनीश्वर— आप सबके स्वामी हैं किन्तु आपका कोई स्वामी नहीं है, इसलिये आप अनीश्वर कहे जाते हैं।

38. युगादि पुरुष—

युगादि पुरुषो ब्रह्मा पञ्च ब्रह्ममयः शिवः ।

परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥ 1 ॥

आप इस कर्मभूमि रूपी युग के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए थे, इसलिये आदि पुरुष कहे जाते हैं।

39. ब्रह्मा— केवलज्ञान आदि गुण आप में ब्रह्मण अर्थात् वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं, इसलिये आप ब्रह्मा कहे जाते हैं।

40. पंच ब्रह्ममय — आप पंच परमेष्ठी स्वरूप हैं, इसलिये पंच ब्रह्ममय कहलाते हैं।

41. शिव — शिव अर्थात् मोक्ष अथवा आनन्द रूप होने से शिव कहे जाते हैं।

42. पर— आप सब जीवों का पालन अथवा समस्त ज्ञान आदि गुणों को पूर्ण करने वाले हैं, इसलिये पर कहलाते हैं ।

43. परतर— संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं, इसलिए परतर कहलाते हैं ।

44. सूक्ष्म—इन्द्रियों के द्वारा आपका आकार नहीं जाना जा सकता अथवा नामकर्म का क्षय हो जाने से आप में बहुत शीघ्र सूक्ष्मत्व गुण प्रकट होने वाला है, इसलिये आपको सूक्ष्म कहते हैं ।

45. परमेष्ठी—परमपद में रिथत हैं, इसलिये परमेष्ठी कहलाते हैं ।

46. सनातन—सदा एक से ही विद्यमान रहते हैं, इसलिये सनातन कहे जाते हैं ।

47. सहस्रशीर्ष— अनन्त सुखी होने से सहस्रशीर्ष कहलाते हैं ।

48. क्षेत्रज्ञ—क्षेत्र अर्थात् आत्मा को जानने से क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं ।

49. सहस्राक्ष—अनन्त पदार्थों को जानते हैं, इसलिये सहस्राक्ष कहे जाते हैं ।

50. सहस्रपात— अनन्त बल के धारक हैं, इसलिये सहस्रपात कहलाते हैं ।

51. भूतभव्यभवद्वर्ता— भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के स्वामी हैं इसलिये भूतभव्यभवद्वर्ता कहे जाते हैं ।

52. विश्वविद्यामहेश्वर—समस्त विद्याओं के प्रधान स्वामी है, इसलिए विश्वविद्यामहेश्वर कहलाते हैं ।

53. बुद्ध—

बुद्धो दशबलः शाक्यः षडभिज्ञस्तथागतः ।

समन्त भद्रः सुगतः श्रीघनो भूतकोटिदिक् ॥ 110 ॥

-जिन सहस्रनाम

हे बोधि के निधान ! आप केवल ज्ञान रूप बुद्धि के धारण करने वाले हैं, इसलिए बुद्ध कहलाते हैं अथवा सर्व जगत को जानते हैं, इसलिए भी बुद्ध कहलाते हैं ।

54. दश बल— आपके क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दश धर्म बल अर्थात् सामर्थ्य रूप हैं, इसलिए आप दश बल कहलाते हैं अथवा “द” शब्द दया और बोध का वाचक है, इन दोनों के द्वारा आप सबल अर्थात् सामर्थ्यवान्

हैं इसलिए भी योगीजन आपको दश बल कहते हैं । श्लेषार्थ की अपेक्षा “स” और “श” में बोध नहीं होता । बौद्धमत में बुद्ध के दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान, शान्ति, सामर्थ्य, उपाय, प्राणिधान और ज्ञान ये दश बल माने गये हैं ।

55. शाक्य— जो सर्वशक्ति वाले कार्यों के करने में समर्थ हो, उसे शक कहते हैं, इस निरुक्ति के अनुसार तीर्थकरों के पिता शक कहे जाते हैं । आप उनके पुत्र हैं इसलिये शाक्य कहलाते हैं । अथवा ‘श’ अर्थात् सुख और अक यानी ज्ञान को धारण करने से भी आप शाक्य कहलाते हैं । बौद्धमत में बुद्ध को शक राजा का पुत्र माना जाता है ।

56. षडभिज्ञ— जीवादि छह द्रव्यों को उनके अनन्त गुणों और पर्यायों के साथ भली भाँति जानने से आप षडभिज्ञ कहलाते हैं । बुद्ध के दिव्य चक्षु, दिव्य श्रोतृ, पूर्वभवस्मरण, परिचित्तज्ञान, आस्त्रवक्ष्य और ऋद्धि ये छह अभिज्ञा मानी जाती हैं, इसलिए उन्हें षडभिज्ञ कहते हैं ।

57. तथागत— आपने वस्तु स्वरूप को तथा कहिए यथार्थ, गत अर्थात् जान लिया है इसलिए आप तथागत कहलाते हैं ।

58. समन्तात्—आप समन्तात् अर्थात् सब ओर से भद्र हैं, जगत के कल्याण कर्ता हैं अथवा आपका स्वभाव अत्यन्त भद्र है, इसलिए आप समन्तभद्र कहलाते हैं ।

59. सुगत— सुन्दर गत अर्थात् रल सुवर्णादि रूप लक्ष्मी को वषणि के लिए आप घन के समान हैं क्योंकि आपके स्वर्गावतार के पूर्व से ही भूतल पर रल सुवर्ण की वर्षा होने लगती है। इसलिए श्रीघन कहलाते हैं अथवा केवलज्ञान रूप लक्ष्मी से आप घनीभूत अर्थात् निवृत्त हैं, अखण्ड ज्ञान के पिण्ड हैं ।

60. भूतकोटिदिक्— भूत अर्थात् प्राणियों की कोटि कहिए, अनन्त संख्या का उपदेश देने के कारण आप भूतकोटिदिक् कहलाते हैं । आपके मतानुसार प्राणियों की संख्या अनन्त है, निरन्तर मोक्ष को जाने पर भी उनका कभी अन्त नहीं आता अथवा प्राणियों के कोटि-कोटि पूर्व और उत्तर भवों को आप जानते हैं उनका उपदेश देते हैं अथवा प्राणियों को जो मिथ्या उपदेश के द्वारा कोटियन्ति कहिए, आकुल व्याकुल करते हैं, ऐसे जैमिनि, कपिल, कणाद आदि को भी आप सन्मार्ग का उपदेश देते हैं अतः भूतकोटिदिक् कहलाते हैं अथवा जीवों के कोटि अर्थात् ज्ञानादि गुणों की अतिशय वृद्धि का उपदेश देते हैं ।

हैं अथवा अनन्त प्राणियों के आप विश्वास स्थानभूत हैं, उनके आश्रयदाता हैं, इसलिए भी आपका यह नाम सार्थक है।

62. सिद्धार्थ –

सिद्धार्थो मारजिच्छास्ता क्षणिकैक सुलक्षण ।

बोधिसत्त्वो निर्विकल्प दर्शनोऽद्वयवाद्यपि ॥ 111 ॥

आपका अर्थ अर्थात् चारों पुरुषार्थ सिद्ध हो चुके हैं, अतः आप सिद्धार्थ हैं अथवा सिद्ध अवस्था को प्राप्त करना ही आपका अर्थ कहिए प्रयोजन है अथवा जीव-अजीव आदि नव पदार्थ आपके द्वारा प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं, इसलिए आप सिद्धार्थ कहलाते हैं अथवा मोक्ष का कारण भूत अर्थ कहिए रलत्रय आपको सिद्ध हुआ है, इसलिये भी आपका नाम सार्थक है।

63. मारजित – मार अर्थात् काम विकार के जीत लेने से आप मारजित कहलाते हैं अथवा मा अर्थात् लक्ष्मी जिनके समीप रहती है ऐसे इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्रादि को मार कहते हैं, उन्हें अपने दिव्य उपदेश के द्वारा जीत लिया है। बुद्ध ने स्कन्धमार, क्लेशमार, मृत्युमार और देवपुत्रमार इन चारों मारों को जीता था, इसलिए उन्हें मारजित कहते हैं।

64. शास्ता – सत्य धर्म का उपदेश देने के कारण आप शास्ता कहलाते हैं।

65. क्षणिकैकसुलक्षण – सभी पदार्थ क्षणिक हैं अर्थात् प्रति समय उत्पाद व्यय और धौव्य रूप हैं, एक रूप स्थायी नहीं है, इस प्रकार का एक अर्थात् अद्वितीय सुन्दर सर्वज्ञता का प्रतिपादक लक्षण आप के पाया जाता है, अतः आप क्षणिकैकसुलक्षण कहलाते हैं।

66. बोधिसत्त्व – रलत्रय की प्राप्ति को बोधि कहते हैं, इस बोधि का सत्य अर्थात् शक्ति रूप से अस्तित्व सर्व प्राणियों में पाया जाता है इस प्रकार का उपदेश देने के कारण आप बोधिसत्त्व कहलाते हैं अथवा बोधिरूप सत्य अर्थात् बल आप में पाया जाता है।

67. निर्विकल्प दर्शन – आपने दर्शन को सत्ता मात्र का ग्राहक और निर्विकल्प अर्थात् विकल्प शून्य प्रतिपादन किया है, अतः आप निर्विकल्प दर्शन कहलाते हैं अथवा आपने मतान्तर रूप अन्य दर्शनों को निर्विकल्प अर्थात् विचार शून्य प्रतिपादन किया है क्योंकि उनका कथन प्रमाण से बाधित है।

68. अद्वयवादी – एक-अनेक, नित्य-अनित्य, सत्-असत् आदि द्वैतों को द्वय कहते हैं, आपने इन सबको अप्रमाणित कहा है, अतः आप अद्वयवादी कहलाते हैं, अथवा निश्चनय के अभिप्राय से आत्मा और कर्मरूप द्वैत नहीं हैं, ऐसा आपने कथन किया है इसलिए आपको अद्वयवादी कहते हैं।

69. योग –

योगो वैशेषिकस्तुच्छाभावाभित्वट् पदार्थ दृक् ।

नैयायिकः षोडशार्थवादि पंचार्थ वर्णकः ॥ 114 ॥

हे भगवान् ! आपमें ध्यान रूप योग पाया जाता है, अतः आप योग हैं।

70. वैशेषिक – इन्द्रियज ज्ञान को सामान्य और अतीन्द्रिय ज्ञान को विशेष कहते हैं। आप अतीन्द्रिय केवल ज्ञान के धारी हैं, अतः वैशेषिक कहलाते हैं।

71. तुच्छाभावभित् – वैशेषिकों ने अभाव को भवान्तर स्वभावी न मानकर तुच्छ अर्थात् शून्य रूप माना है परन्तु आपने उसका खण्डन करके उसे भवान्तर स्वभावी अर्थात् अन्य पदार्थ के सद्भाव स्वरूप सिद्ध किया है, अतः आप तुच्छाभावभित् कहलाते हैं।

72. षट् पदार्थ दृक् – वैशेषिकों ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय नामक छह पदार्थों को भावात्मक माना है पर आपने उनका सबल युक्तियों से खण्डन कर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह पदार्थों का उपदेश दिया है, अतः आप षट् पदार्थ दृक् कहलाते हैं।

73. नैयायिक – जिसके द्वारा पदार्थ ठीक-ठाक जाने जाते हैं उसे न्याय कहते हैं। आप स्याद्वाद न्याय के प्रयोक्ता हैं, अतः नैयायिक कहलाते हैं।

74. षोडशार्थवादी – नैयायिक मतवाले प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रह स्थान इन सोलह पदार्थों को मानने के कारण षोडशार्थवादी कहलाते हैं परन्तु आपने बताया कि दूसरों को छल, जाति आदि के द्वारा वचन जाल में फँसाकर जीतने का नाम न्याय नहीं है और न ही संशय, छल, वितण्डा, जाति आदि के पदार्थपना बनता है। इसके विपरीत आपने दर्शन विशुद्धि,

विनय सम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्षणज्ञानोपयोग, अभीक्षण संवेग, शक्तिस्त्वया, शक्तिस्तप, साधु समाधि, वैयावृत्यकरण, अहंभक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्ग प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य ये तीर्थकर प्रकृति के उपार्जन कराने के कारण प्रयोजनभूत 16 पदार्थों का उपदेश दिया है, अतः आप ही सच्चे षोडशार्थवादी हैं ।

75. पंचार्थवर्णक- आपने पंच अस्तिकाय रूप अर्थों का वर्णन किया है, अतः आप पंचार्थवर्णक कहलाते हैं ।

76. सांख्य -
सांख्यः समीक्ष्यः कपिलः पंचविंशतितत्ववित् ।

व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानी ज्ञानचैतन्य भेददृक् ॥ 116 ॥

संख्या अर्थात् गणना किये जाने पर ईश्वर के अन्वेषण किये जाने पर आदि में, मध्य में या अन्त में आप ही प्राप्त होते हैं । आपके अतिरिक्त अन्य कोई परमेश्वर की गिनती में नहीं आता, अतः आपको लोग सांख्य कहते हैं ।

77. समीक्ष्य -आप सम्यक् अर्थात् अच्छी तरह ईक्ष्य कहिए देखने के योग्य हैं, अतः समीक्ष्य कहलाते हैं अथवा समी कहिए समभाव वाले योगियों के द्वारा ही आप ईक्ष्य हैं, दृश्य हैं, अन्य के अगोचर हैं, अतएव समीक्ष्य कहे जाते हैं ।

78. कपिल - कपि अर्थात् बन्दर के समान चंचल मन को जो लावे अर्थात् वश में करे, आत्मा में स्थापित करे, उसे कपिल कहते हैं अथवा 'क' अर्थात् परमब्रह्म को भी जो लावें उसे कपिल कहते हैं । आपने अपने ध्यान के बल से परमब्रह्म स्वरूप को प्राप्त किया है और जीवात्मा से परमात्मा बने हैं अतः आप कपिल कहलाते हैं ।

79. पंचविंशति तत्ववित् - अहिंसादि पाँचों व्रतों को 25 भावनाओं के तत्व अर्थात् रहस्य को जानने के कारण अथवा आस्वव के कारणभूत सम्प्रकृत्य क्रिया आदि 25 क्रियाओं के स्वरूप को हेयोपादेय रूप से जानने के कारण पंचविंशति तत्ववित् कहलाते हैं । सांख्य लोग प्रकृति, महान् अहंकार आदि 25 तत्वों को मानते हैं और उन्हें जानने के कारण कपिल को पंचविंशति तत्ववित् कहते हैं ।

80. व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानी - व्यक्त अर्थात् इन्द्रियों के गोचर ऐसे संसारी जीव और अव्यक्तज्ञ अर्थात् इन्द्रियों के अगोचर ऐसे सिद्ध जीव, इन दोनों के अन्तर को आप भली-भाँति से जानने वाले हैं, इसलिए आप व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानी कहलाते हैं ।

81. ज्ञान चैतन्य भेददृक् - ज्ञान के भेद हैं और चेतना के ज्ञान चेतना, कर्म चेतना और कर्मफल चेतना ये तीन भेद हैं । केवली भगवान् के ज्ञान चेतना ही होती है । स्थावर जीवों के कर्मफल चेतना ही होती है । त्रस जीवों के कर्म चेतना और कर्मफल चेतना ये दो होती हैं । आप ज्ञान और चैतन्य अर्थात् चेतना के भेदों या उनके पारस्परिक सम्बन्ध के यथार्थ दर्शी हैं, अतः ज्ञान चैतन्य भेददृक् कहलाते हैं ।

विभिन्न भारतीय वाङ्मय के अध्ययन से सिद्ध होता है कि ऋषभदेव एक महान् धर्म, समाज, शिक्षा, कला, राजनीति, जीवन निर्वाह प्रणाली के समर्थ आविष्कारक, संस्थापक, प्रचारक थे । आदिनाथ भगवान् का व्यापक कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण इहलोक, परलोक, ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता, संस्कृति, व्यक्ति -समष्टि में था । भोगभूमि के अवसान के पश्चात् कर्मभूमि के प्रारम्भ के समय में जो जटिल परिस्थितियाँ मनुष्य समाज के समुख आई थीं, उनको आदिनाथ ने स्वप्रज्ञा से समाधान करके एवं उचित मार्ग समाज को दृष्टिगोचर कराकर समाज सुधार करके कर्मभूमि की, व्यवस्था की, स्थापना की थी । यौवनावस्था में स्वयं समाज नेता (राजा) बनकर तथा सर्व संन्यास व्रत धारण कर केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् मोक्षमार्ग का आविष्कार-साक्षात्कार एवं नवीन जीवन पद्धति देने के कारणों से वे आदि ब्रह्म रूप में प्रख्यात हुए । इसलिए आदिनाथ भगवान् प्रजापति, ब्रह्मा, सृष्टिकर्ता, विधाता कहलाये ।

असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि जीवन निर्वाह प्रणाली बताने से, राज्य शासन काल में प्रजाओं को न्यायनीति से पालन करने से तथा तीर्थकर अवस्था में चतुर्विध संघ एवं द्वादशविध गणों को परिचालन संचालन करने के कारण पालन कर्ता विष्णु स्वरूप हुए ।

कर्मभूमि के संक्रमण काल में भयभीत प्रजाओं को उचित मार्ग दिखाकर उनका भय नष्ट करने के कारण, राजा बनकर न्याय अनुशासन से अन्याय का निरसन करने से निर्ग्रन्थ मुनि बनकर रलत्रय रूपी त्रिशूल से मोहन्धरूपी

राक्षस का संहार करने से, देवाधिदेव तीर्थकर बनकर दिव्य अमृतवाणी से, भव्यों के कर्म कलंक को नाश करने से, तथा अंत में द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रूपी संसार को विध्वंस करके सदाशिव रूपी सिद्ध अवस्था प्राप्त करने के कारण महेश (रुद्र) स्वरूप हुए ।

ऋषभदेव बनाम वृषध्वज (महादेव)

जैन दर्शन तथा हिन्दुओं के पुराण भागवत में वर्णित वृषभदेव तथा हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध देव वृषध्वज (महेश) में एक आर्थर्यजनक साम्य है । हिन्दू धर्मानुसार वृषभदेव का लाज्जन (चिह्न) वृषभ है । वृषभ का अन्य अर्थ, धर्म तथा श्रेष्ठ होता है । जो धर्म में श्रेष्ठ है, वही वृषभ है ।

हिन्दू धर्मानुसार महेश का निवास स्थान कैलाश पर्वत पर है । जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् की साधना, विहार एवं परिनिर्वाण स्थल कैलाश पर्वत है ।

हिन्दू धर्मानुसार महादेव त्रिशूलधारी हैं एवं त्रिशूल के माध्यम से अंधकासुर का वध किया था । जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र रूपी त्रिशूल (रत्नत्रय) से मोहांधकार रूपी वैरी का विध्वंस किया था ।

हिन्दू धर्म में वर्णित है कि महेश के अर्धअंग स्त्री (पार्वती) और अर्धअंश पुरुष (ईश्वर) स्वरूप है । इसलिए महेश अर्धनारीश्वर स्वरूप हैं । जैन धर्मानुसार वृषभदेव ने घातिकर्म रूप अर्ध अंतरंग शत्रुओं को विध्वंस करके ईश्वरत्व (तीर्थकरत्व) अवस्था को प्राप्त किया था । इसीलिए अर्धनारीश्वर कहलाये हैं । अर्धनारीश्वर का अर्थ ‘‘जीवन्मुक्त परमात्मा’’ होता है ।

हिन्दू धर्मानुसार महादेव ने कामदेव को तृतीय नेत्र से भस्म किया था । जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् ने आध्यात्मिक ज्ञानरूपी तृतीय नेत्र से अंतरंग कामवासना को नष्ट किया था । महादेव का तीसरानेत्र जैन धर्मानुसार अन्तर्दृष्टि आध्यात्मिक ज्ञान या केवलज्ञान है ।

हिन्दू धर्मानुसार महेश विशेषतः शमशान में संचार करते थे । जैन धर्मानुसार वृषभदेव ध्यान साधना के लिए एकान्त वनप्रदेश, शमशान में भी रहते थे ।

हिन्दूधर्मानुसार रुद्र विभूति धारण करते थे । जैन दर्शनानुसार आदिनाथ

भगवान् आध्यात्मिक विभूति के धारक थे ।

महादेव भूतनाथ थे । जैन दर्शनानुसार आदिनाथ, भूत अर्थात् प्राणी मात्र के उद्धारक तथा उपदेशक होने के कारण प्राणियों के उपकारक (भूतनाथ) थे ।

हिन्दूधर्मानुसार ईश्वर जटाधारी थे । जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् दीक्षा के अनन्तर 6 महीने तक योग साधना धारण करने के कारण केशलोचन नहीं कर पाये थे । इसलिये केश बढ़कर जटारूप हो गये थे ।

हिन्दू धर्मानुसार महेश महादेव हैं । जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् चतुर्निकाय देव एवं 100 इन्द्रों से पूजित होने के कारण महादेव हैं ।

हिन्दू धर्म में महेश को शिवशंकर कहते हैं । आदिनाथ भगवान् समस्त कर्मों को नाश करके शाश्वतिक मोक्षपद प्राप्त करने के कारण शिव (शाश्वतिक, मंगल) हैं । शङ्कर (पवित्र करने वाले) हैं ।

उपरोक्त अनेक सन्दर्भों में एक विचित्र साम्य दृष्टिगोचर होता है । इसमें जो विषमता है, वह केवल वर्णनात्मक प्रणाली के कारण है । हिन्दू धर्म में जो महेश का वर्णन है, वह स्थूल बाह्य अलंकार है । जैन दर्शन में जो वर्णन है वह सूक्ष्म, अन्तरंग एवं आध्यात्मिक यथार्थपरक है । प्राचीन काल में कवि, लेखक, उपदेशक, ऋषि जटिल गूढ़ रहस्य को साधारण जन के बोधगम्य के लिये रूपक, अलंकारात्मक भाषा में आदर्श को प्रतिपादित करते थे । जैन दर्शन में जो ऋषभदेव का सूक्ष्म आध्यात्मिक यथार्थ वर्णन है, वही सत्य स्वरूप का वर्णन रूपक भाषा में, हिन्दू धर्म में किया गया है । अतः वृषभदेव ही वृषध्वज (वृषभचिह्नित) हैं । वृषभ लाज्जित वृषभदेव ही वृषध्वज सिद्ध होते हैं परन्तु कालक्रम से दोनों में सत्य व आदर्श में भिन्नता होते होते अन्ततः पूर्णतः भिन्न हो गया है ।



अध्याय 9

ऋषभदेव के 10 अवतार

इसी जम्बूद्वीप में अपरविदेह क्षेत्र के भीतर गन्धिला देश के मध्य में विजयार्थ पर्वत है। उसकी उत्तर श्रेणी में एक अलकापुर नामक नगर है। उसमें अतिबल नामक राजा राज्य करता था। रानी का नाम मनोहरी था। इन दोनों के एक महाबल नाम का पुत्र था। उसको राज्य के कार्य में नियुक्त करके अतिबल ने दीक्षा ले ली। वह तपथरण करके केवलज्ञानी होता हुआ मोक्ष को प्राप्त हुआ। महाबल विद्याधरों का चक्रवर्ती था। उसके महामति, संभिन्नमति, शतमति और स्वयम्बुद्ध नाम के चार मन्त्री थे। इनकी सहायता से वह राज्य कार्य करता था। वह अनुक्रम से अतिशय वृद्ध हो गया था। एक समय स्वयम्बुद्ध मन्दर पर्वत पर गया। वह जिनालयों की पूजा करके जैसे ही अपने नगर की ओर आने को उद्यत हुआ वैसे ही युगंधर तीर्थकर के समवसरण से आदित्यगति और अरिंजय नाम के दो चारण-ऋषि आकाश मार्ग से नीचे आये। उस समय युगंधर तीर्थकर का समवसरण पूर्व विदेह के भीतर सीता नदी के उत्तर तट पर स्थित कच्छा देश में अरिष्टपुर को सुशोभित कर रहा था। उनको नम्रकार कर स्वयम्बुद्ध ने पूछा कि प्रभो! महाबल धर्म को ग्रहण नहीं कर रहा है, इसका कारण क्या है? उत्तर में मुनि बोले कि मैं महाबल के पूर्व नव के वृत्तान्त कहता हूँ-इसी देश में आर्यखण्ड के भीतर एक सिंहपुर नाम का गर है। उसमें श्रीषेण नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम सुन्दरी ग। उनके जयवर्मा और श्रीवर्मा नाम के दो पुत्र थे। इनमें बड़ा पुत्र जयवर्मा पृथ्वीहीन था इसलिए श्रीषेण ने दीक्षा लेते समय जयवर्मा को राजा न बनाकर श्रीवर्मा को राजा बनाया था। इससे विरक्त होकर जयवर्मा स्वयम्प्रभाचार्य के मीप जाकर दीक्षित हो गया। उसे बालों को बिल के भीतर रखते समय सर्प ने गट लिया था। इसी समय एक महीधर नाम का विद्याधर विमान में बैठकर श्रूति के साथ वहाँ से जा रहा था। उसे देखकर महाबल ने निदान किया कि स तप के प्रभाव से मैं विद्याधर होऊँगा। इसी निदान के कारण वह महाबल

होकर विषय भोगों को छोड़ने के लिए असमर्थ हो रहा है। परन्तु आज रात्रि में उसने स्वप्न में देखा है कि उसे महामति आदि तीन मन्त्रियों ने पकड़कर दुर्गन्धयुक्त कीचड़ में डुबा दिया है। उसमें से निकालकर तुमने उसे स्नान कराते हुए सिंहासन पर बैठाया और पूजा की। अपने इस स्वप्न के वृत्तान्त को सुनने के लिए वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। जब तक वह उस स्वप्न के वृत्तान्त को तुम्हें नहीं सुनाता है तक तक तुम उसके पहिले ही उस स्वप्न के वृत्तान्त को कह देना। इससे वह दृढ़तापूर्वक धर्म को ग्रहण कर लेगा। अब उसकी आयु केवल एक मास ही शेष रही है। इस वृत्तान्त को सुनकर स्वयम्बुद्ध ने उन दोनों मुनियों को नमस्कार किया और अपने नगर को वापिस चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने महाबल राजा से उस स्वप्न के वृत्तान्त को उसी प्रकार से कह दिया। इससे वह अतिशय वैराग्य को प्राप्त हुआ। तब उसने पुत्र अतिबल को राज्यपद पर प्रतिष्ठित किया और फिर सर्व जिनालयों में जाकर अर्थाहिक पूजा की। तत्पश्चात् सिद्धकूट से ऊपर जाकर उसने परिजन को विदा किया और स्वयम्बुद्ध के उपदेशानुसार केशलोंच करते हुए दीक्षा ले ली। दीक्षा के साथ ही उसने प्रायोपगमन संन्यास को भी ग्रहण कर लिया। इस प्रकार से वह बाईंस दिन में शरीर को छोड़कर ईशान कल्प के अन्तर्गत स्वयंप्रभ विमान में ललितांग नाम का महर्षिक देव हुआ। उसके स्वयंप्रभा, कनकमाला, कनकलता और विद्युलता ये चार महा देवियाँ थीं। आयु उसकी दो सागरोपम प्रमाण थी। इस बीच पाँच-पाँच पल्यों की आयु में उसकी वे बहुत-सी देवियाँ मरण को प्राप्त हो गईं। अन्त में जब उसकी पाँच पल्य मात्र आयु शेष रह गई तब स्वयंप्रभा नाम की जो देवी उत्पन्न हुई वह उसे अतिशय प्यारी हुई। उसके साथ वह सुखपूर्वक स्थित रहा। तत्पश्चात् छह मास प्रमाण आयु के शेष रह जाने पर जब मरण के चिह्न दिखने लगे तब वह बहुत दुःखी हुआ। उसकी वैसी अवस्था देखकर सामानिक देवों ने उसे सम्बोधित किया। तब वह समचित्त होकर-विषाद को छोड़कर-मरा और फिर इसी पूर्वविदेह के भीतर पुष्कलावती देश में स्थित-उत्पलखेट पुर के राजा वज्रबाहु और वसुन्धरी के वज्रजंघ नामक पुत्र हुआ। और वह स्वयंप्रभादेवी उस ईशान कल्प से च्युत होकर उसी पुष्कलावती देश के भीतर स्थित पुण्डरीकिणी पुर के राजा वज्रदन्त एवं रानी लक्ष्मीमती के श्रीमती नाम की पुत्री हुई। वह क्रमशः यौवन अवस्थाओं को प्राप्त होकर सुखपूर्वक स्थित थी। एक समय

ज्रदन्त राजा सभा भवन में बैठा हुआ था। उस समय दो पुरुषों ने आकर वेदन किया कि हे देव ! आपके पिता यशोधर भट्टारक तीर्थकर को केवलज्ञान त्पत्र हुआ है तथा आयुधशाला में चक्रतल भी उत्पत्र हुआ है। उसी समय वही ने आकर प्रार्थना की हे देव ! देवों के आगमन को देखकर श्रीमती चिर्षित हो गई हैं। तब वज्रदन्त राजा उस से शीतोपचार क्रिया के द्वारा श्रीमती औ मूर्छा को दूर करने के लिये कहकर समवसरण को चला गया। वहाँ यशोधर जिनेन्द्र की वन्दना करने के पश्चात् विशुद्धि की अधिकता से उस ज्रदन्त चक्रवर्ती को देशावधिज्ञान प्राप्त हो गया। तत्पश्चात् उसने दिव्यजय लिया। इधर श्रीमती ने मौन धारण कर लिया। तब पण्डिता ने उससे एकान्त में स मौन के कारण को पूछा। उत्तर में श्रीमती ने कहा कि देवों के आगमन को देखकर मुझे पूर्वभवों का स्मरण हुआ है। इसी से मैंने मौन का आश्रय लिया है। वह पण्डिता बोली कि फिर उन भवों का वृत्तान्त मुझे सुनाओ। इस पर उसने पने पूर्व भवों का वृत्तान्त इस प्रकार से कहा— हे पण्डिते! धातकी खण्ड द्वीप पूर्व मेरु सम्बन्धी अपरविदेह में एक गन्धिला देश है। उसमें एक पाटली नाम गाँव है। वहाँ पर एक नागदत्त नाम का वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का म वसुमती था। इनके नन्दी, नन्दीमित्र, नन्दिसेन, वरसेन और जयसेन नाम पाँच पुत्र और मदनकान्ता व श्रीकान्ता नामकी दो पुत्रियाँ थीं। इनके पश्चात् व मैं आठवीं पुत्री माता के गर्भ में आयी तब पिता का मरण हो गया। पश्चात् मेरा जन्म होने पर वे सब भाई और दोनों बहिने भी मर गई, इसके बात् कुछ ही दिनों में मेरी माता की माता (नानी) और फिर थोड़े ही वर्षों में ता भी कूच कर गई। तब निर्नामिका नामकी एक मैं ही शेष रही। एक समय चारण चरित नामके वन में प्रविष्ट होकर उसके बीच में स्थित अम्बर तिलक रित के ऊपर चढ़कर गई। वहाँ मैंने पाँच सौ चारण ऋषियों के साथ विराजमान हेतान्त्रव मुनि को देखा। उनको नमस्कार करके मैंने पूछा कि मैं किस पाप के रण इस प्रकार की हुई हूँ ? मुनि बोले—इसी देश के भीतर पलालकूट नाम के व में एक देविल नाम का ग्रामकूट (गाँव का मुखिया) रहता था। उसकी श्वी नाम वसुमती था। इनके एक नागश्री नामकी पुत्री थी। एक बार नागश्री ने मैं क्रीड़ास्थान के पास में स्थित वटवृक्ष के खोते में विराजमान समाधिगुप्त को देखा। वे उस समय परमागम का पाठ कर रहे थे। नागश्री को यह सहन

नहीं हुआ। इसलिए उसे रोकने के लिए उसने एक कुत्ते के सड़े—गले दुर्गन्धित शरीर को उस वट वृक्ष के नीचे डाल दिया। उसको देखकर मुनि ने कहा कि हे पुत्री ! ऐसा करके तुमने अपने लिए अनन्त दुःख का भाजन बना लिया है यह सुनकर नागश्री ने वहाँ से उक्त कुत्ते के मृत शरीर को हटा दिया। तत्पश्चात् उसने मुनि के पाँवों में गिरकर इसके लिए बार-बार क्षमा प्रार्थना की। वही आयु के अन्त में मरकर तू उत्पत्र हुई है। पीछे शान्त परिणाम हो जाने से तूने मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार मुनि के कहने पर मैंने (निर्नामिका ने) अपने योग्य व्रतों को ग्रहण कर लिया। साथ ही मैंने कनकावली और मुक्तावली आदि उपवासों को भी किया। इस प्रकार से आयु के अन्त में शरीर को छोड़कर मैं श्री प्रभ विमान में ललितांग देवकी स्वयंप्रभा नामकी देवी हुई थी। जब मेरी आयु छह महीने शेष रही थी तब ललितांग वहाँ से च्युत हो गया। वह कहाँ पर उत्पत्र हुआ है, यह मैं नहीं जानती हूँ। इस जन्म में यदि वही वर प्राप्त हो जाता है तो मैं भोगों का उपभोग करूँगी, अन्यथा नहीं। इस प्रकार से प्रतिज्ञा करके वह श्रीमती श्रीप्रभ विमान में स्थित रहने के समय के अपने और लिलतांग देव के चित्रों को पटपर लिखकर उन्हें देखती हुई समय बिताने लगी। उधर वज्रदन्त चक्रवर्ती छह खण्डस्त्रूप पृथ्वी को स्वाधीन करके अपने नगर में आया और भवन में प्रविष्ट हुआ। जिस दिन वह चक्रवर्ती वापिस नगर में आया उसी दिन पण्डिता उस चित्रपट को लेकर गई। चक्रवर्ती के साथ मैं आये हुए राजाओं में से शायद इसे देखकर किसी को जातिस्मरण हो जाय, इस विचार से वह पण्डिता समस्त जनों से आराधनीय महापूत नामक जिनालयों में पहुँची। वह वहाँ उस चित्रपट को एक स्थान में टांगकर गुप्त स्वरूप से उसे देखती हुई वहाँ पर स्थित हो गई। इधर श्रीमती पिता को नमस्कार करके उसके पास मैं आ बैठी। उसके मलिन मुख को देखकर चक्रवर्ती बोला कि हे पुत्री ! तेरे पति का मिलाप अवश्य होगा, तू इसके लिए चिन्ता मत कर।

मेरा वह प्रियतम कहाँ पर उत्पत्र हुआ है, यह मुझे बतलाइये। इस प्रकार श्रीमती के पूछने पर वज्रदन्त ने कहा कि वह उत्पलखेट पुर के राजा वज्रबाहु और मेरी बहिन (नानी) वसुंधरी के वज्रजंघ नामका पुत्र हुआ है। वज्रबाहु भी मुझसे मिलने के लिए यहाँ कल प्रातःकाल मैं आवेगा। साथ मैं वज्रजंघ भी आवेगा। उसे पण्डिता के द्वारा ले जाये गये चित्रपट को देखकर जातिस्मरण हो

जावेगा। तब वह पण्डिता से अपने पूर्व भवों के वृत्तान्त को कहेगा। पण्डिता भी उसकी इस खोज को लेकर वापिस आ जावेगी। तू कन्यागृह में जाकर अपने को सुसज्जित कर। यह कहकर वज्रदन्त ने उसे वहाँ से विदा कर दिया।

दूसरे दिन वासव और दुर्दान्त नाम के दो विद्याधर उस महापूत जिनालय में पहुँचे। उनमें वासव उस विचित्र चित्रपट को देखकर लोगों को आश्चर्यचकित करने के लिए कपट पूर्वक मूर्छित हो गया। जब उसकी मूर्छा दूर हुई तब लोगों ने उससे इसका कारण पूछा। तब उसने अपनी मूर्छा का कारण इस प्रकार बतलाया – मैं अच्युत स्वर्ग में देव हुआ था। यह मेरी देवी है। वह उस स्वर्ग से आकर कहाँ पर उत्पन्न हुई, यह मैं नहीं जानता हूँ। इसको देखकर पूर्व भव का स्मरण हो जाने के कारण मुझे मूर्छा आ गई थी। अच्युत स्वर्ग का नाम लेने पर पण्डिताने उसकी हँसी करते हुए कहा कि जा, यह तेरी प्रियतमा नहीं है, अन्य किसी स्त्री को देख। इसी समय वज्रबाहु ने आकर नगर के बाहर पड़ाव डाला। उसका पुत्र वज्रजंघ उस जिनालय का दर्शन करने के लिए गया। उसने जैसे ही उस चित्रपट को देखा वैसे ही उसे जातिस्मरण हो जाने से मूर्छा आ गई। पण्डिताने उससे इस सम्बन्ध में जो कुछ भी पूछा उसका उसने ठीक-ठीक उत्तर दिया। तब पण्डिताने भी उस से श्रीमती के वृत्तान्त को कह दिया। तत्पश्चात् पण्डिताने वापिस आकर श्रीमती के वज्रजंघ के वृत्तान्त को सुना दिया, फिर वज्रदंत चक्रवर्ती वज्रबाहु के सम्मुख जाकर उसे बड़ी विभूति के साथ नगर के भीतर ले आया। उसने वज्रबाहु का खूब अतिथि स्तकार किया। तत्पश्चात् उसने वज्रजंघ के साथ श्रीमती का विवाह करा दिया। फिर वज्रदन्त ने श्रीमती के बड़े भाई अमित तेज के साथ अनुन्धरी का विवाह करा दिया। इस प्रकार वज्रबाहु परस्पर स्नेह के साथ कुछ दिन वहाँ पर रहकर पुत्र, पुत्रवधु और पण्डिता के साथ अपने नगर को चला गया। तत्पश्चात् कुछ ही दिनों में वज्रबाहु ने पण्डिता को पुण्डरीकिणी नगरी में वापिस भेज दिया। इस प्रकार वह सुखपूर्वक काल यापन करने लगा। समयानुसार श्रीमती को वीरबाहु आदि इक्यावन् युगल पुत्र (102) प्राप्त हुये। उनके विवाह आदि को करके वज्रबाहु सूखपूर्वक स्थित था। एक दिन उसे देखते-देखते नष्ट हुए मेघ को देखकर भोगों से वैराग्य हो गया। तब उसने वज्रजंघ के लिए राज्य देकर समस्त नातियों और पाँच सौ क्षत्रियों के साथ दमधर मुनि के पास में दीक्षा ग्रहण कर ली। वह कमाँ

को नष्ट करके मुक्ति को प्राप्त हुआ।

इधर एक दिन वज्रदन्त चक्रवर्ती सभा भवन में रित्थित था, तब वनपाल ने आकर उसे कुछ विकसित एक कमल की कली को दिया। उस में मरे हुए भ्रमर को देखकर वज्रदन्त चक्रवर्ती को वैराग्य हो गया। तब उसने पुत्रों को राज्य देना चाहा किन्तु उसके अमित तेज आदि हजार पुत्रों में से किसी ने भी राज्य को लेना स्वीकार नहीं किया। तब उसने अमिततेज के पुत्र पुण्डरीक (अपने नाती) को, जो कि वज्रजंघ का भानजा था, राज्य देकर एक हजार पुत्रों, बीस हजार मुकुटबद्धों और साठ हजार स्त्रियों के साथ यशोधर भद्रारक के चरण सानिध्य में दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्त में वह मोक्ष को प्राप्त हुआ। अन्य जन अपने-अपने पुण्य के योग्य गति को प्राप्त हुए। इधर अनार्य देशवासी (अथवा समीपवर्ती) शत्रु पुण्डरीक बालक को कुछ भी न समझकर उसके देश में उपद्रव करने लगे। उसको रोकने के लिए लक्ष्मीमती ने विजयार्थ पर्वतस्थ गन्धर्वपुर के राजा चिन्तागति और मनोगति नामके दो विद्याधरों के हाथ में एक लेख (पत्र) देकर वज्रजंघ के लिये भेजा। उक्त लेख को पढ़कर जब वज्रजंघ को वज्रदन्त चक्रवर्ती के दीक्षा ग्रहण कर लेने का समाचार ज्ञात हुआ तब उसे बहुत आश्र्य हुआ। तब वह चतुरुंग सेना के साथ उसी समय निकल पड़ा। वह पुण्डरीकिणी पुरी को जाता हुआ मार्ग में सर्प सरोवर के किनारे डेरा डालकर स्थित हुआ। उस समय वहाँ दमवर और सागरसेन नाम के दो चारणमुनि चर्यामार्ग से आहार के निमित्त आये। तब श्रीमती और वज्रजंघ ने उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। इससे वहाँ पञ्चाश्र्य हुए। उस समय उस वन में निवास करने वाले व्याघ्र, शूकर, बन्दर और नेवला ये चार पशु आये और उन दोनों मुनियों को नमस्कार कर उनके समीप बैठ गये। पश्चात् वज्रजंघने मुनियों को नमस्कार करके पूछा कि मतिवर, आनन्द, अकम्पन और धनमित्र नाम के जो ये मेरे मंत्री, पुरोहित, सेनापति और राजसेठ हैं इनके ऊपर मेरे स्नेह का कारण क्या है? इन व्याघ्र आदि के कूरता को छोड़कर शान्त हो जाने का कारण क्या है? तथा आप दोनों के ऊपर मेरे अनुराग का भी कारण क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए दमवर मुनि बोले—

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में वत्सकावती देश के भीतर प्रभाकरी नाम की एक नगरी है। वहाँ का राजा अतिगृद्ध बहुत लोभी था। उसने अपने नगर के

समीप में स्थित एक पर्वत के ऊपर बहुत—सा द्रव्य गाड़ रखा था। वह रौद्र ध्यान से मरकर पङ्कप्रभा पृथिवी (चौथे नरक) में गया। फिर वह वहाँ से निकलकर उसी पर्वत पर व्याघ्र हुआ। उस समय उस नगर का राजा प्रीतिवर्धन अनार्य देशवासियों (शत्रुओं) के ऊपर आक्रमण करने के लिए जा रहा था। वह नगर के बाहर पङ्काव डालकर स्थित हुआ। उस समय एक मास का उपवास करने वाले पिहितास्व मुनि उस नगर के बाहर एक वृक्ष के खोते में स्थित थे। जब उनका उपवास पूरा होकर पारणा का दिन उपस्थित हुआ तब किसी ज्योतिषी ने आकर उस राजा से प्रार्थना की कि हे राजन् ! यदि ये मुनि आपके घर पर पारणा करेंगे तो आपको महान् धन का लाभ होगा। यह ज्ञात करके प्रीतिवर्धन ने नगर के मार्ग में कीचड़ कराकर उसके ऊपर फूलों को बिखरवा दिया। उक्त कीचड़ और फूलों के कारण मुनि का नगर के भीतर आना असंभव हो गया था, अतएव वे प्रीतिवर्धन राजा के डेरे पर चर्या के लिए आ पहुँचे, राजा ने उन्हे निरन्तराय आहार दिया। आहार हो जाने के पश्चात् उसके डेरे पर पश्चाश्चर्य हुए। उस समय मुनि पिहितास्व ने कहा कि इस पर्वत के ऊपर बहुत सा द्रव्य है। उसकी रक्षा व्याघ्र कर रहा है। उसे तुम्हारे प्रस्थान कालीन भेरी के शब्द को सुनकर जातिस्मरण हो गया है। वह कौन है ? इसका सम्बन्ध बतलाने के लिए उन्होंने पूर्वोक्त कथा कही। वह व्याघ्र इस समय संन्यास लेकर स्थित है। वह तुम्हें उस सब धन को दिखला देगा। यह सुनकर प्रीतिवर्धन राजा को बहुत सन्तोष हुआ। वह उन मुनि को नमस्कार करके उस पर्वत के ऊपर गया। वहाँ उसने उक्त व्याघ्र को सम्बोधित किया। तब व्याघ्र ने उस धन को दिखला दिया, जिसे प्रीतिवर्धन राजा ने ग्रहण कर लिया। व्याघ्र अठारह दिनों में मरकर ईशान स्वर्ग के अन्तर्गत दिवाकरप्रभ देव हुआ। प्रीतिवर्धन राजा के द्वारा किये गये आहार दान की अनुमोदना करने से जो पुण्य प्राप्त हुआ उसके प्रभाव से उसके मंत्री, पुरोहित और सेनापति ये तीनों जम्बूद्वीप के उत्तर कुरु में आर्य हुए। राजा प्रीतिवर्धन उक्त मुनिराज के समीप में दीक्षित होकर तप के प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् प्रीतिवर्धन के मंत्री का जीव वह आर्य ईशान कल्प के अन्तर्गत काञ्छन विमान में कनकप्रभ नाम का देव हुआ। सेनापति का जीव आर्य उसी स्वर्ग के भीतर प्रभंकर विमान में प्रभाकर देव हुआ। पुरोहित का जीव आर्य रुषित विमान में प्रभंजन देव हुआ। जब तुम ललितांग देव थे, तब

ये चारों ही देव तुम्हारे परिवार के देव थे। पश्चात् वह दिवाकर प्रभ् देव स्वर्ग से च्युत होकर महिसागर और श्रीमति के यह तुम्हारा मंत्री मतिवर हुआ है। वह प्रभाकर देव वहाँ से च्युत होकर अपराजित और आर्यवेगा के यह अकम्पन सेनापति हुआ है। वह कनकप्रभ देव वहाँ से च्युत होकर श्रुतकीर्ति और अनन्तमती के यह आनन्द पुरोहित हुआ। तुम (वज्रजंघ) इस भव से आठवें भव में इसी भरत क्षेत्र के भीतर जब प्रथम तीर्थकर होओगे तब यह मतिवर भरत, यह अकम्पन बाहुबली, यह आनन्द वृषभसेन और यह धन मित्र अनन्तवीर्य, इन नामों से प्रसिद्ध तुम्हारे चरमशरीरी चार पुत्र होवेंगे।

अब व्याघ्र और शूकर आदि के भव कहे जाते हैं— इसी देश के भीतर हस्तिनापुर में वैश्य धनदत्त और धनमती के एक उग्रसेन नाम का पुत्र था। वह चोरी में पकड़ा गया था। उसे कोतवालों ने लातों और धूंसों से खूब मारा। इस प्रकार से वह क्रोध के वशीभूत होकर मरा और यह व्याघ्र हुआ है।

इसी देश के भीतर विजयपुर में वैश्य आनन्द और वसन्तसेना के हरिकान्त नाम का एक पुत्र था जो बड़ा अभिमानी था। वह किसी को नमस्कार नहीं करता था। कुछ लोगों ने पकड़कर उसे माता—पिता के चरणों में डाल दिया। तब उसने अभिमान से अपने शिर को पथर पर पटक लिया। इस प्रकार से वह मरकर यह शूकर हुआ है।

इसी देश के भीतर धान्यपुर में वैश्य धनदत्त और वासुदत्ता के एक नामदत्त नाम का पुत्र था जो बहुत कपटी था। वह वेश्या के निमित्त अपनी बहिन के आभूषणों को ले गया था। जब वह उन्हें माँगती तो ‘लाता हूँ’ कहकर रह जाता। वह मरकर यह बन्दर हुआ है।

इसी देश के भीतर सुप्रतिष्ठपुर में कोई पूरी आदि का बेचने वाला वैश्य (हलवाई) रहता था। वह बहुत लोभी था। वहाँ राजा सुवर्णमय ईटों के द्वारा एक चैत्यालय बनवा रहा था ये ईटे बाह्य में मिट्टी के समान काली दिखती थीं, पर थी वे सोने की। एक दिन उन ईटों को ले जाते हुए किसी मजदूर को देखकर उक्त हलवाई ने पूरियाँ दी और पाँच धोने के निमित्त एक ईट ले ली। फिर वह उसे सुवर्ण की जानकर उक्त मजदूर के हाथ में प्रतिदिन पूरियाँ देता और एक एक ईट मँगा लेता था। एक दिन वह अपने पुत्र से ईट को लेने के लिये कहकर किसी दूसरे गाँव को गया था। परन्तु पुत्र ने उस ईट को नहीं लिया था। जब वह लोभी

घर वापिस आया और उसे ज्ञात हुआ कि लड़के ने ईट नहीं ली है तो इससे क्रोधित होकर उसने पुत्र को लाठियों द्वारा मार डाला। तथा स्वयं अपने पाँवों के ऊपर एक भारी पत्थर को पटक लिया इससे उसके पाँव मुड़ गये। इस प्रकार वह बहुत कष्ट से मरा और यह नेवला हुआ है। ये चारों अपने भव्यत्व गुण के प्रभाव से इस समय शान्ति को प्राप्त हुए हैं। इस आहार दान की अनुमोदना से ये चारों तुम्हारे साथ दोनों गतियों के सुख को भोग कर जब तुम तीर्थकर होओगे तब ये तुम्हारे अनन्त, अच्युत, वीर और सुवीर नाम के चरम-शरीर पुत्र होवेंगे। हम दोनों चँकी तुम्हारे अन्तिम पुत्र युगल हैं, इसलिए हम दोनों के ऊपर भी तुम दोनों का मोह है। इस प्रकार से उक्त वृत्तान्त को कहकर वे दोनों मुनिराज चले गये।

वज्रजंघ पुण्डरीक के राज्य को स्थिर करके अपने नगर में वापिस आ गया। उसने बहुत समय तक राज्य किया। एक दिन रात में शयनागार की व्यवस्था करने वाला सेवक सूर्यकान्त मणिमय धूपधट में कालागरु को डालकर खिड़की को खोलना भूल गया। उसके धूएँ से उस शयनागार में सोये हुए श्रीमती और वज्रजंघ मर गये। वे मुनिदान के प्रभाव से जम्बूदीप के उत्तर कुरु में आर्य दम्पति (पति-पत्नी) हुए। उधर वे व्याघ्र आदि भी मरकर उस मुनिदान की अनुमोदना करने से प्राप्त हुए पुण्य के प्रभाव से उसी उत्तर कुरु में आर्य हुए। इधर मतिवर आदि ने वज्रजंघ और श्रीमति के शरीर का अग्नि संस्कार करके वज्रजंघ के पुत्र वज्रबाहु को राजा के पद पर प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् वे जिनदीक्षा लेकर तप के प्रभाव से अधोग्रैवेयक देव हुए। इधर भोग भूमि में उस युगल (वज्रजंघ और श्रीमती के जीव) को सूर्यप्रभ नामक कल्पवासी देव के देखने से जातिस्मरण हो गया। उसी समय वहाँ दो चारण मुनि आकाश मार्ग से नीचे आये। उनको नमस्कार करके वज्रजंघ आर्य बोला कि आप दोनों के ऊपर मुझे मोह क्यों हो रहा है? इसके उत्तर में उनमें से प्रीतिंकर मुनि बोले कि जब तुम महाबल हुए थे तब तुम्हारा मंत्री स्वयंबुद्ध तप के प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ था। फिर वहाँ से आकर इसी पूर्व विदेह में पुण्डरीकिणी पुत्र के राजा प्रियसेन और रानी सुन्दरी के मैं प्रीतिंकर हुआ हूँ? यह प्रतिदेह नाम का मेरा छोटा भाई है। तप के प्रभाव से हम दोनों को चारण ऋद्धि और अवधिज्ञान प्राप्त हुआ है। हम तुम्हें सम्यादर्शन ग्रहण कराने के लिये यहाँ पर आये हैं।

तत्पश्चात् वे दोनों मुनिराज उन छहों को सम्यादर्शन ग्रहण कराके वापिस चले गये। तीन पल्य-प्रमाण आयु के अन्त में मरण को प्राप्त होकर उन छहों में वज्रजंघ आर्य का जीव ईशान स्वर्ग के भीतर श्रीप्रभ विमान में श्रीधर देव, श्रीमती आर्याका जीव नन्द विमान में मनिकुण्डल देव, बानर आर्य का जीव नन्द्यावर्त विमान में मनोहर देव और नेवला आर्य का जीव प्रभाकर विमान में मनोरथ देव हुआ। इस प्रकार इन सबका परस्पर सम्बन्ध जानना चाहिये।

एक समय श्री प्रभ पर्वत के ऊपर प्रीतिंकर मुनिको केवलज्ञान प्राप्त होने पर वे श्रीधर आदि देव उनकी वन्दना के लिये गये। वन्दना करने के पश्चात् श्रीधर देवने केवली से पूछा कि महाबल के मंत्री महामति आदि कहाँ पर उत्पन्न हुए हैं? इस पर केवली ने कहा कि उनमें से दो (महामति और संभिन्नमति) तो निगोद अवस्था को प्राप्त हुए हैं और एक शतमति शर्कराप्रभा पृथिवी (दूसरा नरक) में नारकी हुआ है। तब श्रीधर देवने वहाँ जाकर उसको सम्बोधित किया। वह नारकी उक्त पृथिवी से निकल कर पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व विदेह में जो मंगलावती देश है उसके अंतर्गत रत्न-संचयपुर के राजा महीधर और रानी सुन्दरी के जयसेन नाम का पुत्र हुआ है। वह अपने विवाह के लिए उद्यत ही हुआ था कि इतने में उसी श्रीधर देवने आकर उसको फिर से सम्बोधित किया। इससे प्रबुद्ध होकर उसने दीक्षा ले ली। पश्चात् वह समाधिपूर्वक शरीर को छोड़कर ब्रह्मेन्द्र हुआ। वह श्रीधर देव स्वर्ग से च्युत होकर पूर्व विदह के भीतर वत्सकावती देश में स्थित सुसीमा नगरी के राजा सुदृष्टि और रानी सुन्दरी के सुविधि नाम का पुत्र हुआ। उस समय वहाँ अभयघोष नाम का सकल चक्रवर्ती था। सुविधि ने उक्त चक्रवर्ती की पुत्री मनोरमा के साथ विवाह कर लिया। वह स्वयंप्रभ देव (श्रीमती का जीव) स्वर्ग से आकर उस सुविधि के केशव नाम का पुत्र हुआ। वह चित्रांगद (व्याघ्र का जीव) देव उसी देश के मण्डलीक राजा विभीषण और प्रियदत्ता के वरदत्त नामका पुत्र हुआ। वह मनिकुण्डल देव (शूकर का जीव) स्वर्ग से च्युत होकर उसी देश के मण्डलीक राजा नन्दिसेन और रानी अनन्तमती के वरसेन नामका पुत्र हुआ। वह मनोहर (बंदर का जीव) देव वहाँ से आकर उसी देश के मण्डलीक राजा रतिसेन और रानी चन्द्रमती के चित्रांगद नामका पुत्र हुआ। वह मनोरथ देव (नेवले का जीव) स्वर्ग से अवतीर्ण होकर उसी देश के मण्डलीक राजा प्रभंजन और रानी चित्रमाला

के शान्तमदन नामका पुत्र हुआ । वे वरदत्त आदि चारों ही सुविधि के मित्र थे ।

एक समय अभ्यधोष चक्रवर्ती सुविधि आदि राजाओं के साथ विमलवाहन जिनेन्द्र की वन्दना करने के लिए गया । वह उनकी विभूति को देखकर संसार के सुख से विरक्त हो गया । तब उसने अपने पाँच हजार पुत्रों, दस हजार श्रियों और अठारह हजार अन्य राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली । अन्त में वह तपश्चरण करके मुक्ति को प्राप्त हुआ ।

उन सुविधि आदि छहों ने विशिष्ट अणुव्रतों को धारण कर लिया था । उनमें सुविधि अपनी आयु के अंत में सन्यास के साथ मरण को प्राप्त होकर अच्युतेन्द्र हुआ । शेष केशव आदि पांचों दीक्षित हो गये थे । उनमें केशव तो अच्युत कल्प में प्रतीन्द्र हुआ और शेष चार वहाँ पर सामानिक देव उत्पन्न हुए । तपश्चात् वह अच्युतेन्द्र उक्त कल्प से आकर इसी जम्बूद्वीप के पूर्वविंदेह में जो पुष्कलावती देश है । उसके भीतर स्थित पुण्डरीकिणी नगरी के राजा तीर्थकर कुमार वज्रसेन और रानी श्रीकान्ता के वज्रनाभि नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । वह प्रतीन्द्र भी स्वर्ग से अवतीर्ण होकर उसी नगरी में राजसेठ कुबेरदत्त और अनन्तमती के धनदेव नाम का पुत्र हुआ । वरदत्त आदि जो सामानिक देव हुए थे वे भी स्वर्ग से च्युत होकर राजा वज्रसेन और रानी श्रीकान्ता इन्हीं दोनों के विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामके पुत्र उत्पन्न हुए । मतिवर आदि जो ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुए थे वे भी वहाँ से आकर उन्हीं दोनों के बाहु, महाबाहु, पीठ और महापीठ नाम के पुत्र उत्पन्न हुए । वज्रसेन वज्रनाभि को अपना पद देकर आप्रवन में एक हजार राजकुमारों के साथ दीक्षित होता हुआ दीक्षाकल्याण को प्राप्त हुआ ।

एक दिन जब वज्रनाभि सभाभवन में स्थित था तब दो पुरुषों ने आकर क्रम से निवेदन किया कि तुम्हारे पिता को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है तथा आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है । इस शुभ समाचार को सुनकर वज्रनाभि ने पहिले केवली की पूजा की और तपश्चात् छह खण्डस्वरूप पृथ्वी को जीत कर उसे अपने स्वाधीन किया । तब वह धनदेव उस वज्रनाभि चक्रवर्ती का गृहपतिरत्न हुआ । वज्रनाभि चक्रवर्ती ने उन विजय आदि भ्राताओं को अपने समान करके बहुत काल तक राज्य किया । तपश्चात् वह अपने पुत्र वज्रसेन को राज्य देकर अन्य पाँच हजार पुत्रों, विजयादि भाइयों, धनदेव, सोलह हजार मुकुटबल्दु

राजाओं और पचास हजार शिवों के साथ उपने पिता (वज्रसेन तीर्थकर) के पास दीक्षित हो गया । तपश्चात् उसने वज्रसेनसिंह आदि सोलह भावनाओं के द्वारा तीर्थकर नामकर्म को बाधक भ्राताओंसमान सन्यास का ग्रहण कर लिया इस प्रकार से वह शरीर को शोषण सम्प्राप्तिसिंह विमान को प्राप्त हुआ । विजय आदि वे दश जीव भी वही पर (वज्रसेनसिंह में) सुख से स्थित हुए ।

तृतीयकाल के अंत में नाभिराज नाम का गीतहर्ष कुलकर उत्पन्न हुआ । इसकी पली का नाम मरुदेवी था । उसके भाऊ को ऊचाई पाँच सौ पद्मीस धनुष, कांति सुवर्ण के समान और आयु एक पुर्वोत्तम प्रमाण थी । नाभिराज ने भी प्रजा को पूर्व के समान 'हा' या शिव नाम के सी अनुसार शिक्षित किया था । उस समय कल्पवृक्ष सब ही पर हो चुके थे । वैष्णव नाभिराज का प्रासाद ही एक शेष रहा था । उस समय उत्पन्न हुए भ्राताओं के नाम के काटने का उपदेश करने से वह 'नाभि' इन नाम से प्रसिद्ध का भ्राता हुआ । वह नाभिराज मरुदेवी के साथ सुख से स्थित था ।

इधर सर्वार्थसिंहि में जब भूतपूर्व भ्राताओं के लौम उस अहमिन्द्र की आयु छह मास शेष रह गई तब कल्पसिंह (वज्रसेन) ने उसके का शब्द, ज्योतिषि देवों में सिंहनाद, गणवासियों में शब्द का भ्राता और भ्रातार देवों के यहाँ भेरी का शब्द हुआ । उस समय सब ही देवों के विभिन्न वासिन तृण और मुकुट झुक गये । इससे उन सभी ने अपने अवधिलाल में यह नाम शिव के भ्रात देवों में मरुदेवी के गर्भ में आदि जिनेन्द्र भ्राताओं तैयार करने के । इसी कारण चारों निकायों के देवों के साथ आकर उन्होंने भ्रातार देवों के नाम की रचना की जो सर्वरत्नमय था । भ्रातार देवों ने नाभिराज और मरुदेवी इन दोनों को विभूति के साथ उस नाम के लौम भ्रातासिंहित किया । साथ ही उसने उनके घर पर प्रतिष्ठित तैयार भ्रातासिंहि में भ्रातासिंहि करने के लिये अपने यक्ष कुबेर को नियुक्त कर लिया । उसने पांच और तीन तालाबों में निवास करने वाली श्री, श्री, शूषि, शौषि, शूषि और तीन तालाबों के देवियों को तीर्थकर की माता शूषार करने में, उसके पांच तालाबों वाली नाम की विजया, वैजयन्ता, जयन्ता, अपराजित, नवा, वन्वीता, जन्मना और नन्दिवर्धना इन आठ देवियों को पूर्ण कलम का नाम करने में सुखिना,

सुप्रणिधा, सुप्रबोधा, यशोधरा, लक्ष्मीमति, कीर्तिमती, वसुंधरा और चित्रा इन आठ देवियों को दर्पण के धारण करने में, इला, सुरा, पृथ्वी, पञ्चावती, कांचना, नवमी, सीता और भद्रा इन आठ देवियों को गान में, अलंबुसा, मित्रेशी, पुण्डरीका, वासुणी, दर्पणा, श्री, ही और धृति इन आठ देवियों को चंबर धारण करने में, चित्रा, कांचनचित्रा, शिरःसुता और मणि इन चार देवियों को दीपक जलाने में, रूचका, रूचकाशा, रूचकान्ति और रूचक प्रभा इन चार देवियों को तीर्थकर का जन्मोत्सव कर्म करने, रसोई करने, पान देने एवं शश्या एवं आसन के अधिकार में तथा अन्य पर्वतों पर रहने वाली सुमाता, मालिनी, सुवर्णदेवी, सुवर्णचित्रा, पुष्पचूला, चूलावती, सुरा और त्रिशिरसा आदि देवियों को भी नियोग के अनुसार कार्यों में नियुक्त किया। इस प्रकार सुखपूर्वक छह महिनों के बीत जाने पर जब पति के साथ शश्या पर सोयी हुई थी तब उसने हाथी आदि सोलह रूपों को देखा। इनके फल के विषय में उसने राजा से पूछा। तदनुसार—नाभिराज ने उसके लिये उन रूपों का फल बतलाया, जिसे सुनकर वह बहुत सन्तुष्ट हुई। इस प्रकार सुख से स्थित होने पर आषाढ़ कृष्णा द्वितीया के दिन वह अहमिन्द्र देव उसके गर्भ में अवतीर्ण हुआ। तब देवों ने आकर गर्भकल्याण का महोत्सव किया। तत्पश्चात् वे वापिस स्वर्गलोक चले गये। मरुदेवी उन देवियों के द्वारा की जानेवाली सेवा के साथ नौ मास सुखपूर्वक रही। अंत में चैत्रकृष्णा नवमी के दिन उसने तीन लोक के प्रभु भगवान् आदिनाथ को उत्पन्न किया। इस को जानकर सौधर्म इन्द्र आदि अपने—अपने वाहनों पर चढ़कर उसी समय अयोध्या नगरी में आ पहुँचे। वे देवेन्द्र भगवान की माता के आगे मायामयी बालक को करके तीर्थकर कुमार को मेरुपर्वत के ऊपर रिथ्त पाण्डुकवन के भीतर ईशान कोणस्थ पाण्डुक शिला के ऊपर ले गये। उसके ऊपर भगवान को विराजमान करके सौधर्म और ईशान इन्द्र ने क्षीर समुद्र के दूध से आठ योजन ऊँचे अनेक कलशों के द्वारा जन्माभिषेक किया। तत्पश्चात् तीर्थकर कुमार को वस्त्राभूषणों से विभूषित करके सौधर्म इन्द्र ने माता-पिता को समर्पित किया और वह उनके आगे नृत्य करने लगा। वे भगवान् चूँकि वृष (धर्म) से शोभायमान थे, इसलिये उनका नाम वृषभ रखकर वे सब देव स्वर्गलोक को चले गये। वे वृषभनाथ भगवान् निःस्वेदत्व (पसीना न आना) निर्मलता, शुभ्र रुधिरत्व (रक्त की धवलता), वज्र्णभनाराचसंहनन, समचतुरस्संस्थान, सुरुपता

(अनुपम रूप), सुगन्धित शरीर, सुलक्षणत्व (एक हजार आठ उत्तम लक्षणों का धारण करना), अनन्तवीर्यता (शारीरिक बल की असाधारणता) और हित-मित-मधुर भाषण इन स्वाभाविक दस अतिशयों को जन्म से ही धारण करते थे। साथ ही वे मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानों को भी जन्म से धारण करते थे। वे क्रमशः वृन्दि को प्राप्त हुए। एक दिन भूख से व्याकुल दुर्बल प्रजाजन नाभिराज के पास आये। तब नाभिराज उन सबको लेकर भगवान् वृषभनाथ के पास पहुँचे। उनने नमस्कार पूर्वक भगवान से प्रार्थना की कि हे नाथ! जिस प्रकार से प्रजाजनों की भूख आदि की बाधा दूर हो, ऐसा कोई उपाय बतलाइये। तब वृषभदेव ने उन्हें भूख की बाधा को नष्ट करने के लिए यह उपाय बतलाया कि गन्ना और ईख के दण्ड जो स्वयमेव उत्पन्न हुए हैं उनको कोल्हू में पेलकर रस निकालो और उसका पान करो। तदनुसार प्रवृत्ति करने पर प्रजा को बहुत सन्तोष हुआ। तब प्रजाजनों ने आकर प्रणाम करते हुए भगवान् से कहा कि आपका वंश “इक्ष्वाकु” इस सार्थक नाम से प्रसिद्ध हो। इस बात को भगवान् ने “तथा भवतु” कहकर स्वीकार कर लिया। भगवान का वर्ण सुवर्ण जैसा था। उनका चिह्न बैल का था। वे पाँच सौ धनुष ऊँचे और चौरासी लाख वर्ष पूर्व प्रमाण आयु के धारक थे। इस प्रकार वे भगवान सुखपूर्वक रिथ्त थे। इस बीच में उनकी यौवन अवस्था को देखकर इन्द्रादिकों ने प्रार्थना की कि हे देव! अपना विवाह स्वीकार कीजिये। इस पर चारित्र मोह के वशीभूत होकर उसे स्वीकार कर लिया। तब कच्छ और महाकच्छ राजाओं की यशस्वती और सुनन्दा नाम की पुत्रियों के साथ उनका विवाह करा दिया। वे उन दोनों के साथ सुख से काल व्यतीत करने लगे। खजाने का रक्षक जो अतिगृद्ध राजा का जीव व्याघ्र, हुआ और फिर क्रमशः दिवाकर प्रभ देव, मतिवर मंत्री, अधोग्रैवेयक का अहमिन्द्र, बाहु (वज्रनाभिका अनुज) व सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह आकर यशस्वती के भरत नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा प्रीतिवर्धन के मंत्री का जीव जो क्रम से आर्य (भोग भूमिज) कनकप्रभ देव, आनन्द पुरोहित, ग्रैवेयक का अहमिन्द्र पीठ और फिर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था, वह भरत का लघुभ्राता वृषभसेन हुआ। जो पुरोहित का जीव आर्य, प्रभंजन देव, धनमित अधोग्रैवेयक का अहमिन्द्र, महापीठ और सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह वृषभसेन का लघुभ्राता अनन्तवीर्य हुआ। जो व्याघ्र का जीव भोग

भूमिज, चित्रांगद देव, वरदत्त, अच्युत कल्पका देव, विजय और सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह भी भरत का लघुभ्राता अनन्त हुआ। जो शूकर का जीव आर्य, मणिकुण्डल देव, वरसेन, अच्युत कल्प का देव, वैजयन्त और सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह भी भरत का लघुभ्राता अच्युत हुआ। जो बन्दर का जीव आर्य, मनोहर देव, चित्रांगद, अच्युत स्वर्ग का देव, जयन्त और सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह भी उसका लघुभ्राता वीर हुआ। जो नेवला का जीव भोगभूमि में आर्य, मनोरथ देव, शान्तमदन, अच्युत कल्प में देव, अपराजित का देव और अन्त में सर्वार्थसिद्धि का देव हुआ था वह भी भरत का लघुभ्राता सुवीर हुआ। इन को आदि लेकर निन्यानवे पुत्र भरत के लघुभ्राता हुए। इसके पश्चात् भगवान् ऋषभदेव के ब्राह्मी नाम की पुत्री भी उत्पन्न हुई। जो सेनापति का जीव भोगभूमि का आर्य, प्रभाकर देव, अकम्पन, अधोग्रैवेयक का देव, सुबाहु और फिर सर्वार्थ सिद्धि का अहमिन्द्र हुआ था वह भी वहाँ से च्युत होकर नन्दा रानी का पुत्र बाहुबली उत्पन्न हुआ। पूर्व में वज्रजंघ की छोटी बहिन जो पुण्डरीक की माता थी वह दोनों गतियों के सुख को भोगकर बाहुबली की सुन्दरी नाम की छोटी बहिन उत्पन्न हुई। इस प्रकार वृषभनाथ के एक सौ एक पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं।

एक समय भगवान् वृषभदेव ने उन दोनों पुत्रियों को अपने दोनों और बैठाकर उनमें से एक के लिए दाहिने हाथ से लिखकर अकारादि वर्णों को तथा दूसरी के लिए बायें हाथ से लिखकर इकाई और दहाई आदि अंकों को दिखलाया। साथ ही उन्होंने भरत आदि को भी समस्त कलाओं में निपुण कर दिया। इस प्रकार वे भगवान् सुख से स्थित हुए।

फिर किसी एक समय नाभिराज प्रजा को साथ लेकर भगवान् ऋषभ देव के पास आये। उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि हे देव ! केवल इख के रस से भूख की पीड़ा शान्त नहीं होती है अतएव हे स्वामिन् ! उक्त पीड़ा को शान्त करने के लिए दूसरा भी कोई उपाय बतलाइये। इस पर ऋषभदेव ने जिस कर्मभूमि व्यवस्था के नष्ट होने के पश्चात् अठारह कोड़ा कोड़ि सागरोपम काल बीत चुका था उसकी प्रवृत्ति को बतलाते हुए ग्राम-नगर आदि की रचना, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों की व्यवस्था तथा जीव के साधन भूत धान्य आदि की उत्पत्ति का भी उपदेश दिया। उस समय ऋषभदेव ने चूँकि युग (सृष्टि) की

रचना का उपदेश किया था, इसीलिये वे (कृतयुग) अर्थात् युग के प्रवर्तक कहे जाते हैं। इस प्रकार समस्त सृष्टि की रचना में उनका बीस लाख का पूर्व प्रमाण कुमार काल बीत चुका था। उस समय इन्द्रादिकों ने एकत्रित होकर आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा के दिन उन्हें राज्यपट बांधा था। तब उन्होंने सोमप्रभ नामक क्षत्रिय कुमार के लिये राज्याभिषेक करके राज्यपट को बांधा तथा 'तुम्हारा वंश कुख्वंश हो' यह कहते हुए उसे हस्तिनापुर दिया। इसके साथ ही उन्होंने अकम्पन के लिए राज्यपट बांधकर 'तुम्हारा वंश उग्रवंश हो' यह कहते हुए उसे वाराणसी को दे दिया। उन्होंने 'हा-मा और धिक्' की नीति से प्रजा को शिक्षा देते हुए तिरेसठ लाख पूर्व तक राज्य किया।

एक समय इन्द्र ने भगवान् को विरक्त करने के लिए अन्तर्मुहूर्त मात्र शेष आयु वाली अपनी नीलांजना नामकी नर्तकी को उनके आगे नृत्य करने के लिए नियुक्त किया। वह नृत्य करते करते रंगभूमि में ही अदृश्य हो गई। इस प्रकार उसके मरण को जानकर वे भगवान् अतिशय विरक्त हुए। उस समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनके वैराग्य की प्रशंसा करते हुए कहा कि हे देव ! आपने यह बहुत ही उत्तम कार्य किया है। तब ऋषभदेव ने भरत के लिए अयोध्यापुर, बाहुबली के लिए पोदनपुर, वृषभसेन के लिए पुरिमतालपुर और शेष कुमारों के लिए काश्मीर देश दिया। फिर वे मंगल स्नान के पश्चात् मंगलभूषणों से अलंकृत होकर देवों के द्वारा रची गई सुदर्शन नामकी पालकी पर आरूढ़ हुए। उस पालकी को यथाक्रम से भूमिगोचरी आदि (विद्याधर और देव) ले गये। इस प्रकार जाकर वे भगवान् देवनिर्मित मण्डप के भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ वे पूर्वाभिमुख स्थित होकर व छह महिने के उपवास का नियम लेकर चैत्र कृष्णा नवमी के दिन 'नमः सिद्धेभ्यः' कहते हुए निर्ग्रन्थ (समस्त परिग्रह से रहित दिगम्बर) हो गये – उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके साथ कछादिक अन्य चार हजार क्षत्रियों ने भी जिन दीक्षा ले ली। दीक्षा लेते समय उन्होंने पाँच मुष्ठियों से अपने बालों का लोंच किया व प्रतिमायोग से स्थित हो गये। इस प्रकार वे छह महीने तक प्रतिमायोग से स्थित रहे। उनका वह दीक्षास्थान 'प्रयाग' तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस समय समस्त देवों ने आकर उनके दीक्षाकल्याण की पूजा की। पश्चात् वे सब देव उनके बालों को क्षीरसमुद्र में प्रवाहित करके स्वर्गलोक को वापिस घले गये। भगवान् तो छह महिने तक बराबर प्रतिमायोग

से स्थित रहे। किन्तु कच्छादिक राजा दो महिने के पश्चात् प्यास और भूख से पीड़ित होकर जल पीने और फल आदि को खाने में संलग्न हो गये। यह देखकर बनदेवताओं ने उन्हें दिगम्बर वेष में स्थित रहकर उसके प्रतिकूल आचरण (फलादिभक्षण) करने से रोक दिया। तब वे भौतिक आदि अनेक वेषों के धारक हो गये।

तत्पश्चात् कुछ दिनों में कच्छ और महाकच्छ के पुत्र नमि और विनमि आकर भगवान् के चरणों में प्रणाम करते हुए प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! हम दोनों को कोई भी देश प्रदान कीजिए। तब उनके इस उपसर्ग को दूर करने के लिए वहाँ धरणेन्द्र आया। उसने उन दोनों कुमारों से कहा कि स्वामीने तुम दोनों के लिए विजयार्थ का राज्य दिया है, तुम मेरे साथ वहाँ चलो। इस प्रकार उन दोनों को वहाँ ले जाकर उसने उन्हें राजा बना दिया। प्रतिज्ञा के अंत में भगवान् आहार के लिए जिस नगर आदि में प्रविष्ट होते उनके अधिपति उन्हें कन्या आदि देने को उद्यत होते, परंतु विधिपूर्वक भोजन कोई नहीं देता था। राजा भरत भी गया और उनके चरणों में गिरकर बोला कि हे स्वामिन्! आप इस प्रकार से क्यों स्थित हैं, अपने नगर में आकर पहले के समान राज्य कीजिए। परंतु जब भगवान् ने कुछ उत्तर नहीं दिया तब उनके मौन को देखकर उसे बहुत खेद हुआ। अंत में वह अपने नगर में वापिस चला गया। इस प्रकार वे भगवान् आहार के लिए छह महिने तक घूमे। परंतु उन्हें विधिपूर्वक वह प्राप्त नहीं हुआ। तत्पश्चात् वे वैशाख शुक्ला द्वितीया के दिन अपराह्न काल में हस्तिनापुर नगर के बाहरी उद्यान में प्रतिमायोग से स्थित हुए। उसी दिन रात्रि के पिछले प्रहर में सोमप्रभ राजा के भाई श्रेयांस ने अपने घर में कल्पवृक्ष के प्रवेश आदि रूप अनेक शुभ स्वर्ण देखे। तत्पश्चात् उसने इन स्वर्णों का वृत्तान्त सोमप्रभ से कहा। उत्तर में सोमप्रभ ने कहा कि तुम्हारे घर में कोई महात्मा प्रवेश करेगा। पश्चात् द्वितीया के दिन मध्याह्न काल में वे भगवान् लोगों को आश्र्यान्वित करते हुए आहार के लिए राजभवन के समुख आये। उन्हें देखकर सिद्धार्थ द्वारपाल ने सोमप्रभ से कहा कि हे राजन्! ऋषभदेव स्वामी राजभवन की ओर आ रहे हैं। यह सुनकर सोमप्रभ और श्रेयांस दोनों भाई भगवान् के समुख आये। उन्हें देखते ही श्रेयांस को जातिस्मरण हो गया। इससे उसने आहार की विधि को जानकर भगवान् का पङ्गाहन किया। तत्पश्चात् उसने दाता के सात

गुणों से संयुक्त होकर आदिनाथ भगवान को नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। भगवान के तीन अंजुलि प्रमाण ईख के रसको लेकर इस दान को अक्षयदान रूप से प्रमाणित किया (बतलाया) उस समय श्रेयांस के घर पर पंचाश्चर्य हुए। तब से वह द्वितीया अक्षयद्वितीया के नाम से प्रसिद्ध हुई। श्रेयांस ने श्री ऋषभदेव को आहार कराया है, यह जानकर भरत को संतोष हुआ। इससे वह श्रेयांस के समीप गया। तब सोमप्रभ और श्रेयांस दोनों ने उसे नगर में ले जाकर राजभवन के भीतर प्रविष्ट कराते हुए सिंहासन पर बैठाया। उस समय भरत ने श्रेयांस से पूछा कि तुमने भगवान् के अभिप्राय को कैसे जाना? श्रेयांस बोला— इस भव से पहले आठवें भव में भगवान् वज्रजंघ नाम के राजा और मैं उनकी श्रीमती नामकी पत्नी था। उस भव में हम दोनों ने सर्प सरोवर के किनारे दो चारण मुनियों के लिए आहार दिया था। उससे उत्पन्न हुए पुण्य के प्रभाव से वह राजा क्रम से भोगभूमिका आर्य, श्रीधर देव, सुविधि राजा, अच्युत इन्द्र, वज्रनाभि चक्रवर्ती, सर्वार्थसिद्धि का अहमिन्द्र और इस समय ऋषभनाथ हुआ है। तथा वह श्रीमती का जीव क्रम से आर्या, स्वयंप्रभदेव, सुविधि का पुत्र केशव, अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र, धनदेव, सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र और फिर वहाँ से व्युत होकर इस समय में श्रेयांस राजा हुआ हूँ। मुझे मुनि के स्वरूप को देखकर जाति स्मरण हो गया था। इससे मैंने श्रीमती के भव में दिये गये आहारदान का स्मरण हो जाने से उसकी विधि को जान लिया था। इस वृत्तान्त को सुनकर भरत को बहुत संतोष हुआ। तब उसने श्रेयांस की बहुत प्रशंसा की। फिर वह कुछ दिनों में अपने नगर में वापिस आ गया।

यहाँ वृषभनाथ ने एक हजार वर्ष तक तपश्चरण किया। पश्चात् जब वे पुरिमतालपुर के उद्यान में वट वृक्ष के नीचे ध्यान विशेष (शुक्ल ध्यान) में स्थित थे तब उन्हें धातिया कर्मों के क्षीण हो जाने से फाल्युन कृष्णा एकादशी के दिन केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उस समय वे भगवान् स्फटिक मणिमय पर्वत के ऊपर उतित हुए एक करोड़ सूर्यों के बिम्ब के समान तेजपुंज को धारण करने वाले शरीर से संयुक्त होकर पृथिवी से पाँच हजार धनुष ऊपर जाकर आकाश में स्थित हुए। उस समय कुबेर का आसन कंपित हुआ। इससे उसने भगवान् के केवलज्ञान की उत्पत्ति को जानकर ग्यारह भूमियों से संयुक्त उनके समवसरण की रचना की। उस समय सब प्रकार के देव आये और भगवान की पूजा करके 169

यथायोग्य स्थान पर बैठ गये। उस समय उस पुर (पुरिमतालपुर) का स्वामी वृषभसेन विभूति के साथ भगवान् वृषभदेव के समवसरण में आया। उसने वहाँ संसाररूप पर्वतों को नष्ट करने के लिए वज्रपात के समान उन जिनेन्द्र की पूजा व स्तुति करके अपने अनन्तसेन नामक पुत्र के लिये राज्य दे दिया और स्वयं दीक्षा ले ली। वह आदिनाथ जिनेन्द्र का प्रथम गणधर हुआ।

इधर भरत अयोध्यापुरी में सामन्त आदि से वेष्टित होकर सभा भवन में बैठा हुआ था। उस समय तीन पुरुषों ने आकर महाराज भरत के लिये क्रमशः ‘अनन्त सुंदरी रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ है, आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है तथा आदिनाथ भगवान् को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है’ ये तीन शुभ समाचार सुनाये। इस पर भरत ने विचार किया कि संतान की वृद्धि और राज्य की वृद्धि धर्म के प्रभाव से हुई है। इसीलिये वह सर्वप्रथम इन्द्र के समान ठाठ-बाट से जिनेन्द्र की वंदना करने के लिये गया। उसने समवसरण में जाकर तीनों लोकों के स्वामियों के इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्ती के चूडामणि के समान तथा अनेक प्रकार के रत्नों की किरणों से इन्द्रधनुष की शोभा को उत्पन्न करनेवाले श्री आदिनाथ जिनेन्द्र के चरणों की पूजा और स्तुति की। फिर वह गणधरादि कों की वंदना करके अपने कोठे में बैठ गया।

राजा सोमप्रभ और श्रेयांस जय के लिये राज्य देकर दीक्षित हौं गये। भरत के छोटे भाई अनन्तवीर्य ने भी दीक्षा ले ली। ये तीनों भी भगवान् आदिनाथ के गणधर हुए। ब्राह्मी और सुन्दरी नाम की दोनों पुत्रियाँ भी कुमारी अवस्था में ही अन्य बहुत-सी स्त्रियों के साथ दीक्षित हो गयीं। वे दोनों आर्यकाओं में प्रमुख हुईं।

महाराज भरत दिव्यध्वनि को सुनने रूप अमृतरस के आस्वादन से संतुष्ट होकर अयोध्या में वापिस आये। उस समय उन्होंने पुत्र-जन्म का उत्सव मनाते हुए चक्ररत्न की पूजा भी की। तत्पश्चात् उन्होंने शुभ मुहूर्त में दिग्विजय के लिये प्रयाण करते हुए जो भेरी का शब्द कराया उससे समस्त दिङ्मण्डल शब्दायमान हो उठा। तब गमन करती हुई छह प्रकार की सेना के पांचों के घात से जो धूलिका पटल उठा था उससे सूर्यमण्डल भी ढक गया था। इस प्रकार से गमन करते हुए उन भरत महाराज का कटक गंगा नदी के किनारे ठहर गया। पश्चात् वे उस गंगा के नदी के किनारे ठहर गया। पश्चात् वे उस गंगा के किनारे

से गये व जहाँ वह समुद्र में गिरती है वहाँ पहुँचकर स्थित हो गये। वहाँ पर उन्हे समुद्र के भीतर अवस्थित मगध द्वीप के स्वामी मागध देव के जीतने की चिन्ता उत्पन्न हुई। वे इसके लिये कुछ उपाय खोज रहे थे। इस बीच रात्रि के पिछले पहर में उन्होंने ख्वज में देखा कि कोई उनसे कह रहा है कि रथपर चढ़कर समुद्र के भीतर प्रवेश करो, वहाँ बारह योजन जाने पर रथ ठहर जावेगा, तब वहाँ से उस मागध देव के निवासस्थान की ओर बाण को छोड़ो। फिर प्रातः काल होने पर महाराज भरत पूर्वोक्त ख्वज के अनुसार रथ में बैठकर बारह योजन समुद्र के भीतर गये और जहाँ वह अवस्थित हुआ वहाँ से उन्होंने बाण छोड़ दिया। उस नामंकित बाण को देखकर मागध देव ने क्रोधावेश में महाराज भरत की निन्दा की। परन्तु मन्त्रियों ने समझा बुझाकर उसे शान्त कर दिया। तब वह भेंट के साथ आकर चक्रवर्ती से मिला। चक्रवर्ती भरत ने भी उसे सेवक बनाकर अपने स्थान को वापिस भेज दिया। तत्पश्चात् भरत चक्रवर्ती लवणसमुद्र और उप समुद्र मध्यम में स्थित उपवन के सहारे पश्चिम की ओर जाकर वैजयन्त गोपुरद्वार के भीतर प्रविष्ट हुए। वहाँ से उन्होंने मागध देव के समान वरतनु द्वीप के स्वामी वरतनु देव को वश में किया। फिर वे पश्चिम की ओर जाकर सिन्धु नदी और समुद्र के संगम पर पड़ाव डालकर स्थित हुए। वहाँ से उन्होंने प्रभास द्वीप के स्वामी प्रभास देव को भी उसी प्रकार से सिन्धु किया। तत्पश्चात् वे सिन्धु नदी के सहारे चलकर उत्तरकी ओर गये और विजयार्ध के पास पड़ाव डालकर स्थित हुए। उधर सेनापति ने कृतकमाल और विजयार्ध इन दो देवों को जीतकर अपनी सेना को पश्चिम म्लेच्छखण्ड की ओर भेजा और स्वयं ने अश्वरत्न पर चढ़कर उसके मुख को पश्चिम की ओर करके दण्डरत्न से तमिश्च गुफा के द्वार को ताड़ित किया। तत्पश्चात् वह शीघ्रतापूर्वक लगाम से घोड़े को ताड़ित कर पश्चिम म्लेच्छ खण्ड की ओर चल दिया। इधर द्वार के खुल जाने पर उससे निकली हुई भीषण गर्भी छह महीनों में शांत हुई। इस बीच में सेनापति ने युद्ध में पश्चिम म्लेच्छ खण्ड के राजाओं को जीत लिया और तब उन्हे लाकर चक्रवर्ती के सामने उपस्थित कर दिया। भरत चक्रवर्ती ने उन्हे सेवक बनाकर उसी प्रकार से छोड़ दिया। फिर उसके काकिणी रत्न के द्वारा लिखे गये चन्द्र और सूर्यों के प्रकाश की सहायता से उत्तर के मध्यम म्लेच्छखण्ड के भीतर प्रवेश किया। वहाँ उसने समस्त सेना का डेरा चर्म रत्न के ऊपर डाला

और फिर उसके ऊपर छत्र रत्न धारण किया। इस प्रकार दोनों के मिलने पर उसका आकार मुर्गी के अण्डे के समान हो गया। वहाँ पर चिलात और आवर्त आदि म्लेच्छ राजाओं ने सेनापति के साथ खूब युद्ध किया। अंत में वे रणभूमि से भाग कर अपने कुलदेवता स्वरूप मेघकुमार देवों की शरण में पहुँचे। तब उक्त देवताओं ने आकर चक्रवर्ती की सेना के ऊपर बहुत उपसर्ग किया। परंतु जब वे उस वर्म रत्न और छत्र रत्न के भेदने में समर्थ नहीं हुए तब वे सेनापति के साथ युद्ध करने में तत्पर हुए। उसने उन सबको महायुद्ध में जीत लिया। तब उसने उनके राजचिह्नों को छीनकर मेघ जैसा गर्जन किया। इससे चक्रवर्ती ने जयकुमार का नाम मेघेश्वर प्रसिद्ध किया। इस प्रकार से उसने तीनों उत्तर म्लेच्छखण्डों को जीतकर तत्पश्चात् विजयार्थ पर्वतस्थ विद्याधरों को भी वश में कर लिया। तब नमि और विनमि अपनी पुत्री सुभद्रा को देकर सेवक हो गये। इसके पश्चात् भरत चक्रवर्तीने हिमवत्कुमार देव को भी जीतकर वृषभगिरि पर्वत के ऊपर अपना नाम लिखा। फिर उसने नाट्यमाल देव को वश में करके काण्डप्रपात (खण्ड प्रपात) गुफा के द्वार को खोला और उसमें से निकलकर आर्यखण्ड में आ गया। पश्चात् पूर्व म्लेच्छखण्ड को जीतकर वह कैलाश पर्वत के ऊपर गया। वहाँ उसने ऋषभ जिनेन्द्र की स्तुति की। इस प्रकार दिविजय करके वह साठ हजार वर्षों में आयोध्या वापिस आया।

महाराज भरत चक्रवर्ती जब नगर के भीतर प्रवेश करने लगे तब उनका चक्ररत्न वहीं रुक गया। भरत के द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर मंत्रियों ने कहा कि आपके भाई आज भी आपकी सेवा को स्वीकार नहीं करते हैं, इसीलिये यह चक्ररत्न नगर के भीतर प्रविष्ट नहीं हो रहा है। यह सुनकर भरत चक्रवर्ती ने सेना को नगर के बाहर ठहराया और भाईयों के समीप दूतों को भेज दिया। तब बाहुबली को छोड़कर शेष भाईयों ने भरत की आज्ञा के विषय में विचार करके पिता (आदिनाथ भगवान्) के समीप में दीक्षा धारण कर ली। परंतु बाहुबली ने दूत से कह दिया कि यदि भरत मेरे वाणोंरूप दर्भों (खुशों-कासों) की शस्यापर सोता है तो मैं दया से कुछ दे सकता हूँ, अन्यथा नहीं। तत्पश्चात् वह युद्ध की अभिलाषा से निकलकर अपने देश की सीमापर स्थित हो गया। उधर भरत भी बाहुबली के उत्तर से क्रोध को प्राप्त होकर युद्ध करने के लिये आ गया। इस प्रकार दोनों सेनाओं के सम्मुख होने पर मंत्रियों ने उन

दोनों के बीच में दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध और मल्लयुद्ध इस प्रकार के युद्धों को निर्धारित किया। सो बाहुबली ने इन तीनों ही युद्धों में चक्रवर्ती भरत को पराजित कर दिया। फिर भी उसने भरत को नमस्कार करके उससे क्षमा करायी। इस घटना से बाहुबली को वैराग्य हो चुका था। इससे उसने अपने पुत्र महाबली को भरत के आधीन करके स्वयं उसके द्वारा रोके जाने पर भी कैलाश पर्वत के ऊपर जाकर ऋषभ जिनेन्द्र के समीप में दीक्षा ग्रहण कर ली। वह कुछ ही दिनों में समस्त आगम में पारंगत होकर एक विहारी हो गया। वह किसी वन में जब प्रतिमायोग से स्थित हुआ तब उसका शरीर बेलों और बांबियों से घिर गया। उसकी इस अवस्था को देखकर कभी-कभी विद्याधरियाँ उन बेलों और बांबियों आदि को हटा दिया करती थीं। इस प्रकार से पूरा एक वर्ष बीत गया। अंत में जब भरत ने ऋषभ जिनेन्द्र के समवसरण में जाते हुए बाहुबली को ऐसे कठिन प्रतिमायोग में स्थित देखा तब उसने जिनेन्द्र को नमस्कार करके पूछा कि बाहुबली मुनि को अब तक केवलज्ञान क्यों नहीं उत्पन्न हुआ है? इस प्रश्न को सुनकर जिन भगवान ने उत्तर दिया कि यद्यपि बाहुबली ने पृथ्वी का परित्याग कर दिया है, फिर भी मैं भरत चक्रवर्ती की पृथ्वी पर स्थित हूँ यह किंचित् मानकषाय उसके मन में अभी तक बनी हुई है। वह कथाय जब तक नष्ट नहीं होती है तब तक उसे केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। यह सुनकर भरत चक्रवर्ती बाहुबली मुनि के समीप गये और उनके चरणों में गिर गये। फिर उन्होंने विनय से परिपूर्ण सम्भाषण के द्वारा बाहुबली की उस कषाय को दूर कर दिया। तत्पश्चात् बाहुबली मुनि को उसी समय केवलज्ञान उत्पन्न हो गया, जिसके प्रभाव से समवसरणादि विभूति भी उन्हें प्राप्त हो गई।

भरत ने महाबली को पोदनपुर का राजा बनाया। तत्पश्चात् वह अयोध्या में सुखपूर्वक स्थित हुआ। उसके पास चक्रवर्ती की विभूति में अठारह करोड़ घोड़, चौरासी लाख हाथी, इतने ही रथ, चौरासी करोड़ पदाति, बत्तीन हजार मुकुटबद्ध राजा, उतने ही अंगरक्षक श्रेष्ठ यक्ष, आर्यखण्ड में स्थित राजाओं का पुत्रियाँ बत्तीस हजार, इतनी ही विद्याधर राजाओं की पुत्रियाँ व उतनी ही म्लेच्छ राजाओं की पुत्रियाँ, इस प्रकार समस्त छयानबै हजार अन्तःपुरकी श्रियाँ, साढ़े तीन करोड़ कुटुम्बी जन, साढ़े तीन करोड़ गायें, तीन सौ साठ शरीरशास्त्र के जानकार वैद्य, तथा कल्याणमित्र, अमृतगर्भ और अमृतकल्प

नाम के आहार, पानक, खाद्य व स्वाद्य इन भोजन विशेषों को तैयार करने वाले उतने ही रसोइये थे। उसके चौदह रत्नों में से सुदर्शन चक्र, सुनन्द खड़ग और दण्ड रत्न ये तीन रत्न उसकी आयुधशाला में उत्पन्न हुए थे। जिनका आकार गाढ़ी के समान होता है, जिनके चार अक्ष (धुरी) व आठ पहिये होते हैं, जो आठ योजन ऊँची नौ योजन विरतृत व बारह योजन आयत होती है, तथा जो प्रत्येक एक हजार यक्षों से दीक्षित होती है, ऐसी नौ निधियाँ थी। इन नौ निधियों के साथ उसके चौदह रत्न भी थे। उक्त नौ निधियों में (1) कालनिधि, अभिलाषित पुस्तकों को देनेवाली (2) महाकालनिधि सुवर्ण आदि पाँच प्रकार के लोह (धातुओं) को देनेवाली (3) पाण्डुकनिधि, ब्रीहि आदि धान्यविशेषों, सोंठ आदि औषध द्रव्यों तथा सुगन्धित माला आदि को देनेवाली (4) माणवकनिधि, कवच् एवं खड़ग आदि समस्त शस्त्रों को देनेवाली (5) नैसर्प निधि, भोजन, शश्या एवं आसनरूप वस्तुओं को देनेवाली, (6) सर्वरत्ननिधि, समस्त रत्नों को देनेवाली (7) शेखनिधि, समस्त बाजों को देनेवाली (8) पद्मनिधि, समस्त वस्त्रों को देनेवाली और (9) पिंगलनिधि, समस्त आभूषणों को देनेवाली थी। इन निधियों के समान जिन चौदह रत्नों की भी रक्षा वे यक्ष करते थे उनमें से सुदर्शन चक्र, सुनन्द खड़ग और दण्ड इन तीन रत्नों का निर्देश ऊपर किया जा युका है। चर्म, छत्र, चूंडामणि नामका मणिरत्न और चिन्तामणि नामका काकिणीरत्न, ये चार रत्न श्रीगृह में उत्पन्न हुआ करते हैं। अयोध्या नामका सेनापति रत्न, अजितंजय नामका अश्वरत्न, विजयार्थपर्वत नामका गजरत्न और भद्रतुण्ड नामका स्थपतिरत्न ये चार रत्न अपने नगर में उत्पन्न होते हैं। बुद्धिसमुद्र नामका पुरोहितरत्न, कामवृष्टि नामका गृहपतिरत्न और सुभद्रा नामका श्वीरत्न ये तीन विजयार्थ पर्वत पर उत्पन्न होते हैं। वज्रतुण्ड शक्ति, सिंहाटक भाला, लोहवाहिनी शुरी, मनोजब (मनोवेग) कणप (शस्त्र विशेष) भूतमुख, नाम का खेट (शस्त्र-विशेष), वज्रकाण्ड नाम का धनुष अमोघ नाम के बाण अभेद्य कवच, बारहयोजन पर्यन्त शब्द को पहुँचाने वाली जनानंदा नामकी बारह भेरियाँ, जयघोष नामके बारह पटह (नगाड़ा) गम्भीरार्वत नामके चौबीस शंख, वीरांगन नाम के दो कड़े, बहत्तर हजार पुर, छयानवै करोड़ गाँव, पंचानवै हजार द्वोण, चौरासी हजार पत्तन, सोलह हजार खेटक (खेड़े) छप्पन अन्तटीर्प, सोलह हजार संवाहन, एक करोड़ स्थली, सात मौ कुक्षिनिवास,

आठ सौ कक्षायें, नन्द भ्रमण (नन्दावर्त) नामका सेनानिवास, क्षितिसार कोट से घिरा हुआ वैजयन्ती नामका निवासगृह, सर्वतोभद्र नामका सिंहद्वार, दिक्स्तरितिक नामका सभामण्डप, गिरिकूट नामका दिग्वलोकन (दिशाओं का दर्शक) गृह, वर्धमान नामका प्रेक्षागृह, गर्भी की बाधा को नष्ट करने वाला धारागृह (ग्रीष्मकाल के लिए उपयोगी) गृहकूट नामका वर्षाकालगृह, पुष्करावती (पुष्करावर्त) नामका शयनागार, कुबेरकांत नामका भांडागार, सुवर्णाधार (वसुधारक) नामका कोष्ठागार (कोठार) सुररम्य, वश्वगृह, मेघ नामका रनानगृह, अवतंस नामका हार, बिजली जैसी कांतिवाले तडित्रभ नामके दो कुण्डल, विषमोचक खड़ाऊँ, अनुत्तर सिंहासन, अतुल (अनुपम) नामके बत्तीस चामर, गृहसिंहवाहिनी नामकी शश्या, रविप्रभ (सूर्यप्रभ) छात्र, आकाश में फहराने वाली बयालीस पताकायें, बत्तीस हजार नाट्यशालायें उसके समीप में अठारह हजार म्लेच्छ राजा, एक लाख करोड़ हल और अजितंजयनामका रथ था। इस तरह अनेक प्रकार की विभूति से सुशोभित वह भरत चक्रवर्ती सुख से कालयापन कर रहा था।

एक समय महाराज भरत के मन में किसी उत्तम पात्र के लिए स्वर्णादि के देने की इच्छा हुई। उस समय उन्होंने विचार किया कि महर्षि तो सुवर्णादि को ग्रहण करते नहीं हैं अतएव किन्हीं गृहस्थों को ही उसे देना चाहिए। इस विचार से उन्होंने उन गृहस्थों में से योग्य गृहस्थों की परीक्षा करने के लिए राजांगण को धान्य आदि के अंकुरों और फूलों आदि से आच्छादित करकर तीनों वर्णों के मनुष्यों को बुलाया। तब उनमें से जो अतिशय जिनभक्त थे— अहिंसावृत का पालन करते थे वे उन अंकुरों आदि के ऊपर से नहीं आये, किन्तु बाहर ही रित्थित रहे। तब चक्रवर्ती ने पूछा कि ये लोग भीतर प्रवेश क्यों नहीं कर रहे हैं? इस पर किसी राजपुरुष ने उनके पास जाकर पूछा कि आप लोग राजभवन के भीतर क्यों नहीं प्रविष्ट हो रहे हैं? इसके उत्तर में वे बोले कि मार्ग शुद्ध न होने से हम लोग भीतर नहीं आ सकते हैं। यह सुनकर उक्त राजकर्मचारी ने चक्रवर्ती से निवेदन किया कि वे लोग मार्ग शुद्ध न होने से भवन के भीतर नहीं आ रहे हैं। तब भरत ने मार्ग को शुद्ध कराकर उन्हें भवन के भीतर प्रविष्ट कराया। इस प्रकार उनके व्रत की दृढ़ता को देखकर भरत को बहुत हर्ष हुआ। तत्पश्चात् उसने आप लोग रत्नत्रय के आराधक हैं, यह कहते हुए उनके कण्ठ में रत्नत्रय की आराधकता का सूचक यज्ञोपवीत डाल दिया। फिर उसने

'ब्रह्मा अर्थात् आदिनाथ जिनेन्द्र जिनके देव हैं वे ब्राह्मण हैं' निरुक्ति के अनुसार उन्हें ब्राह्मण बनाकर उनके लिए गाँव आदि दिए।

एक बार भरत चक्रवर्ती ने जिन भगवान् से पूछा कि मेरे द्वारा स्थापित ये ब्राह्मण भविष्य में कैसे होंगे ? जिन भगवान बोले शीतलनाथ तीर्थकर के पश्चात् ये जैन धर्म के द्वेषी बन जावेंगे । इस बात को सुनकर भरत चक्रवर्ती को बहुत खेद हुआ । उसने अपने द्वारा ही प्रतिष्ठित किये हुए उनको नष्ट करना उचित नहीं समझा । उस समय उसने कैलाश पर्वत के ऊपर अतीत, अनागत और वर्तमान इन तीनों कालों के चौबीस तीर्थकरों के मणि व सुवर्णमय जिन भवनों को बनवाकर उनमें इन तीर्थकरों के नाम, वर्ण, शरीर की ऊँचाई, यक्ष-यक्षी और चिह्नों से सहित प्रतिमाओं को स्थापित कराया । फिर उसने अयोध्या में आकर प्रत्येक द्वार पर चौबीस तीर्थकरों की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित कराया । वे सब प्रतिमायें वंदनमाला बन गईं थीं । इसके साथ ही उसने बाह्य वीथी प्रदेश में मन्दिर के ऊपर पाँचों परमेश्यों की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित कराया । पश्चात् घोड़े के ऊपर चढ़कर प्रदक्षिणा करते समय उसने जय अरहन्त कहते हुए पुष्पों की वर्षा की । तदनुसार उक्त वंदनमाला की पन्द्रिति लोगों में अब तक प्रचलित है । भरत वन्दना के लिये जो वह माला निर्मित करायी थी वह वंदनमाला कहलायी, जो आज की पृथ्वीपर वन्दनमाला के नाम से रुढ़ है । इस प्रकार वह भरत चक्रवर्ती धर्म की अनुपम मूर्ति होकर सुख से राज्य करता हुआ स्थित हुआ ।

भगवान् वृषभेश्वर ने 1 वृषभसेन 2 कुम्भ 3 दृढ़रथ 4 शतधनु 5 देवशर्मा 6 धनदेव 7 नन्दन 8 सोमदत्त 9 सुरदत्त 10 वायुशर्मा 11 यशोबाहु 12 देवमार्ग 13 देवाग्नि 14 अग्निदेव 15 अग्निगुप्त 16 चित्राग्नि 17 हलधर 18 महीधर 19 महेन्द्र 20 वासुदेव 21 वसुन्धर 22 अचल 23 मेरुधर 24 मेरुभूति 25 सर्वयश 26 सर्वज्ञ 27 सर्वगुप्त 28 सर्वप्रिय 29 सर्वदेव 30 सर्व विजय 31 विजयगुप्त 32 जयमित्र 33 विजय 34 अपराजित 35 वसुमित्र 36 विश्वसेन 37 सुषेणा 38 सत्यदेव 39 देवसत्य 40 सत्यगुप्त 41 सत्यमित्र 42 शर्मद 43 विनीत 44 संवर 45 मुनिगुप्त 46 मुनिदत्त 47 मुनियक्ष 48 मुनिदेव 49 गुप्तयज्ञ 50 मित्रयज्ञ 51 स्वयंभू भग 52 भगदेव 53 भगदत्त 54 फल्जु 55 मित्रफल्जु

56 प्रजाप्रति 57 सर्वसह 58 वरुण 59 धनपाल 60 मेघवाहन 61 तेजोराशि 62 महावीर 63 महारथ 64 विशाल 65 महोज्ज्वल 66 सुविशाल 67 वज्र 68 वज्रशाल 69 चन्द्रचूड 70 मधेश्वर 71 महारथ 72 कछ 73 महाकछ 74 नमि 75 विनमि 76 बल 77 अतिबल 78 वज्रबल 79 नन्दी 80 महाभोग 81 नन्दिमित्र 82 महानुभाव 83 कामदेव और 84 अनुपम नामके चौरासी गणधरों, चार हजार साढ़े सात सौ (4750) पूर्वधरों, चार हजार डेढ़ सौ (4150) शिक्षकों, नौ हजार अवधि ज्ञानियों, बीस हजार (20000) केवलियों, बीस हजार छह सौ (20600) विक्रिया ऋद्धिधारकों, बारह हजार साढ़े सात सौ (12750) विपुलमति-मनापर्ययज्ञानियों, उतने (12750) ही वादियों 35,0000 आर्थिकाओं, 3,00000 श्रावकों, पाँच लाख (500000) श्राविकाओं असंख्यात देव देवियों और बहुत करोड़ तिर्यकों के साथ एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक विहार करके कैलाश पर्वतके ऊपर योग निरोध करना प्रारम्भ किया ।

इधर चक्रवर्ती भरत ने स्वप्न में मेरु को सिद्धशिला पर्यन्त बढ़ते हुए देखा । प्रातःकाल के होने पर उसने पुरोहित से इन स्वप्नों का फल पूछा । पुरोहितने कहा कि ये स्वप्न आदिनाथ भगवान की मुक्ति को सूचित करते हैं । यह सुनकर भरतादिक कैलाश पर्वत के ऊपर गये । वहाँ उन सबने वृषभ जिनेन्द्र की पूजा व नमस्कार करके जब उन्हें मौनपूर्वक स्थित देखा तब वे खेद-खित्र हुए । वे चौदह दिन तक भगवान जिनेन्द्र की पूजा आदि करते हुए वहीं पर स्थित रहे । आदिनाथ जिनेन्द्र ने चौदह दिन में योगनिरोध करके माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन मुक्ति प्राप्त की । उस समय भरत को बहुत शोक हुआ । तब उसने वृषभसेनादिकों से सम्बोधित होकर उत्कृष्ट निर्वाण कल्याणक की पूजा की । फिर वह अपने नगर में वापिस आया । इन्द्रादिक भी स्वर्गलोक को चले गये । तत्पश्चात् वृषभसेन गणधर आदि भी यथाक्रम से मोक्ष को प्राप्त हुए । ब्राह्मी और सुन्दरी दोनों अच्युत कल्प को प्राप्त हुईं । अन्य सब अपने-अपने पुण्य के अनुसार गति को प्राप्त हुए । भरत चक्रवर्ती पाँच लाख निन्यानबै हजार नौ सौ निन्यानबै पूर्व, तेरासी लाख निन्यानबै हजार नौ सौ निन्यानबै पूर्वांग और तेरासी लाख उनतालीस हजार वर्ष तक राज्य करता हुआ स्थित रहा । तत्पश्चात् उसने एक समय अपने शिर के ऊपर श्वेत बाल को देखकर अपने पुत्र

अर्ककीर्ति को राज्य दे दिया और कैलाश पर्वत पर जाकर अष्टाहिक की पूजा की। फिर उसने कुटुम्बी जनको वापिस करके हमारा गुरु (पिता) ही गुरु है ऐसा मन में रिथत किया और स्वयं ही बहुतों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वह उसी समय केवली हो गया। वे भरत केवली भव्य जीवों के पुण्य की प्रेरणा से एक लाख पूर्व तक विहार करके कैलाश पर्वत से मुक्ति को प्राप्त हुए। भरत चक्रवर्ती का कुमार काल सत्तर लाख पूर्व, मण्डलीककाल एक हजार वर्ष, दिग्विजय काल साठ हजार वर्ष, राज्यकाल पाँच लाख निन्यानवै हजार नौ सौ निन्यानवै पूर्व, तेरासी लाख निन्यानवै हजार नौ सौ निन्यानवै पूर्वाङ्ग और तेरासी लाख उनतालीस हजार वर्ष संयमकाल एक लाख पूर्व प्रमाण था। भरत की आयु चौरासी लाख पूर्व (कुमारकाल 7700000 पूर्व + मण्डलीक काल 1000 वर्ष + दिग्विजयकाल 60,000 वर्ष + राज्यकाल 599999 पूर्व 8399999 पूर्वाङ्ग व 8339000 वर्ष + संयमकाल 10000 पूर्व = 8400000 पूर्व) प्रमाण थी। भरत के मुक्त हो जाने पर देवादिकों ने उनके निर्वाण की पूजा की।

विष्टिकाले सम्प्राप्ते प्राप्ते च प्राणसंकटे।

तथायन्यप्रियप्राणान् मा जहि त्वं दयार्दधीः॥

तुम्हारे प्राण संकट में भी पड़ जावे तब भी किसी की प्यारी जान मत लो।

श्रूयते वलिदानेन लभ्यन्ते वरसम्पदः ।

पवित्रस्य परं दृष्टौ तास्तुच्छश्च धृणास्पदाः॥

लोग कहते हैं कि बलि देने से बहुत सारे वरदान मिलते हैं, परन्तु पवित्र हृदय वालों की दृष्टि में वे वरदान जो हिंसा करने से मिलते हैं, जग्न्य और धृणास्पद हैं।

पारिशिष्ट वर्तमान चौबीसी के प्रसिद्ध पुण्य

क्र.	तीर्थकर	चक्रवर्ती	बलदेव	नारायण	प्रतिनारायण	लक्ष
1.	1 ऋषभ	1 भरत	0	0	0	1 भौमावलि
2.	2 अजित	2 सागर	0	0	0	2 जितशत्रु
3.	3 सम्बव	0	0	0	0	0
4.	4 अभिनन्दन	0	0	0	0	0
5.	5 सुमति	0	0	0	0	0
6.	6 पद्मप्रभ	0	0	0	0	0
7.	7 सुपाश्वर	0	0	0	0	0
8.	8 चन्द्रप्रभ	0	0	0	0	0
9.	9 पुष्पदन्त	0	0	0	0	3 लक्ष
10.	10 शीतल	0	0	0	0	4 वैद्यवानर
11.	11 श्रेयांस	0	0	0	0	5 सुप्रतिष्ठ
12.	12 वासुदूर्य	0	1 विजय	1 अश्वग्रीव	2 तारक	6 अचल
13.	13 विमल	0	2 अचल	2 द्विष्ठ	3 मेरक	7 पुण्डरीक
14.	14 अनन्त	0	3 धर्म	3 स्वयम्भू	4 मधुकेटम	8 अजितनन्धर
15.	15 धर्म	0	4 सुप्रभ	5 पुरुषसिंह	5 सुदर्शन	9 अजितनाभि

क्र.	तीर्थकर	चक्रवर्ती	बलदेव	नारायण	प्रतिनारायण	रुद्र
16.	०	३ मध्यवा	०	०	०	०
17.	०	४ सनात्कुमार	०	०	०	०
18.	१६ शास्त्रिनाथ	५ शास्त्रिनाथ	०	०	०	१० पीठ
19.	१७ कृष्णनाथ	६ कृष्णनाथ	०	०	०	०
20.	१८ अरनाथ	७ अरनाथ	०	०	०	०
21.	०	८ सुभोम	०	०	०	०
22.	०	०	६ नन्दी	६ पुण्डरीक	६ बलि	०
23.	१९ मल्लनाथ	०	०	०	०	०
24.	०	०	७ नन्दिमित्र	७ पुरुषदत्त	७ प्रहरण	०
25.	०	९ पद्म	०	०	०	०
26.	२० मुनिसुद्रत	०	०	०	०	०
27.	०	१० हरिषण	०	०	०	०
28.	०	०	८ राम	८ लक्ष्मण	८ रावण	०
29.	२१ नमिनाथ	०	०	०	०	०
30.	०	११ जयसेन	०	०	०	०
31.	२२ नेमिनाथ	०	९पद्म	९ कृष्ण	९ जरासंध	०
32.	०	१२ ब्रह्मदत्त	०	०	०	०
33.	२३ पार्वतनाथ	०	०	०	०	०
34.	२४ महावीर	०	०	०	०	११ सत्यकिपुत्र
	२५	१२	९	९	९	११

नाम (१)	कहाँ से गर्भ में आये (२)	गर्भ तिथि (३)	जन्म नारी (४)	पिता का नाम (५)	माता का नाम (६)
१. वृषभनाथ जी	सर्वार्थसिद्धि	आषाढ़ बढ़ी २	अयोध्या	नामिराय	मरुदेवी
२. अजितनाथ जी	विजय	जेठ बढ़ी १५	अयोध्या	जीतश्व	विजय
३. सम्भवनाथ जी	अधोग्रीवेयक	फाल्गुण बढ़ी ८	श्रावस्ती	जीतारिम	सुसेना
४. अभिनन्दननाथजी	विजय	वैशाख बढ़ी ६	अयोध्या	सर्व	सिंहार्था
५. सुमतिनाथ जी	जयपत्न	सावन सुढी २	अयोध्या	मेघप्रभ	मंगला
६. पद्मप्रभु जी	उपरिम् गैवेयक	माघ बढ़ी ६	कौशाक्षी	धरण	सैसोमा
७. सुपाश्वनाथ जी	मध्य गैवेयक	भाद्रवा बढ़ी २	वाराणसी	सुप्रिणि	पृथिवी
८. चंद्रप्रभु जी	दैत्यजयन्त	भाद्रवा बढ़ी २	चारणसी	महासेन	लक्ष्मीमति
९. अर्चुत	आरण	चैत्र बढ़ी ५	चैत्रपुर	सुग्रीव	रामा
१०. श्रीतलनाथ जी	पुष्टाचर	फाल्गुण बढ़ी ८	भाद्रिलपुर	दृढ़रथ	नना
११. श्रीयांसनाथ जी	महाशूक्र	चैत्र बढ़ी ८	मिहिपुर	विष्णु	विजयामा
१२. वासुदेव जी	शतार	जेठ बढ़ी ४	चम्पापुर	वसुपूर्ण	सर्वयशा
१३. विमलनाथ जी	पुष्टोत्तर	आषाढ़ बढ़ी ६	कांकडीपुर	कृतवर्मा	जयश्यामा
१४. अनन्तनाथ जी	सर्वार्थ सिद्धि	जेठ बढ़ी १०	अयोध्या	भानु	सुद्रता
१५. धर्मनाथजी	सर्वार्थ सिद्धि	वैशाख सुढी ८	रत्नपुर	विश्वसेन	एरा
१६. शास्त्रिनाथ जी	सर्वार्थ सिद्धि	भाद्रवा बढ़ी ७	हरितनापुर	सूर्यसेन	श्रीमती
१७. कृष्णनाथ जी	अपराजित	सावन बढ़ी १०	हरितनापुर	सुदर्शन	मित्रा
१८. अरहनाथ जी	अपराजित	फाल्गुण बढ़ी ३	पिथिला	राजगृह	प्रभावती
१९. मालिनाथ जी	आसोज	चैत्र सुढी १	श्रीरिपुरी	मिथिला	पद्मा
२०. मुनिसुक्रनाथ जी	कार्तिक बढ़ी ६	सावन बढ़ी २	वाराणसी	वाप्रिला	वामा
२१. नमिनाथ जी	प्रणात	आषाढ़ बढ़ी ६	आषाढ़	शिवा देवी	प्रियकारिणी
२२. नेमिनाथ जी	पृष्ठोत्तर	वैशाख सुढी २	वाराणसी	वामा	
२३. पार्वतनाथ जी					
२४. वर्धमान जी					

जन्म तिथि (7)	जन्म नक्षत्र (8)	वंश (9)	आयु (10)	कृमार काल (11)	उत्सेध (12)
1. चैत्र कृष्णा 9	उत्तराष्ट्र	इक्ष्वाकु	84 लाख पूर्व	20 लाख पूर्व	500 वर्ष
2. माघ शु. 10	रोहिणी	"	72 "	18 "	450 "
3. मंगसिर शु. 15	च्येष्ठा	"	60 "	15 "	400 "
4. माघ शु. 12	पुनर्वतु	"	50 "	12 $\frac{1}{2}$	350 "
5. श्रावण शु. 11	सथा	"	40 "	10 "	300 "
6. आसोज कृ. 13	चित्रा	"	30 "	7 $\frac{1}{2}$ "	250 "
7. ज्येष्ठ शु. 12	विशाखा	"	20 "	5 "	200 "
8. पौष कृ. 11	अनुराधा	"	10 "	2 $\frac{1}{2}$ "	150 "
9. मासिर शु. 1	मूल	"	2 "	$\frac{1}{2}$ "	100 "
10. माघ कृ. 12	पूर्वाषाढ़	"	1 "	$\frac{1}{4}$ "	90 "
11. फाल्गुन शु. 11	ऋबुण	"	84 लाख वर्ष	21 लाख वर्ष	
12. फाल्गुन शु. 14	विशाखा	"	72 "	18 "	
13. माघ शु. 14	पूर्व भाद्रपद	"	60 "	15 "	
14. ज्येष्ठ कृ. 12	रेतती	"	30 "	7 $\frac{1}{2}$ "	
15. माघ शु. 13	पूष्य	"	10 "	2 $\frac{1}{2}$ "	
16. ज्येष्ठ शु. 12	भरणी	इक्ष्वाकु कुरु	95 हजारवर्ष	23750 हजारवर्ष	
17. वैशाख शु. 1	कृतिका	कुरु	84 "	21000 "	
18. मणसिर शु. 14	रोहिणी	इक्ष्वाकु	55 "	100 "	
19. मणसिर शु. 11	अश्विनी	यादव	30 "	7500 "	
20. आसोज शु. 12	श्रवण	इक्ष्वाकु	10 "	2500 "	
21. आषाढ़ शु. 10	अश्विनी	यादव	1 "	1500 "	
22. वैशाख शु. 13	चित्रा	यादव	300 "	300 "	
23. पौष कृ. 11	विशाखा	उग्र	100 वर्ष	30 "	9 हाथ
24. चैत्र शु. 13	उत्तरा फाल्गुनी	नथ	72 वर्ष	30 "	7 हाथ

शारीर वर्ण (13)	राज्य काल (14)	विह (15)	वैराण्य कारण (16)	दीक्षा तिथि (17)	दीक्षा नक्षत्र (18)
1. सुवर्ण	6 3 लाख पूर्व	वृषभ गज	नीलांजना मरण	चैत कृ. 9	उत्तराष्ट्र
2. "	5 3 " 1 पूर्वांग	अश्व	उल्कापात	माघ शु. 9	रोहिणी
3. "	4 4 " 4 पूर्वांग	वन्द्र	मेष विनाश	मंगसर शु. 1 5	च्येष्ठा
4. "	3 6 $\frac{1}{2}$ " 8 पूर्वांग	चक्रवा	ग्रन्थविनाश नाश	माघ शु. 1 2	पुनर्वतु
5. "	2 9 " 1 2 पूर्वांग	पदम	जाति स्मरण	वैशाख शु. 9	मध्य
6. विद्युम	2 1 $\frac{1}{2}$ " 1 6 पूर्वांग	स्त्रीतिक	जाति स्मरण	कठितिक कृ. 1 3	चित्रा
7. हीरित	1 4 " 2 0 पूर्वांग	अर्धचन्द्र	वसंतवन लक्ष्मीनाश	ज्येष्ठ शु. 1 2	अनुराधा
8. शुक्ल	6 $\frac{1}{2}$ " 2 4 पूर्वांग	मणर	अद्यवादि भावना	पौष कृ. 1 1	अनुराधा
9. शुक्ल	Y $\frac{1}{2}$ " 2 8 पूर्वांग	कर्त्तव्यवृक्ष	उल्कापात	माघ शु. 1 1	मूल
10. सुवर्ण	Y $\frac{1}{2}$ "	गोडा	वसंतवन लक्ष्मीनाश	फाल्गुन कृ. 1 1	श्रवण
11. "	4 2 लाख वर्ष	भैसा	जाति स्मरण	फाल्गुन कृ. 1 1	विशाखा
12. विद्युम	राज्य नहीं किया	शूक्रकर	मेषांत स्मरण	माघ शु. 4	उत्तरा
13. सुवर्ण	3 0 लाख वर्ष	सेही	जाति स्मरण	ज्येष्ठ कृ. 1 2	पूष्य
14. "	1 5 "	वश्र	मेषविनाश	माद्रपद शु. 1 3	भरणी
15. "	5 "	हरिण	जाति स्मरण	ज्येष्ठ कृ. 4	कृतिका
16. "	Y $\frac{1}{2}$ "	छाग	मेषविनाश	माघसर शु. 1 0	रेतवी
17. "	4 7 500 वर्ष	मष्टकी	अद्यवादि भावना	वैशाख शु. 1 1	अर्णिवनी
18. "	4 2 000 वर्ष	कलश	जाति स्मरण	माघसर शु. 1 1	श्रवण
19. "	राज्य नहीं किया	कछुआ	जाति स्मरण	वैशाख कृ. 1 0	अर्णिवनी
20. नील	1 5 000 वर्ष	नील कमल	"	"	श्रावण शु. 6
21. सुवर्ण	5 000 वर्ष	शेख	"	"	माघ शु. 1 1
22. नील	राज्य नहीं किया	सर्प	"	"	विशाखा
23. हीरित	राज्य नहीं किया	सिंह	"	"	उत्तरा
24. सुवर्ण	"	"	"	"	"

दीक्षावन (19)	दीक्षोपचास (20)	दीक्षाकाल (21)	सहीकृति काल (22)	छायात्र काल (23)	केवल तिथि (24)
१. सिद्धार्थ	षष्ठोपचास	अपराह्न	४०००	१००० वर्ष	फाल्गुन कृ. १।
२. सहेतुक	एषमभक्त	"	१०००	१२ "	पौष शु. १४
३. सहेतुक	तु. उपचास	पूर्वाह्न	१०००	१४ "	कार्तिक कृ. ५
४. ऊँगा	तु. उपचास	"	१०००	१८ "	कार्तिक शु. ५
५. सहेतुक	तु. भक्त	अपराह्न	१०००	२० "	पौष शु. १५
६. मनोहर	तु. भक्त	पूर्वाह्न	१०००	६ मास	दैश्वाख शु. १०
७. सहेतुक	तु. उपचास	अपराह्न	१०००	९ वर्ष	फाल्गुन कृ. ७
८. सवार्थ	तु. भक्त	"	१०००	३ मास	फाल्गुन कृ. ७
९. पुष्य	तु. उपचास	"	१०००	४ वर्ष	कार्तिक शु. ३
१०. सहेतुक	तु. भक्त	पूर्वाह्न	१०००	३ वर्ष	पौष कृ. १४
११. मनोहर	एक उपचास	अपराह्न	१०००	२ वर्ष	माघ कृ. १५
१२. मनोहर	तु. उपचास	"	६७६	१ वर्ष	माघ शु. २
१३. सहेतुक	तु. भक्त	"	१०००	३ ..	पौष शु. १०
१४. सहेतुक	तु. भक्त	"	१०००	२ ..	चैत्र कृ. १५
१५. शाली	तु. उपचास	"	१०००	१ ..	पौष शु. ११
१६. आम्र	तु. भक्त	"	१०००	१६ ..	चैत्र शु. ३
१७. सहेतुक	तु. भक्त	"	१०००	१६ ..	कार्तिक कृ. १२
१८. सहेतुक	षष्ठ भक्त	पूर्वाह्न	३००	६ दिन	फाल्गुन कृ. १२
१९. शाली	तु. उपचास	अपराह्न	१०००	१.१ मास	फाल्गुन कृ. ६
२०. नील	तु. भक्त	"	१०००	९ मास	चैत्र शु. ३
२१. चैत्र	तु. भक्त	"	१०००	५६ दिन	आमोज शु. १
२२. सहकार	पृष्ठ भक्त	"	३००	४ मास	चैत्र कृ. ४
२३. अङ्गवथ	तु. भक्त	पूर्वाह्न	३००	१.२ वर्ष	चैत्र शु. १०
२४. नाथ		अपराह्न			

केवल तिथि काल (25)	केवल स्थान (26)	केवल नक्षत्र (27)	मोक्षकाल (28)	मोक्ष नक्षत्र (29)	मोक्ष स्थान (30)
१. पूर्वाह्न	पूरीमताल वन	उत्तराराध	पूर्वाह्न	उत्तराराध	उत्तराराध भूर्णी ज्येष्ठा
२. अपराह्न	सहेतुक वन	रोहिणी ज्येष्ठा	पूर्वाह्न	पूर्वाह्न	अपराह्न पूर्वाह्न उत्तरार्द्ध मध्यमा वित्ता
३. "	सहेतुक वन	अग्रवन	पूर्वाह्न	पूर्वाह्न	"
४. "	अग्रवन	हत्त	पूर्वाह्न	अपराह्न	"
५. "	सहेतुक वन	वित्ता	पूर्वाह्न	पूर्वाह्न	"
६. "	मनोहर	विशाखा	पूर्वाह्न	अनुराधा ज्येष्ठा	"
७. "	सहेतुक वन	अनुराधा	पूर्वाह्न	अपराह्न मूल अंगूष्ठा धनिष्ठा	"
८. "	सवार्थ वन	मूल	पूर्वाह्न	पूर्वाह्न अंगूष्ठा अंगूष्ठा रेवती	"
९. "	पूष वन	पूष	पूर्वाह्न	प्रदोष अपराह्न प्रदोष	"
१०. "	सहेतुक वन	श्रवण	प्रदोष	प्रदोष पूर्वा भूर्णी रेवती	"
११. "	मनोहर	विशाखा	प्रदोष	प्रदोष अंगूष्ठा अंगूष्ठा रेवती	"
१२. "	सहेतुक वन	उत्तराराध	प्रदोष	प्रदोष अंगूष्ठा अंगूष्ठा रेवती	"
१३. "	आम्र वन	आम्र	प्रदोष	प्रदोष अंगूष्ठा अंगूष्ठा रेवती	"
१४. "	सहेतुक वन	सहेतुक वन	प्रदोष	प्रदोष अंगूष्ठा अंगूष्ठा रेवती	"
१५. "	सहेतुक वन	मनोहर	प्रदोष	प्रदोष अंगूष्ठा अंगूष्ठा रेवती	"
१६. "	आम्र वन	आम्र	प्रदोष	प्रदोष अंगूष्ठा अंगूष्ठा रेवती	"
१७. "	सहेतुक वन	सहेतुक वन	प्रदोष	प्रदोष अंगूष्ठा अंगूष्ठा रेवती	"
१८. "	सहेतुक वन	मनोहर	प्रदोष	प्रदोष अंगूष्ठा अंगूष्ठा रेवती	"
१९. "	नील वन	नील वन	प्रदोष	प्रदोष अंगूष्ठा अंगूष्ठा रेवती	"
२०. पूर्वाह्न	चैत्र वन	चैत्र वन	प्रदोष	प्रदोष अंगूष्ठा अंगूष्ठा रेवती	"
२१. अपराह्न	उजंदंतीगि				
२२. पूर्वाह्न	शक्रपुर				
२३. "	ऋग्झुकुला				
२४. "					

उर्जयन्त
सम्भद शिखर

पावापुरी

प्रलुब्ध

मध्यापुर
सम्भद शिखर

क्रहुकुला

सहमुक्त (31)	योगनिवृति (32)	मुख्य आर्थिका (33)	श्रावक (34)	श्राविका (35)	मोक्ष तिथि (36)
1. 10000	14 दिन पूर्व	ब्राह्मी प्रकृज्ञा धम्मी	3000000	5000000	मोक्ष कृ. 14 चैत्र शू. 5
2. 1000	1 मास पूर्व	मेन्शेणा अनंता रतिषेणा मीना	"	"	चैत्र शू. 6 वैशाख शू. 7
3. 1000	"	वरुणा घोषा	"	"	चैत्र शू. 10 फाल्गुन कृ. 4
4. 1000	"	धरणा	"	"	फाल्गुन कृ. 6 भाद्रपद शू. 7
5. 1000	"	चारणा	"	"	अश्विनी शू. 8 कर्तिक शू. 5
6. 324	"	वारसेना पद्मा	"	"	श्रावण शू. 15 भाद्रपद शू. 14
7. 500	"	सर्वथी	"	"	आषाढ़ शू. 8 चैत्र कृ. 15
8. 1000	"	सुख्ता हारिषणा	"	"	ज्येष्ठ कृ. 14 ज्येष्ठ कृ. 14
9. 1000	"	भाविता कुंथुसेना	"	"	वैशाख कृ. 5 वैशाख शू. 1
10. 1000	"	मधुसुना पूर्वदत्ता	"	"	आषाढ़ कृ. 8 आषाढ़ कृ. 8
11. 1000	"	मार्गिणी वक्षी	"	"	श्रावण शू. 7 कर्तिक कृ. 30
12. 601	"	सुलोका चन्दना	"	"	
13. 600	"		"	"	
14. 7000	"		"	"	
15. 801	"		"	"	
16. 900	"		"	"	
17. 1000	"		"	"	
18. 1000	"		"	"	
19. 500	"		"	"	
20. 1000	"		"	"	
21. 1000	"		"	"	
22. 536	"		"	"	
23. 36	"		"	"	
24. एकांकी	2 दिन पूर्व		"	"	

समवस्तु भूमि (37)	अशोक वृक्ष (38)	यक्ष (39)	यक्षिणी (40)	केवली काल (41)	प्रणधर संख्या (42)
1. 1.2 योजन	न्यग्रोध	गोवदन	चक्रेश्वरी	1 लाख पूर्व 1000 वर्ष	84.
2. 1.1 $\frac{1}{2}$ "	सत पर्ण	महायश	रोहिणी	1 " 1 पूर्वांग + 1/2 वर्ष	90
3. 1.1	शाल	विष्णुव	प्रदत्ति	1 " " 4+1/4 वर्ष	105
4. 1.0 $\frac{1}{2}$ "	सरल	यशस्वीश्वर	वज्रशंखला	1 " " 8+ 1/8 वर्ष	103
5. 1.0 "	प्रियंगु	त्रुम्युश	वज्रांकश्च	1 " " 12+ 20 वर्ष	116
6. 9 $\frac{1}{2}$ "	प्रियंगु	मातग	अप्रतियक्षेश्वरी	1 " " 16+6 मास	111
7. 9	शिरोष	विजय	पुरुषदत्ता	1 " " 20+9 वर्ष	95
8. 8 $\frac{1}{2}$ "	नाम	अंजित	मनोवेगा	1 " " 24+ 3 मास	93
9. 8	अश (बहेड़ा)	ब्रह्मोऽवर	काली	1 " " 28 + 4 मास	88
10. 7 $\frac{1}{2}$ "	ध्रुतिपत्ना	कृमार	ज्यालामालिनी	25000 वर्ष पूर्व + 3 वर्ष	87
11. 7	तट	पाण्मुख	गोरी	1399999 वर्ष	77
12. 6 $\frac{1}{2}$ "	पाटल	पाताल	गान्ध्यारी	1499998 "	65
13. 6	जंशु	किंव्र	वैरोठी	749998 "	55
14. 5 $\frac{1}{2}$ "	पीपल	किम्बुरुष	अनन्तमती	249999 "	43
15. 5	दार्थि पर्ण	गरुड़	मानसी	24984 -	36
16. 4 $\frac{1}{2}$ "	नन्दी	गङ्गदर्व	महामानसी	23734 -	35
17. 4	तिलक	कुबेर	जया	20984 -	30
18. 3 $\frac{1}{2}$ "	आम्र	वरुण	विजया	54899 वृ. 11 अ. 24 दिन	28
19. 3	अशोक	भृत्य	अपराजिता	7499 वर्ष 1 मास	18
20. 2 $\frac{1}{2}$ "	चम्पक	गामध	बहुन्निधिली	2491 वर्ष	17
21. 2	बकुल	पाहर्व	कृम्भादी	699 वर्ष 10 मा. 4 दिन	11
22. 1 $\frac{1}{4}$ "	मेषथंग	मातंग	पद्मावती	69 वर्ष 8 मास	13
23. 1 $\frac{1}{4}$ "	धव	गुहक	सिंडावनी	30 वर्ष	11
24. 1 ..	शाल				

पुस्तकालय (4.3)	ऋण संख्या (4.4)	पर्याधर (4.5)	शिक्षक (4.6)	अवधिज्ञानी (4.7)	केवली (4.8)
ग्रन्थसंग्रह	84000	4750	4150	9000	20000
सिंहसेन	100000	3750	21600	9400	2000
चारूदत्त	200000	2150	129300	9600	15000
वज्रधमर	300000	2500	220050	9800	16000
वज्र	320000	2400	254350	11000	13000
चमर	330000	2300	269000	10000	12000
बलदत्त	300000	2030	244920	9000	11000
वैदर्घ	250000	4000	210400	2000	18000
नाग	200000	1500	155500	8400	7500
कुंभ	100000	1400	59200	7200	7000
धर्म	84000	1300	48200	6000	6500
मंदर	72000	1200	39200	5400	6000
जय	68000	1100	38500	4800	5500
अरिष्ट	66000	1000	39500	4300	5000
सेन	64000	900	40700	3600	4500
चक्रविद्यु	62000	800	41800	3000	4000
स्वयम्भू	60000	700	43150	2500	3200
कृष्ण	50000	610	35835	2800	2800
तिशाब	40000	550	29000	2200	2200
मालि	30000	500	21000	1800	1800
सुप्रभ	20000	450	12600	1600	1600
वरदत्त	18000	400	11800	1500	1500
स्वयम्भू	16000	350	10900	1400	1000
इद्रम् भूति	14000	300	9900	1300	700

विक्रियालयी (4.9)	विपुल मति (50)	वार्दी (51)	आणिकां संख्या (52)
20600	12750	12750	350000
20400	12400	12400	320000
19800	12000	12000	330000
19000	1000	1000	330600
18400	10450	10450	330000
16800	9600	9600	420000
15300	8600	9600	330000
600	7000	7000	380000
13000	6600	6600	380000
12000	5700	5700	380000
11000	5000	5000	130000
10000	4200	4200	106000
9000	3600	3600	103000
8000	3200	3200	108000
7000	2800	2800	62400
6000	2400	2400	60300
5100	2000	2000	60350
4300	1600	1600	60000
2900	1400	1400	55000
2200	1200	1200	50000
1500	1000	1000	45000
1100	800	800	40000
1000	600	600	38000
900	400	400	36000

क्रमांक	तीर्थकर	सुषमा दुष्मा तीसरे काल के 3 वर्ष 8 मास 15 दिन बाकी रहने पर मोक्ष गये। प्रथम तीर्थकर की मुक्ति के बाद 50 लाख करोड़ सागर के बाट मोक्ष गये।
1.	ऋग्भूमनाथ	
2.	अजितनाथ	
3.	सम्बवनाथ	
4.	अभिनन्दननाथ	
5.	सुमतिनाथ	
6.	पद्मप्रभु	
7.	सुपाश्वरनाथ	
8.	चन्द्रप्रभु	
9.	पुष्पदंतनाथ	
10.	श्रीतलनाथ	
11.	श्रीयांसनाथ	
12.	वासुपूर्ण	
13.	विमलनाथ	
14.	अनन्त नाथ	
	द्वितीय	30 „ „ „ „ „
	द्वितीय	10 „ „ „ „ „
	चतुर्थ	9 „ „ „ „ „
	पंचम्	90 „ „ „ „ „
	षष्ठम्	9 „ „ „ „ „
	सप्तम्	900 करोड़ सागर „ „ „
	अष्टम्	90 „ „ „ „ „
	नवम्	9 „ „ „ „ „
	दशम्	3373900 सागरोपम काल „ „ „
	यारहवे	54 लाख सागरोपम „ „ „
	बारहवे	30 „ „ „ „ „
	तेरहवे	9 „ „ „ „ „

तीर्थकरों के परायर मोक्षकाल का अनुराग

उष्मा सुष्मा नामक चौथे काल के अन्त समय में जब 3 वर्ष 8 मास 15 दिन बार्की हो तब महावीर तीर्थंकर भगवान् मोक्ष गये।

संस्थान के लिये आपके सहयोग

बन्धुवर !

आप एक विचारशील, स्वाध्याय प्रेमी और धर्मवत्सल बन्धु हैं। युवा पीढ़ी हेतु विशेष रूप से पू. आचार्य श्री कनकनन्दीजी द्वारा रचित तथा ‘‘धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान’’ और विभिन्न स्थानों से प्रकाशित ग्रन्थों के पठनोपरान्त आप निम्न प्रकार से हमें सहयोग दे सकते हैं। आपका सहयोग हमारे उद्देश्य और लक्ष्य का सम्बल है –

1. पुस्तकों के विषय में अपने अमूल्य, उपयोगी एवं निष्पक्ष सुझाव देकर।
2. अन्य स्वाध्याय प्रेमी बन्धुओं से पुस्तक के विषय में चर्चा करके।
3. अपने इष्ट मित्रों एवं रिश्तेदारों को प्रकाशन की पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा देकर।
4. यथा शक्ति अप्रकाशित पुस्तकों के प्रकाशन में अपना योगदान देकर।
5. प्रकाशित पुस्तकें पर्व आदि पर वितरणार्थ मँगवाकर।

प्रकाशन की ओर से साधु-संघों, स्वाध्याय शालाओं, धार्मिक शिक्षण संस्थाओं, शोधरत छात्रों, असमर्थ भाई-बहनों को पुस्तकें निःशुल्क भेंट की जाती हैं। कृपया प्रकाशन से जुड़कर श्रुतभक्ति का परिचय देकर पुण्य लाभ अर्जित करें। आपकी प्रतिक्रिया की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

संस्था की नियमावली

1. विवक्षित पुस्तक के प्रकाशन के द्रव्यदाता को उस किताब की दशमांश प्रतियां दी जायेंगी।
2. ग्रन्थ प्रकाशक (द्रव्यदाता) ग्रन्थमाला का आजीवन सदस्य रहेगा तथा उन्हें ग्रन्थमाला से प्रकाशित पुस्तक की एक-एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।
3. साधु, साध्वी, विशिष्ट विद्वज्जन और विशिष्ट धर्मायतनों को निःशुल्क दी जायेगी।
4. ग्रन्थमाला से सम्बन्धित कार्य-कर्ताओं को प्रकाशित पुस्तकों की एक-एक प्रतियां निःशुल्क दी जायेंगी।

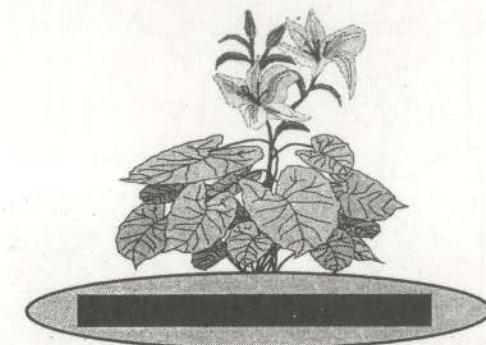
संस्थान के कार्य- राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी, शिविर, साहित्य प्रकाशन उपाधि एवं पुरस्कार प्रदान विभिन्न क्षेत्र के योग्य व्यक्तियों को करना आदि।

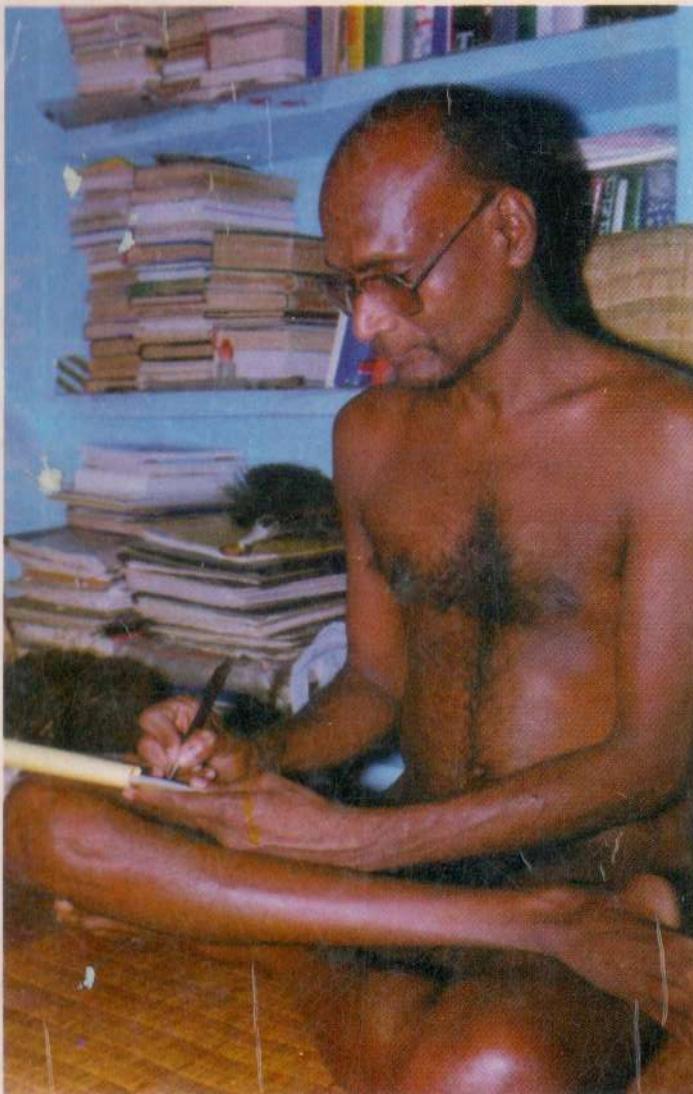
आपका आर्थिक सहयोग

(1) आजीवन सदस्यता	= 5000/- रु.
(2) संरक्षक	= 11000/-रु.
(3) परम संरक्षक	= 25000/-रु.
(4) शिरोमणि संरक्षक	= 51000/-रु.
(5) परम शिरोमणि संरक्षक	= 100000/-रु.

संगोष्ठी, शिविर आदि में साहित्य, पुरस्कार आर्थिक सहायता, श्रमदान आदि देकर।

विशेष- संस्थान की प्रत्येक पुस्तक, स्मारिका में संस्थान के कार्यकर्ता, शिरोमणि और परम शिरोमणि संरक्षक के नाम छपेंगे।





शोध पूर्ण ग्रन्थों की स्वच्छा में लीन
आचार्य श्री कनकनंदीजी महाराज